॥ हरिः ॐ ॥

जीवनआरंभ

– पूज्य श्रीमोटा

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरिः ॐ ॥

जीवनआरंभ

(गुजराती पुस्तक 'जीवनमंडाण')

श्रीमोटा के पत्र
एक साधक बहन को

: संपादक (गुजराती) :
हेमंतकुमार नीलकंठ
नंदुभाई शाह

: संपादक (हिन्दी) :
रजनीभाई बर्मावाला

: अनुवादक :
डॉ. कविता शर्मा 'जदली'

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत

❑ **प्रकाशक :**
हरि:ॐ आश्रम, कुरुक्षेत्र श्मशानघाट, जहाँगीरपुरा
सूरत–३९५००५, भ्रमणभाष : +९१ ९७२७७ ३३४००
Email : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

© हरि:ॐ आश्रम, सूरत – नडियाद

❑ प्रथम संस्करण : ई. स. २०२३

❑ पृष्ठ संख्या : २६२

❑ प्राप्तिस्थान : हरि:ॐ आश्रम, सूरत – ३९५००५.
हरि:ॐ आश्रम
नडियाद – कपडवंज रोड, जूना बिलोदरा,
पो. बो. नं. ७४ नडियाद–३८७००१
भ्रमणभाष ७८७८० ४६२८८

❑ अक्षरांकन : अर्थ कॉम्प्यूटर
२०३, मौर्य कोम्प्लेक्ष, सी. यु. शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटैक्स, अहमदाबाद–३८००१४.
भ्रमणभाष : ९३२७० ३६४१४

❑ मुद्रक :
साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड, अहमदाबाद–३८००२२
दूरभाष : (०७९) २५४६९१०१

पूज्य श्रीमोटा के अमूल्य वचन

(प्रथम संस्करण - गुजराती)

इस **जीव** के पास से लाभ प्राप्त हो ऐसा कुछ भी नहीं है। किसी को भी आने का निमंत्रण या आमंत्रण देने का तो नहीं होता है। कोई **जीव** अपने आप **इस जीव** के पास आना चाहे तो उसे मना थोड़े ही किया जा सकता है ? यहाँ आते रहने के कारण से वैसे **जीव** अपने यहाँ उसे ले जाने को कहा करते होते हैं। हृदय का स्वयं सहज भाव होने से वह सभी अपने आप हुआ करता है। अमुक के यहाँ जाना और अमुक के यहाँ नहीं जाना ऐसा कोई नियम या व्रत तो नहीं है। अतः सभी मिलने आनेवाले सद्भावी **जीवों** से प्रार्थना है कि उन्हें **इस जीव** को अपने घर ले जाने हेतु आमंत्रण या निमंत्रण के विषय में कुछ भी कहना-करना न करें। 'अमुक-अमुक के यहाँ जाते हैं और हमारे यहाँ क्यों नहीं ?' ऐसा जिन्हें मन में हुआ करता हो वे कृपा करके यहाँ न आवें। फिर, एक दूसरी भी प्रार्थना है कि 'कोई भी **इस जीव** के पास से किसी भी प्रकार की आशा-अपेक्षा न रखें।' **यह जीव** गधे जैसा है। हमारे ..... यहाँ कोई खजाना गाड़कर नहीं रखा है। यों तो हम किसी को हम को मिलने आये ऐसा कहते भी नहीं हैं। जो कोई **इस जीव** को बुलाना चाहता है, उसकी कदर अवश्य कर सकता हूँ और उसके लिए उन उन **जीवों** का हृदय से आभार मानता हूँ।

कोई भी संत हमारे यहाँ पधारे तो हमारी दरिद्रता चली जाती है, ऐसी जो लोकमान्यता है, उसमें निपट अज्ञान है। इसलिए, ऐसे निरर्थक प्रयत्न करने से अच्छा है उसकी प्रत्यक्ष सेवा करें, उसका काम या उसके कहे अनुसार आचरण करने से विशेष लाभ होता है। तथापि जिस किसी को **इस जीव** को अपने यहाँ बुलाना हो, उसे समर्पणयज्ञभाव से कुछ न कुछ देने की मनोवृत्ति पहले परख लें। नकदी रकम होगी तो वह साबरमती आश्रम में संघ की बही में अंकित दान के रूप में जमा होगी और उसकी पहुँच मिलेगी। **— मोटा**

गांधी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद, ता. १०-१-१९५३

संपादकीय

(प्रथम संस्करण - गुजराती)

हमने पूछा, 'आप इस लेखक के परिचय में किस तरह आये, आप तो इन्हें बिलकुल भी पहचानते नहीं थे और कोई आगे-पीछे का संबंध भी नहीं था !'

उस बहन ने कहा, ''देखिए, तब तो आपको विवरण-पूर्वक बात करती हूँ । मेरी एक बड़ी पुत्री है । वह अपनी सहेली के यहाँ से कविता की एक पुस्तक पढ़ने लायी थी और वह मेरे कमरे में कितने ही दिनों तक पड़ी रही । एक दिन मैं अपने कमरे में सो रही थी, वहाँ अचानक हवा का झोंका आया और वह पुस्तक जो खिड़की पर थी, वहाँ से उड़कर मेरे शरीर पर आ गिरी और जो खुल्ला पन्ना था, उसमें जो प्रार्थनाकाव्य थे, वे मेरे पढ़ने में आये । उस समय की अपनी मानसिक दशा का हूबहू उन प्रार्थनाकाव्य में लिखित तादृश्य रूप से अनुभव किया । तब से मैं वह 'हृदयपुकार' की प्रार्थनाएँ पढ़ने लगी और उसके लेखक कौन होंगे इसे जानने की इच्छा भी हुई । ऐसा करते करते तो समय बीतता गया । दक्षिण में मेरे सगेसंबंधिओं के साथ यात्रा जाने का हुआ, गुमराह रास्ते में जहाँ जाना नहीं था, वहाँ जाने का हुआ, उस कुंभकोणम् में जौहरी की एक पीढ़ी के यहाँ हमें भोजन का आमंत्रण था । पीढ़ी के हिस्सेदार की पत्नी अहमदाबाद की है और उन्हें मैं ऐसे तो पहचानती थी । उनके कमरे में मैं बैठी थी, वहाँ उसी 'हृदयपुकार' पुस्तक भी देखी । इससे मुझे आश्चर्य हुआ । मैंने उनको पूछा, 'आपके पास यह पुस्तक कहाँ से ?' उस बहन ने कहा, 'क्यों न हो ? उसके

लेखक ही हमारे यहाँ रहते हैं न ?' 'ऐसा ! वे यहाँ रहते हैं ? मैं उन्हें देखना चाहती हूँ और कुछ बात करनी है ।' फिर उस बहन ने उस पुस्तक के लेखक को बुलाया, तब से मैं उनके परिचय में आयी । उसके बाद पत्रव्यवहार प्रारंभ किया और वही पत्रव्यवहार इस पुस्तक में प्रकाशित है । भक्ति, श्रद्धा आदि की समाज में जो रूढियुक्त समझ है, उससे अधिक इसमें अलग ही प्रकार की जीवन को गढ़ने की उनकी अनोखी समझ है । जीवन में कर्म के साथ अथवा तो प्राप्त प्रसंगों के साथ साधना की भावनाओं का किस तरह मेल रखे, इसकी समझ उनके जिस पत्रव्यवहार में से हुई है, उस लेख की उनकी शैली बहुत सरल, अद्‌भुत और अनोखी मुझे लगी है । हिन्दू समाज में संयुक्त कुटुंब की भावना में पहले जो सुमेल था, एकदूसरे के लिए सहन करने की जो सहनशक्ति और सहानुभूति थी और परस्पर के लिए जो काम में आने की जो हार्दिक उदारता और उदार मन थे, वह संयुक्त कुटुंब की भावना आज कम होती जाती है, ऐसे समय में, जीवन में सभी के साथ सुमेल बनाने के यज्ञ की समझ जो उन्होंने मेरे गले उतारी, वह अद्‌भुत बोधपाठ हालांकि अभी तक मैं सांगोपांग हृदय में उतार सकी नहीं हूँ । परन्तु उस अनुसार व्यवहार करने की आँख कुछ खुल गयी है और खास करके उनके पत्रों के द्वारा मैं विशेष परिचय में आयी हूँ । उनके बारे में परिचय की इतनी मेरी हकीकत है ।''

उसके बाद हमने उसे पूछा, 'उनकी भक्ति की समझ

में आपको जो अनोखी रीत लगी वह किस तरह से ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'प्राप्त जीवन और प्राप्त परिस्थिति में से किसी अलग तरह से कहीं भी भक्ति नहीं है । कर्म ही भावना को आकार देने का समर्पणयज्ञ है, और जीवन में प्राप्त होते प्रसंग जीवनविकास के लिए निर्माण रूप हैं । यदि हृदय में ज्ञान की भावना की ज्योति जलती रहे तो प्रत्येक प्रसंग गुरुरूप बन जाता है । कहीं भी विसंवाद नहीं है । विरोध या विसंवाद लगता है उसका मूल हमारे में है । फिर, भावना, ऊर्मि, वृत्ति और विचार के पृथक्करण के बारे में जागृत होने का तो मुझे कभी भान भी न था । प्रत्येक कर्म, प्रसंग या मिलाप के समय या बातचीत के समय में हमारे मन की भावना, ऊर्मि, वृत्ति, विचार आदि कैसे कैसे रहते हैं, उस पर से हमें अपनी कक्षा की खबर हो जानी चाहिए, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान मुझे उनकी तरफ से मिला । भक्ति यह व्यवहार में ज्ञान की भावना से आचरण करने की उत्तम से उत्तम रीति है और जीवन के साथ ओतप्रोत संलग्न है यह मुझे प्रत्यक्ष समझ में आया । ऐसी ज्ञानपूर्वक की भक्ति करने से जीवन में प्राप्त प्रत्येक प्रसंग, संबंध, आचरण आदि में शांति, समता, तटस्थता, उदारता, सहिष्णुता, सहनशीलता आदि गुणों का वह वह अनुभव होता जाय और **हमारी *जीव*स्वभाव की प्रकृति का रंग बदलता जाय, उसका नाम सही भक्ति का स्वरूप** और उससे भी आगे की सीढ़ी है, पर अभी तो मुझे इतना ही समझ में आया है ।'

हमने कहा, 'ओहो ! आपने भक्ति के बारे में बहुत अच्छी समझ दी, तब अब आपका गुरु के बारे में क्या ख्याल है ?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'भाई ! मुझे अभी इसका क्या ज्ञान होगा ? और इसके बारे में बोलना यह शायद मेरे लिए योग्य भी नहीं होगा, परन्तु इतना समझ आता है कि बालक को सहज चलने की तमन्ना हो, उसे उँगली देकर या दिखाकर उसके चलने की वृत्ति को माता-पिता पोषण दिया करते हैं, उसी तरह गुरु साधक के जीवन का निर्माण करता है । गुरु स्थूल नहीं है, पर गुरु की भावना का विस्तार जीवन के अलग-अलग कर्म के क्षेत्रों में प्रत्यक्ष होते हम से ज्ञानपूर्वक अनुभव होता है और गुरु की भावना से उत्कटता हृदय में जीवंत होने से वह हमारा जागृत चौकीदार प्रत्येक पल रहा करता होता है, ऐसा भी आगे जाने पर अनुभव होता है । यह तो सब मेरी अभी कोरी कोरी समझ है । अनुभव की समझ नहीं है । इससे विशेष तो क्या कह सकती हूँ ? पर गुरु, मेरे मन में खाली पुतला नहीं, जैसे पाठशाला में सीखाने के लिए शिक्षक होते हैं और जो जो कुछ सीखना होता है, वह किसी न किसी के पास से सीखना होता है, वैसे गुरु भी सिखने के लिए है, पर उसकी हृदय में गरज जागे बिना भावना से सतत निरंतर पलपल उसे ज्ञानपूर्वक लगे रहना यह लगभग असंभव घटना है । जैसे जैसे सीख की उत्कट गरज जागे और उसमें सच्चा स्वार्थ हमें समझ में आए, तभी गुरु का मूल्यांकन हम से हो सके ।'

मैंने पूछा, 'तब साधना करने की विधि है या नहीं ?' उन्होंने कहा, 'उनकी साधना की रीति तो इस प्रकार है कि सकल कोई भी कर्म करते करते उसमें प्रभु के नामस्मरण की भावना जीवंत रहा करे, कर्म द्वारा हृदय की भावना आकार ले और कर्म अनुभव से पक्के होने के लिए है, ऐसा हेतु का ज्ञानभान रहा करे और वे सकल कर्म श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ यज्ञभावार्थ से किये जाय और ऐसे ज्ञानपूर्वक की भावना से प्राप्त होते प्रत्येक कर्म में मनादि करणों का जीवनविकास के ज्ञान के साथ सुमेल होता रहे, उसे वे साधना कहते हैं और वही साधना की विधि है। जीवन से अतिरिक्त निराली ऐसी कोई साधना नहीं है। इतना मैं तो संक्षेप में समझी हूँ।'

'मुझ पर उन्होंने जो पत्र लिखे हैं, उनका संपूर्ण सभी हिस्सा इस पुस्तक में प्रकाशित नहीं है। अभी अधूरा है। जीवन की शास्त्र विषयक समझ और ज्ञान उसमें संपूर्ण नहीं दिये हैं, क्योंकि एक तो मेरी कक्षा ऐसी और मुझे पचे उतना ही वे देते और मुझे जो लिखा है, वह सभी पूरा इसमें प्रकाशित नहीं है। इससे पाठक को यह लेख बहुत अधूरा लगे ऐसा पूर्ण संभव है, परन्तु जैसे-जैसे सुविधा होती जाएगी वैसे-वैसे इसके बाद के पत्र प्रकाशित होंगे ऐसा लगता है सही।'

हमारे बीच में हुई यह बातचीत यही संपादक के दो बोल के रूप में पर्याप्त है।

हेमंतकुमार गुणाभाई नीलकंठ

नंदलाल भोगीलाल शाह

निवेदन

(प्रथम संस्करण - हिन्दी)

पिछले कई वर्षों से हमारे हरि:ॐ आश्रम, सूरत और नडियाद के मौनमंदिरों में बिनगुजरातीभाषी साधकों अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए आने लगे हैं । उन साधकों श्रीमोटा के अमूल्य आध्यात्मिक साहित्य द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त कर सके इसलिए श्रीमोटा का आध्यात्मिक साहित्य जो मूल गुजराती भाषा में प्रकट हुआ है, उसका हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करने का प्रस्ताव हमारे ट्रस्टीमंडल के एक सदस्य श्री रजनीभाई बर्मावाला ने थोड़े वर्ष पहले रखा था. उस अनुसार वह कार्य लगभग सन् २००८-२००९ से शुरू किया हुआ है । ट्रस्ट के अन्य कार्यों की जवाबदारियाँ निभाते निभाते ट्रस्टी श्री रजनीभाई ने 'विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ', 'मौनमंदिर का मर्म', 'मौनमंदिर में प्रभु', 'देवासुर संग्राम', 'जीवित नर सेएँ' आदि पुस्तकों स्वयं अनुवाद किये हुए हैं । श्रीमोटा के आध्यात्मिक साहित्य का हिन्दी अनुवाद करने में श्री भास्करभाई भट्ट, इन्दौर (म.प्र.) (वर्तमान में स्वर्गस्थ) और डॉ. कविता शर्मा, 'जदली' पीएच. डी. अहमदाबाद का सहकार भी मिला है । अभी अभी पिछले दो वर्ष से इस कार्य को शीघ्रता से करने के लिए श्रीमोटाकृपा से श्रीमोटा के एक प्रेमी स्वजन श्री निरंजनभाई चंदुलाल पटेल ने उत्साहपूर्वक एक धक्का और माारा है कि श्रीमोटा का पूरापूरा गुजराती आध्यात्मिक साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कराकर ट्रस्ट की वेबसाईट www.hariommota.org पर इ-बुक के रूप में सभी के लिए उपलब्ध कराना । श्री

निरंजनभाई ने केवल शाब्दिक धक्का नहीं लगाया, किन्तु इस कार्य के लिए रुपये चालीस लाख से कुछ अधिक की धनराशि भी श्रीमोटा के चरणकमल में अर्पित कर दी है और तो और क्या इससे अधिक खर्च यदि हो तो और अधिक धनराशि देने की तैयारी बताई है । उनका असीम आभार हमारी सीमित शब्दावलि से व्यक्त करने में हम असमर्थ हैं । इसका बदला चुकाने का सामर्थ्य तो केवल श्रीमोटा में ही है और वे ही चुकायेंगे ऐसी आपश्री के चरणकमल में हमारी प्रार्थना है ।

श्रीमोटा एक अत्यंत गरीब रंगरेज कुटुम्ब से आते हैं । आपश्री ने स्वप्रयत्न से और अपने समर्थ श्रीसद्‌गुरु श्रीकेशवानंदजी धूनीवाले दादा, (सांईखेडा-खंडवा (म. प्र.)) के आध्यात्मिक मार्गदर्शन से संसार का त्याग किये बिना लगभग सत्रह वर्ष कठिन साधना की और सन् १९३४ में सगुण ब्रह्म और सन १९३९ में निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार किया ।

श्रीमोटा इसके बाद अपने आप स्वयं आ मिले ऐसे प्रयत्नशील जिज्ञासु साधकों को केवल व्यक्तिगत रूप से प्रत्यक्ष में या परोक्ष रूप में पत्रों द्वारा आध्यात्मिक मार्गदर्शन देते थे । यह पुस्तक 'जीवनआरंभ' एक साधक बहन को लिखे हुए पत्रों के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है, जो हम जिज्ञासु, मुमुक्षु साधकों के करकमल में रखते हैं । और आशा करते हैं कि वे सब अपने अपने सामर्थ्य अनुसार लाभ प्राप्त करें ।

दि. २६-१-२०२३ **ट्रस्टीमंडल**

(वसंतपंचमी - श्रीमोटा का दीक्षा-दिन) हरि:ॐ आश्रम, सूरत

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ८-६-१९५०

गुरु के प्रति पूज्यभाव किस लिए ?

आप **यह जीव** को पूज्य मानते हो तो उस भाव को हृदय में रखना है । यदि वैसा ही भाव यदि हो तो वह भाव जीवन के निर्माण में अति उपयोगी सिद्ध होगा । संसार-व्यवहार में भी कोई **जीव** किसी का कुछ कहना न मानता हो, पर उसे जिस पर अति प्रेमभाव हो और जिसके प्रति उसे आदरभाव हो, वैसा कोई उसे यदि कहे तो उसका तुरन्त ही मान लेता है । उसी तरह हृदय से जन्मा हुआ आदरभाव तो जीवन को पलटने और जीवन की नयी गति करवाने में अत्यधिक आवश्यक हो जाता है, परन्तु उसका प्रदर्शन करना आवश्यक नहीं होता । वह तो इच्छित काम दे तभी उसकी कसौटी और परीक्षा होती है ।

संसार में ही साधना

भगवान का मार्ग अर्थात् संसारव्यवहार से भागकर अथवा उससे बिलकुल अलग होकर कहीं कुछ करना यह मार्ग नहीं है । जहाँ जिस स्थिति में हों, उस स्थिति में प्राप्त हुए कर्म और धर्म यदि हम श्रीभगवान प्रीत्यर्थ किया करें, जो कुछ करें, सोचें, भावना रखें, वह वह सब पुनः उस उस पल श्रीभगवान के चरणकमलों में समर्पण किया करें तो हमारे में रहा अहम् कुछ भी नहीं रहेगा । जो कुछ सभी हुआ करता है, वह कोई हम से नहीं होता रहता पर हम में जो चेतन

रहा है, उसके कारण यह सब होता रहता है । इसलिए यदि हम चेतन को लक्ष्य में रखकर चेतनप्रीत्यर्थ किया करें और वह वह होते समय उसे ही प्रेभक्तिभाव से ज्ञानपूर्वक समर्पण किया करें तो हमारे मन के भाव अवश्य बदलेंगे । **साधना अर्थात् *जीव* स्वभाव को पलटने या उलटवाने की ज्ञानपूर्वक की प्रक्रिया ।** संसारव्यवहार में जो भी सभी किया करते करते श्रीभगवान का नाम लिया ही करना और जो जो कुछ हुआ करे वह वह सभी उसे कहते रहना ।

'पुष्ट जीव' बनो

ऐसा **जीव** का अभ्यास हो जाने से हमारा एक प्रकार का हृदयसंबंध श्रीभगवान के साथ बंध जाता होता है । वैसा संबंध यदि एक बार प्रभुकृपा से बंध गया तो हम **पुष्ट *जीव*** होंगे या बनेंगे । **पुष्ट अर्थात् जिस *जीव* को भगवान अपनी कृपा से पोषता है वह ।** इसलिए, उसका नाम लेते रहना, ललकारते रहना । इसमें संकोच न रखना । मेरे परम मित्र श्री..... आश्रम में रहते हैं, उन्हें कभी-कभी मिलने का भी रखोगी । आपको बहुत सत्संग होगा । वे सहकुटुंब वहाँ रहते हैं और जाने में कोई विघ्न नहीं । सदा आनंद में रहोगे ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १४-६-१९५०

आप आश्रम से पुस्तके लाये हो, यह हकीकत जानी है । उन्हें सभी को पढ़ जाना । जहाँ जहाँ जो वाक्य पसंद

आ जाय ऐसा लगे तो उसके नीचे रेखा खींच देना । प्रभुकृपा से मिलना होते तब वैसे निशान देख लूँगा, यह जाने । उसे पढ़ते-पढ़ते जो कुछ समझ न आये वैसा हो, उस सभी का कभी आश्रम में जाकर समझ लेना ।

नामस्मरण कब फलित होगा ?

नामस्मरण तो चलते, बैठते, घूमते-फिरते, खाते-पीते, उठने पर और सभी कुछ करते करते हुए भी लिया ही करनाजी । नामस्मरण के बिना एक पल भी जाय तो वह अत्यधिक अखरता हो ऐसा मन में हो, तब जानें कि कुछ ठीक होते जा रहा है ।

नम्रता खूब रखें । संसार में किसी का भी उग्ररूप से विरोध मोल न लें । सुमेल भाव से ही व्यवहार करें । स्वयं अपने को ठीक तटस्थतापूर्वक पहचानते रहें ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १९-६-१९५०

निखालिसता की मर्यादा

'मन के दोनों पक्ष आपके पास निखालिस मन से खोलकर रखूंगी कि जिससे मुझे योग्य मार्ग विषयक सूचना मिला करे ।' यह आपने लिखा है । **जीव** को यदि प्रभुमय जीवन बिताना हो तो तो समग्ररूप से निखालिसता, खुलापन और स्पष्टता विकसित करने रहे और ऐसी संपूर्ण निखालिसता

आवश्यक भी है । सभी प्रकार के मन के सारे संकोच घुल जाने चाहिए, यह सब सत्य है, परन्तु जहाँ तक हमारा अपना मनहृदय का, अनुभवपूर्वक का, संपूर्ण भरोसा न हो गया हो, वहाँ तक वैसा कहने में सयानापन भी नहीं है और व्यावहारिकता भी नहीं है । किसी के सामने वैसा कहने से पहले लाख बार सोचना होता है । इसलिए, मेरी आपको सलाह है कि आपको अधिक इन्तजार करना रहता है । मुझे भी आप वैसा कुछ भी न लिखें । एक बार आपको **इस जीव** के प्रति ज्ञानभक्तिपूर्वक का वैसा अनुभव हो जाए और वैसे अनुभव में आपको ज्ञानपूर्वक की निष्ठा आ जाय, उसके बाद ही आप कुछ भी कहो तो वैसे आत्मनिवेदन से विकास होगा । इस समय में हमारे किसी कथन का कोई कुछ भी उपयोग कर बैठे वैसा संभव होना जहाँ तहाँ रहा है ।

जहाँ तक जीवन में जीवनविकास के प्रति उत्कट प्रेमभाव जाग्रत न बना हो, वहाँ तक मनुष्य को ज्ञानपूर्वक की मर्यादा अपने आप स्वीकार कर लेने की अत्यधिक आवश्यकता है । इससे, आपको श्रीभगवान के चरणकमल में अभी तो दोनों तरफ रखा करनी है और उसे ही जो भी कहा करना है ।

फिर, मार्गदर्शन देने का बल और प्रेरणा मुझ में भी उस परम चेतन की कृपा से हुआ करती होती है । उनकी कृपाशक्ति के बिना हमारे में तो कुछ भी हुआ नहीं । मनुष्य की ख्याति और प्रतिष्ठा बाहर की दुनिया में प्रसिद्ध हो, उस

अनुसार समग्र योग्यतावाला वह न भी हो, मनुष्य के जीवन के भीतर में जो चेतन है, उस चेतन की चिनगारी का परिचय हो, उसके बाद ही जो हमें उनके प्रति संपूर्ण खुलापन और निखालिस होना करे वही योग्य है । वैसा हृदय का अनुभव होने के बाद यदि वैसे न हों तो वह अयोग्य भी है ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १३-७-१९५०

आपने जितना लिफाफे के अंदर लिखा था, उतना तो एक पोस्टकार्ड में भी अवश्य आ सकता है तो नाहक के पाँच पैसे क्यों अधिक के खर्च करें ? जीवन में मितव्ययिता का स्थान भी अति महत्त्व का है, यह जानना जी ।

नामस्मरण और आत्मनिवेदन करते रहना जी । भाई के पास से जिसमें समझ न आये वह सभी समझ लेना ।

सहन करके भी सुमेल रखें

ज्ञानभाव से बुजुर्गों की मर्यादा रखें । घर में हम से हो सके उतना सुमेल व्याप्त हो और घर का वातावरण जितना शांतिपूर्ण और प्रसन्नतापूर्ण रख सकने में जितना योगदान दे सकें उतना हृदय की उमंग से करें । वैसा होने देने के लिए घिसना या सहना पड़े तो, यह तो एक प्रकार का यज्ञ है ऐसा हृदय में समझें ।

'खून का नाता' यह व्यावहारिक अर्थ में नहीं लिखा, परन्तु अंतर का निष्काम संबंध या जो टूटने पर भी न टूटे, उस अर्थ में, संसार में हमें ज्ञानपूर्वक ऐसे भाव से आचारण करना है ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २९-७-१९५०

संसार में प्रभुभाव

गुरुपूर्णिमा के दिन ही वह मुहूर्त निकला, वह भी एक योगानुयोग था । हो सके उतना नामस्मरण करते रहना जी । जीवन में विवेकयुक्त नम्रता रखना । यदि विवेक न आये तो वह साधना नहीं है । विवेक की भूमिका तो समता, तटस्थता आदि भावों के साथ रही हुई है । सभी के साथ सुमेल भाव से जीना है । सभी में श्रीप्रभु की कृपालीला का ही विस्तार है, ऐसा समझकर सभी के प्रति ऐसा भाव मनहृदय से रखना हमें सीखना है । हमारे अंतर में जो भगवान विराजमान है, वही हमारे तारणहार हैं और उन्हीं का संबंध सच्चा है । यह ज्ञान जीवन में उतारने के लिए वैसा भाव जगाना है । संसार में रहकर वैसा भाव रख सकना दुर्लभ है ऐसा अनेक कहते हैं, परन्तु यह श्रीप्रभु के चरणकमल में ज्ञानप्रेमभक्ति प्रकट हो जाय तो सब कुछ संभव है । इसलिए, उनकी ज्ञानभक्ति में मस्त बनना । स्मरण में तल्लीनता का अनुभव होगा ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १०-८-१९५०

साधना में चढ़-उतर प्रगति

स्वास्थ्य अब ठीक होगा । श्रीभगवान में संपूर्ण लगनी या प्रेमभक्ति आये बिना उनका स्मरण सतत निरन्तर रह सकना यह दुर्लभ है, परन्तु भरपूर लगनी या उत्कट प्रेमभक्ति कोई ऐसे

के ऐसे ही जन्म नहीं ले लेती है । यह तो मार्ग की ओर का धीरे-धीरे वेगवान पुरुषार्थ होते होते होता जाता है ।

नामस्मरण सतत कैसे रहे ?

प्रभु का नाम प्रभुकृपा से लेने लगें कि बस वह लिये ही चला जायेंगे ऐसा कुछ नहीं है । प्रभु के चरणकमल में रहने को इच्छुक **जीव** पहली ही बार का कदम उठाये यानी उसके बाद वह एक के बाद एक ऊँचे ही ऊँचे कदम बढ़ाते ही जाएगा ऐसा कुछ भी नहीं है । वह तो अनेक बार चढ़ता और गिरता है । इसमें जो **जीव** अपने ध्येय की ओर टकटकी लगाकर देखते रहता है वैसा **जीव** वैसे भुलावे में से, ऐसे प्रकृति के भँवर में से, निकल सकने में प्रभुकृपा से भाग्यशाली हो सकता है । बाकी के तो उसी प्रकृतिमाया के चोले में रगड़कर वहीं के वहीं उलझा करते हैं । जो **जीव** जागृत रहता है, वह गिरकर भी खड़ा होनेवाला ही है । नामस्मरण के पीछे यदि सचमुच हृदय के ज्ञानभक्तिपूर्वक का संपूर्ण पुरुषार्थ होता ही रहेगा तो नामस्मरण सतत निरन्तर लिया ही जाएगा । श्रीभगवान हमें सतत पल-पल प्रेम करते रहते हैं, हमारा पोषण अनेक तरह से पलपल करते रहते हैं, पलपल रस का सिंचन करते रहते हैं, अनेक तरह से बाहर और अंदर के शरीर का पालनपोषण भी वही करते होते हैं । उनके चेतन के बिना कुछ भी हिलडुल नहीं सकता । उसके मुकाबले हम उन्हें याद ही नहीं करते हैं । वे हमारा जितना करते होते हैं

और वे हमारे जितने होते हैं, उसके प्रमाण में हम तो उनकी उपेक्षा करकर ही आचरण करते हैं। इसका अफसोस भी **जीव** को नहीं होता है। श्रीभगवान का नाम भूलने पर हमें असह्य वेदना होनी चाहिए। ऐसा होने पर उनका नाम लिया जाएगा।

अब, प्रकृति के रूपान्तर की बात। वह तो श्रीभगवान के चरणकमल में ज्ञानभक्तिपूर्वक की संपूर्ण शरणागति हमारे एक-एक करण से होने के बाद ही प्रकृति का दिव्य रूपान्तर हुआ करता है, इसके बिना नहीं।

ध्येय-विस्मरण सालना चाहिए

श्रीभगवान के मार्ग पर जानेवाले **जीव** को अपनी प्रकृति को संपूर्णरूप से जानना चाहिए। अंदर रहे शत्रु की अधीरता मात्र ही नहीं, पर उस प्रकार के स्थूल या सूक्ष्म आक्रमणों को उसी ही पल उसे जानना चाहिए। उस उस पल उसे जागृत रहकर या होकर श्रीभगवान की प्रार्थना करके वह सब उसे प्रेमभक्तिभाव से ज्ञानपूर्वक समर्पण किया करना होगा। काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर, नाना प्रकार की अहंता और नाना प्रकार के ममत्व-इन सभी में से मन का अलग होना यह तो मानो कि **जीव** का काम भले न हो, उस **जीव** का यह सब होने पर भी जिस **जीव** का श्रीभगवान के चरणकमल में ही मात्र पड़े रहने का निर्धार हुआ है, ऐसे **जीव** की वैसे निर्धार की कसौटी कितनी ही बार होती रहती है। वह स्वयं अनेक बार गिरता तो होता है और छिलाता भी रहता

है, परन्तु उसकी सतत निरन्तर एकटक दृष्टि तो जीवनविकास के प्रति ही रहा करती है और अपने ध्येय में से तो वह कभी भी पीछे नहीं हटता है । वह गिरता पड़ता रहता है, उसकी उसे बहुत पड़ी नहीं होती, किन्तु उसके ध्येय से उसकी थोड़ी भी नजर चूक होने पर उसे हजारों बिच्छु के डंक से अधिक वेदना प्रकट होती है ।

बैठे न रहो

यह मात्र कल्पना से लिखा नहीं है, पर अनुभव का कथन है । इसलिए यदि हमारे जीवन का ध्येय श्रीभगवान के चरणकमल का सुंदर अलभ्य लाभ वही एकमात्र हो तो हमारी नजर वहीं की वहीं रहा करे वैसा हमें यत्न करना है । ऐसे प्रमाणभूत और सच्चे यत्न में से किसी दिन सच्चे प्राण प्रकट हो जाने हैं, यह निश्चित मानना । जो **जीव** मार्ग पर कदम बढ़ाता रहता है वैसा ही **जीव** मार्ग को एक दिन काटने या पार करने में भाग्यशाली होनेवाला है । वैसा जो **जीव** मानता नहीं वैसा **जीव** तो मात्र जहाँ का तहाँ रहनेवाला है । इसलिए जिसे पहुँचना है उसे तो क्षणमात्र भी बैठे रहना योग्य नहीं है । इसलिए, कृपा करके बैठे नहीं रहना है ।

बुद्धि शत्रु-मित्र है

बुद्धि ओर प्राण ये हमारे आधार के करणों शांत हुए बिना, संपूर्ण शुद्ध हुए बिना, श्रीभगवान के चरणकमल में आसक्त होना यह लगभग असंभव हकीकत है । सबसे अधिक

तो प्राण **जीव** को **जीव**रूप में रखनेवाला है । बुद्धि में सात्त्विकता, तेज, सूक्ष्मता ओर आरपार बेध सके ऐसी बेधकता श्रीभगवान में श्रद्धाविश्वास प्रकटे बिना, जीवंत हुए बिना, कभी जन्म नहीं ले सकते हैं । बुद्धि हमें झकझोरे, डगमगाये और अस्थिर भी करवाये और जीवनविकास के ध्येय से दूर भी फेंकती है । यदि हमारी दृष्टि सतत निरन्तर जीवनविकास के ध्येय के प्रति प्राणवान रहा करती हो तो हमें भौंचक्का जगाकर चेतावनी देनेवाली भी वही होती है । इससे, यत्न करनेवालों के लिए बुद्धि शत्रु-मित्र जैसी होती है । जो खोजता है, उसे मिलता है । प्रयत्न करता है, वह प्राप्त करने के मार्ग पर है । बाकी के तो मुँह फैलाकर रहते हैं । हमें तो उसे ही याद करते रहना है, परन्तु वह किसलिए, उस संपूर्ण जागृतिपूर्वक का ख्याल रखना है और उसमें ही लाभ है । निराश होने का कारण नहीं होता है ।

मेरे जैसों को तो महा मुसीबत थी । खाने की कमी नहीं थी पर गरीबी तो पूरी, पक्की थी । तब भी उनका नाम लिये करने का अभ्यास चालू ही रखा था । पौन चार वर्ष और वह भी अभ्यास जैसा तैसा नहीं, पर सतत और निरन्तर होते रहने से फलित हुआ । भूल जाएँ तो कैसा होता है वह बतलाया है । इसलिए, अभ्यास बिना छुटकारा नहीं है । अभ्यास बढ़ते बढ़ते ही वैराग्य जागनेवाला है । जिसे वैराग्य जाग जाता है, ऐसे **जीव** को अभ्यास सहज और सरल होता जाता है । सभी को प्रणाम ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ६-१२-१९५०

सद्‌भाव का महत्त्व

आप **इस जीव** को महत्त्व, अंजलि देते हो यह जानकर हृदय गद्‌गद होता है । मुझ में तो कुछ भी नहीं है । लिखनेवाले तो अनेक पड़े हैं । मैंने जो कुछ लिखा है, उससे उत्तम प्रकार का अनेक लिख सकते हैं । मनुष्य के हृदय में जागा हुआ सद्‌भाव ही, दूसरों में जो उत्तम तत्त्व है, उसे परख लेता है । मूल्य या महत्त्व सद्‌भाव का ही रहा है । हृदय में सद्‌भाव जागने से, जगत या व्यवहार में सभी कुछ उत्तम भावना में परिणाम आते अनुभव कर सकते हैं ।

बुद्धिभेद न उपजाये

कहाँ श्रीअरविंद और कहाँ यह पामर प्राणी ! कभी किसी के साथ तुलना ही नहीं करनी होती है । जिस **जीव** को किसी भी उच्च आत्मा में विशेष भक्तिभाव और ज्ञानपूर्वक की श्रद्धा हो, उस **जीव** को उनमें ही अधिक भक्तिभाव और श्रद्धा आये वैसा ही हमें आचरण करना होगा ।

संत की अधीर धीरज

आपको क्या लिखूँ ? लिखने का तो दिल है और प्रभुकृपा से सुधारने का हृदय भी है, परन्तु अभी उसके संयोग पके नहीं हैं । प्रभुकृपा से आपका स्मरण होते ही उस भाव को श्रीप्रभु के चरणकमल में समर्पित करके आराम से विराम करता हूँ ।

हँसते हँसते सहन करो

सदा ही स्मरणभाव में मस्त रहा करना है । जगत-व्यवहार में सभी के साथ ज्ञानभक्तिपूर्वक का हृदय का सुमेल बनाये रखने में जीवन की यथार्थता है, वैसा होने पर उसमें अत्यधिक घिसना पड़ता है और वही तपस्या है । ऐसे घिसने से यदि मन को कष्ट, वेदना या दुःख न लगे या संताप ना जागे, परन्तु उलटा उत्साह, आनंद, प्रेरणा जागा करे तो जानना, मानना और अनुभव करना कि वैसे घिसे जाने का उत्तम प्रकार का जीवनयज्ञ चल रहा है । ऐसे यज्ञ की आहुतिओं का तो पार नहीं होता है । आप अपने इस प्रकार के यज्ञ से जीवन को प्रकाशित करो ऐसी प्रार्थना है ।

सहज साधना की शर्त

आप यदि जीवनविकास को ज्वलंत रखा करें और इसके विषय में मनन-चिंतन किया करें कि जीवन को किस मार्ग पर वहन किया करना है, इसका जागृत भान रखा करो तो सब कुछ सहज और सरल है । सभी बड़ों को मेरा सप्रेम प्रणाम ।

वहाँ आने का प्रभुकृपा से होनेवाला है, तब सभी बड़ों की संमति से और ज्ञानपूर्वक मिलने का किया करोगी ।

यह **जीव** में तो कुछ भी नहीं और यदि हो या दिखे-करे तो वह सामनेवाले व्यक्ति में जागे हुए सद्‌भाव का ही परिणाम है ऐसा समझें ।

लेखक की अंतिम अभिलाषा

प्रभुकृपा से प्राप्त स्वजनों के अंतर में रहे हुए चेतन स्वरूप का संपूर्ण विकास हुआ मुझे तो अनुभव करना है । यही इस रंक के जीवन का फलितार्थ हुए बिना का एकमात्र बाकी रहे जीवन का यज्ञकर्म है । यह आप पूर्ण करो तो ही जीवन जीना योग्य होगा ।

• • •

सूरत ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २२-२-१९५१

साधना से भावपूर्ण हृदय शक्ति मिले

हृदय की भावना का उद्‌गम और उसकी दीप्ति जहाँ होने लगती है, वहाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में तब उसका विस्तार होने लगता है और विस्तार होने के साथ-साथ विविधता भी विस्तृत होती जाती है । हृदय की भावना जागने से वह कहीं एक ही विषय में स्थगितरूप से पड़ी नहीं रह सकती है । हृदय की भावना एकाग्र, केन्द्रित तथा ध्येयलक्षी रहने पर भी प्रत्येक व्यवहार के क्षेत्र में बुद्धि का स्पर्शमात्र विचार, तर्क, भावना, ऊर्मि से नहीं हो सकता है और अपने आप एक प्रकार की गूढ़ स्वयं-प्रज्ञा की कला प्राप्त होती रहती है । कितने ही **जीवों** में ऐसी स्वयं-प्रज्ञा प्रकृति के स्वभाव के कारण भी होती है । जब कि ऊपर की प्रकट होती जाती स्वयं-प्रज्ञा में तो प्रेमभक्ति की लाक्षणिक प्रेरणा प्राणवान प्रेरित करती होगी ।

सुमेलभाव से जीवन को विकसित करो

जीवन को सर्वतोमुखी बनाना है, नहीं कि कुएँ के मेढ़क जैसा । उसी कारण से हमारा समभाव, तटस्थता, शांति मतसहिष्णुता, सहानुभूतिभरा सद्‌भाव तो सभी के प्रति रहा करे यह अति आवश्यक है । हमारे हृदय का भाव तो जीवन में सर्वलक्षी होना चाहिए, पर उसके साथ-साथ वह एकाग्र, केन्द्रित और ध्येय में सतत निरन्तर रत रहा करे यह भी उतना ही आवश्यक है । जहाँ तहाँ हृदय के सुमेलभाव से ही व्याप्त रहना है ।

स्वदोषदर्शन-एक उत्तम साधना

संसार यह जीवन की सुगंध फैलाने के लिए प्राप्त हुई तपस्या की भूमिका है । संसार से **जीव** समतापूर्वक जीवनविकास के योग्य सार को स्वीकार करने का किया करता है और संसार यह तो अनुभव को बोरने की अद्‌भुत पाठशाला है । जीवन का रस संसार में नहीं है, पर अंतर में है । जिस प्रकार की भावना में रमा करेगा वैसा संसार प्राप्त होता है । संसार यह तो हमारे अपने-अपने कर्म के परिणामों को उस उस तरह से भोगने, परिणाम लाने का निमित्त कारण है । व्यक्ति का ही विस्तार-स्वरूप संसार है । **संसार में दूसरों का कुछ भी न देखकर मात्र जो *जीव* अपना प्रतिबिम्ब उसमें देखा करके तथा वहाँ जिस तरह से अपने को सुधारने का सूझे, वैसा वह यदि अपने को रचनात्मक रूप से सुधारने का किया करे तो संसार जैसी पाठशाला या गुरु अन्य कहीं भी नहीं मिल सके ।**

तटस्थता - एक उत्तम साधन

हम सदा ही अपने में भावना से एकाग्र और केन्द्रित रहा करके अपनी धुन की मस्ती में रहा करें । धुन में नशा है, पर जीवनविकास की धुन में तो साधक को तटस्थता, समता जागृतिपूर्वक रखा करनी है । नहीं तो धुन की पकड़ में **जीव** रहा करता है और विकास स्थगति हो जाता है । हमें तो प्रत्येक भाव से अलग होने का ज्ञानपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए । अपने हिस्से में आये हुए कर्मों को प्रभुप्रीत्यर्थ किया करके उसे समर्पण किया करें और कर्म के आदि, मध्य और अंत में उसकी स्मरण-चेतना को प्राणवान रख रख के, प्रभुभावना को ही लगे रहने का चेतनयुक्त अभ्यास दृढ़ करने में सार है । संसार में संसार की तरह जीना नहीं है । उस तरह तो जीवन गंदगी बनेगा । फिर, उसके साथ संसार उच्चतर रूप से जीने पर संसार वह सहनेवाला भी नहीं है । संसार ने अनेक संतभक्तों को अनेक प्रकार से हैरान परेशान करके पीछे करने का प्रयत्न किया ही है । तथापि जीवन की भावना का उद्‌गमस्थान तो है संसार । संसार की वास्तविकता की भूमिका से हमें उड़ान किया करना है । इससे हमें **संसार की कभी अवगणना नहीं करनी है । संसार तो हमारी अवगणना करेगा, यह भी निश्चित समझ लेना ।** प्रभुस्मरण खूब खूब किया करें ।

• • •

सूरत ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २३-२-१९५१

जागृति रखकर स्वयं को जाँचो

जीवन को यदि ध्येय में साकार करना हो और जीवन को सतत उच्च भावना में गतिमान होने देना हो तो वह यद्वातद्वारूप से होनेवाला नहीं है, यह निश्चित जानना । मकान की चुनाई करनी होती है तो प्रथम उसका आरंभ करना ही पड़ता है, वैसे जीवन की भावना को आकार देने के लिए भूमिका की प्रथम आवश्यकता रहती है । भूमिका अर्थात् होते रहते प्रत्येक कर्म में हमारे मन की भावना, दृष्टि और वृत्ति किस प्रकार की रहती है, उस पर से हमें अपनी गति की समझ पड़ जानी चाहिए । जिसे जीवनविकास करना है, उसे पहले तो अपने आपको ठीक आरपार परखा करना होगा और स्वयं अपने आरपार सतत जागृत रहकर देखना पड़ेगा । फिर, मात्र देखा करने से भी नहीं चलेगा, परन्तु जिस ओर जाना है, उस ओर की अभिमुखता व्याप्त है कि नहीं, उस ओर का प्रयास करने का दिल रहा करता है कि नहीं और वैसा सजगतापूर्वक प्रयत्न हुआ करता है कि नहीं, वैसा ज्ञानभान हमें रहा करना चाहिए । इस प्रकार की जागृति मन में रहा करती होगी, तभी उस प्रकार के प्रयत्न हुआ करते हैं । इसलिए, मन की जागृति किस प्रकार की रहती है, उसे परखा करने का अभ्यास विकसित करना है । मने को कहीं किसी भी भ्रम में नहीं डाल सकते या धोखेबाजी में न डाल दें उसकी संपूर्ण कड़ी निगरानी रखनी है ।

श्रद्धा ज्ञानप्रेरक हो

जीवन को यदि जीवनविकास के मार्ग पर ले जाना हो तो उसके लिए सभी भाव और सभी तरीके से फना होना पड़ेगा, और ऐसा फना होने में जिसे आनंद, उल्लास और अत्यधिक उमंग हुआ करता है, ऐसा **जीव** सही रूप से फना हो सकता है । आध्यात्मिक जीवन का मूल आधार श्रद्धा का होने पर भी, वहाँ जो श्रद्धा का यथार्थ है, जो समझ है, उसका पूरा स्पष्ट ख्याल हमें होता नहीं । जीवन को ऊपर चढ़ानेवाली श्रद्धा यह कोई मामूली भाव नहीं है । वह तो ज्ञानप्रेरक होती है। ऐसी श्रद्धा में अमोघ शक्ति रही होती है। इससे, आध्यात्मिक जीवन की बात करनेवाले **जीव** को जब बिलकुल मामूली देखता हूँ, तब वैसे **जीवों** पर कँपकँपी होती है । जिसमें श्रद्धा होती है वैसे **जीव** के रूपरंग और ही होते हैं । श्रद्धा यदि आत्मविश्वास न प्रकट कर सकती हो तो वैसी श्रद्धा में कोई माल (सत्त्व) नहीं है, यह निश्चित जानना ।

श्रद्धा के लक्षण

जीवन का जोश श्रद्धा से आ जाता है और जिसमें जोश होता है, उसमें एक प्रकार की तेजस्विता भी प्रकट हुई अनुभव होती है । यदि श्रद्धा हो तो उसके प्रभाव द्वारा जीवन में एक प्रकार की अडिगता, निश्चितता, निश्चिंतता, निश्चयात्मक दृढ़ता आया करती है । इससे, श्रद्धा को इन लक्षणों द्वारा पहचानें। यदि वैसा हम जीवन में अनुभव कर सकते हों तभी

श्रद्धा है ऐसा मानें । नहीं तो श्रद्धा विकसित करने के लिए जैसा होना चाहिए वैसा किया करें, परन्तु खाली खाली मन को धोखेबाजी की दशा में न रखा करें । श्रद्धावान **जीव** कभी एक की एक दशा में पड़ा नहीं रह सकता । उसे एक के बाद एक आती अनेक प्रकार की उथलपुथल में पड़े ही रहना पड़ता है और ऐसी उथलपुथल तो जीवननिर्माण के लिए अमूल्य मौका है, ऐसा उसे तब तब लगता है । इससे, उसे कहीं किसी के प्रति अन्यथारूप व्यवहार करने का अधिकार भी नहीं है । श्रद्धा जिसे है और जिस विषय की श्रद्धा है, उसे उस उस विषय में वह लिपटाये रखती है । विषय से भिन्न यदि हो सकते हो तो उस विषय की श्रद्धा उसमें नहीं है ऐसा मानें । जिसे जिस बात की श्रद्धा है उसमें उसका मन लिप्त रहा करता है, ऐसा हुआ करे तभी श्रद्धा है ऐसा मानना । पूज्य माताजी और पिताजी को सप्रेम प्रणाम ।

यह पत्र किसी को पढ़ाना हो तो भले पढ़ाओ ।

• • •

सूरत ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २४-२-१९५१

लाचारी को फेंक दो

जीवन में जो लाचारी की बात करता है, उस **जीव** में कहीं किसी प्रकार की शक्ति प्रकट हुई नहीं है ऐसा जानना । अनेकों को ऐसा कहते सुना है कि स्त्रीजीवन तो लाचारी से भरपूर है और उसमें भी विधवा तो परम लाचार है । मैं यह

जब सुनता हूँ, तब मनुष्य के असीम अज्ञान से अति आघात अनुभव करता हूँ। जहाँ शक्ति नहीं है वहीं पर लाचारी और कायरता है। इससे, जो कोई **जीव** अपनी लाचारी की बात करता है वैसा **जीव** जीवनविकास के मार्ग पर कभी नहीं जा सकता है। जिसे ऊर्ध्व मार्ग पर जाना है वैसे **जीव** ने यदि लाचारी की बात की तो जानना कि उसमें कोई आत्मविश्वास प्रकट हुआ नहीं है। और जिसमें आत्मविश्वास नहीं है वैसा **जीव** कुछ नहीं कर सकता। जिसमें आत्मविश्वास है वैसे **जीव** का शरीर पुरुष का हो या स्त्री का हो, सधवा का हो या विधवा का हो, तब भी वह कदापि लाचारी की दशा में पड़े नहीं रह सकता। आत्मविश्वास तो लाचारी को कही फेंक देता है। फिर जिसे प्रभुकृपा से अपना माना है, उसे लाचार हुआ देख हमें तो अत्यधिक शूल चुभते हों ऐसी वेदना हुआ करती है। इससे कहीं भी किसी दशा में लाचारी कभी नहीं अनुभव करें। लाचारी पाने में तो बिलकुल नामर्दाई है और हमें नामर्द की सोबत पुसाती भी नहीं है। हमारे सिर पर तो परम कृपालु श्रीभगवान समर्थ गरजते-दहाड़ते रहते हैं और ऐसे समर्थ स्वामीत्व का यदि जीवन में भान जाग जाय तो हम सौभाग्यशाली ही हैं। **जिसको भगवान के आधार के भान जागता है वैसा *जीव* कभी निर्माल्य भी नहीं रह सकता।** इसलिए हमें तो जो जो परिस्थिति मिला करे, उसमें सनाथ हैं और ऐसे उसके सनाथपन में बस प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक मस्त रहा करें वही सर्वोत्तम दशा है, जब **जीव** की लाचारी तो अज्ञान या भ्रममूलक है।

जीव की लाचारी यह तो उसके मन की एक प्रकार की धोखेबाजी है और मन को स्वयं उसी की उसी दशा में रखा करने की उसकी दानत है, परन्तु जिसे जागना है, वह तो जागे बिना रह नहीं सकता । यदि लाचारी होती है तो वह अपने अपने विषय में ही होती है । तेज प्रकट होने पर जैसे अंधेरा नहीं रह सकता है वैसे आत्मविश्वास या श्रद्धा प्रकट होने पर लाचारी टिक भी नहीं सकती । यदि तुम्हें **जीव** के चेतनरूप में श्रद्धा हो और यदि तुम अपने में उसकी उष्मा या प्राणचेतना प्रकट हुई अनुभव न कर सको तो फिर क्या कहना और क्या लिखना ? मेरे या तेरे बारे में क्या सोचना ? श्रद्धा के बल-शक्ति के द्वारा ही जीवन का विकास होने की संभावना है । श्रद्धा जैसे भाव-ज्ञानमूलक है, वैसे फिर शक्तिप्रेरक भी है । श्रद्धा द्वारा तो जीवन में मिलते प्रत्येक क्षेत्र की समझ के प्रति अंतर की आँख को खोल सकते हैं । ऐसी अंतर की समझ यदि प्रकट होती अनुभव हो सकती है तभी जानना-मानना कि हम में श्रद्धा है ।

सर्व प्रकार के पुरुषार्थ करते आत्मज्ञान का पुरुषार्थ अपार साहस, हिंमत, धीरज, सहनशीलता और ऐसे सात्त्विक गुण का भंडार है । **जीवन के विकास का मार्ग यह तो फूलों से बिछाई कोई शय्या नहीं है । भगवान के मार्ग पर जाने का होने से जीवन का जोश यदि आता न अनुभव हो तो उस तरफ का हमारा दिल हुआ नहीं है ऐसा जानना और मानना ।**

जीवन की धन्यता और उसके इस प्रकार का आनंद तो वहाँ जिस दशा में **जीव** को व्याप्त रहा करना है, वह जितना सत्य है, उतना ही उस मार्ग में जाते जाते उस उस कक्षा के प्रकार का आनंद उसे हुआ ही करता है। और इससे तो मार्ग पर लगे रह सकता है और विपथगामी हो नहीं सकता। जिसे अपनी शक्ति में भगवान की शक्ति का भान जागता है वैसा ही **जीव** उसके मार्ग पर जा सकता है। जीवनविकास के मार्ग पर जितनी सात्त्विक नम्रता की आवश्यकता है, उतनी आवश्यकता जीवन को सीधा खड़े रखने में भी रही हुई है, वह जान लें।

• • •

मुंबई ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २५-२-१९५१

मन भक्ति द्वारा काबू में रहे

गजल

हृदय का भाव जागते हृदय से उमड़ करके,
सभी व्याप्त हुआ करे स्वयं होकर रसरूप जो भी।

हृदय का भाव जब जागता है, तब मन के एक प्रकार के स्थूल भावों तथा वृत्तिओं को गौणरूप रखता है। अपना महत्त्व वह स्थापित कर देता है और मन को उसके स्वरूप में वह बदल देता है। भाव स्वयं अपना अधिपत्य जमा देता है और उस भाव के अनुरूप मन का भाव होता रहता है। भक्ति की भावना वह मिथ्या नहीं या कल्पना भी नहीं, परन्तु भक्ति का रस बढ़ने से मन को उस प्रकार में वह दृढ़ करके

मन के स्वरूप को भी भक्ति के भाव में रखा करता है। जैसा भाव जागता है, उस प्रकार के भाव में मन रहा करता है, यह तो हमारे व्यवहार के दैनिक अनुभव का विषय है। भक्ति के जागने पर मन वैसा होता है, यह भी निश्चित सत्य है। मन को खास यत्न करने की तब आवश्यकता नहीं रहती है। मात्र हमारा हृदय भक्तिवाला बन जाय, ऐसी लगनी लग जाय तो मन तो अपने आप उसमें रहा करनेवाला ही है और इसके लिए तो विवेकयुक्त तटस्थता, समता आदि की खास आवश्यकता रहती है। प्रत्येक पैदा होते भाव में, उस भाव के साथ-साथ तटस्थता और समता रहा करे तभी आगे विकास हुआ करेगा।

दिल की दानत जाँचो

यदि **जीव** को किसी प्रकार की धुन लगती है तो मन उस धुन के विषय में लगा रहता है। मन को धुन के विषय में प्रेरित करने के लिए उस समय कोई यत्न नहीं करना पड़ता है, वह तो अपने आप वैसा रहा करता है। उस अनुसार यदि हमें सचमुच की भक्ति की धुन लग जाय तो मन उसके रस में रहा ही करेगा। हमें अपने हृदय या दिल की दानत ठीक से जाँचनी पड़ेगी। उसमें कहीं धोखेबाजी की कक्षा ना हो उसका पृथक्करण कर करके तौल तौलकर देखना पड़ेगा।

भक्ति की महिमा

हमारे सभी प्रकार और सभी भावों का संपूर्ण ज्ञानपूर्वक का समर्पण भक्ति माँग लेती है। भक्ति करने का काम

अनुभवहीन और नाहिम्मत का नहीं है । भक्ति यह तो महा शूरवीर का काम है । भक्ति करनेवाले के सिर पर अनेक प्रकार की कठिनाइओं के पर्वत टूट पड़ते हैं । तब भी वह नम्र से नम्र रहा करने पर भी स्वयं फिर दृढ़ रहा करता होता है ।

भक्ति करने का जिसका दिल है, उसे सिर अलग करके उसे करना रहता है । भक्ति करनेवाले **जीव** को जहाँ किसी की भी अवगणना नहीं करनी है वहाँ तुच्छकारना तो कहाँ से हो ? भक्ति प्रकट होने से बुद्धि की सूक्ष्मता आती है । जैसे वसंत आने पर सब कुछ नवपल्लवित होता है और अणु-अणु में चेतन आता है वैसे भक्ति का रस आने पर या जागने पर मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् इन सूक्ष्म करणों में भी उसकी असर हुए बिना नहीं रह सकती है और मन मुग्ध होता है । बुद्धि में तो शंकावाद, तर्कवाद, ऐसा या वैसा विचार करने, अनेक प्रकार के तुक्के लगाने या दौड़ाने या अनेक प्रकार की योजनाओं में खेला करना आदि है । एक विचार किसी ने बतलाया तो उस पर वह एक के बाद एक प्रतिकूल या तरफदारी में विचार करने लग जाती होती है, वैसी दशा से वह सुस्त पड़ती जाएगी और समझदार होती जाएगी और बुद्धि भी भक्ति में रंगती जाएगी ।

चित्त भी भक्ति के रस से रंग जाने पर जो कुछ होता रहेगा, उसके संस्कार उस उस अनुसार की कक्षा में उस अनुसार न पड़ते भक्ति की भावना अनुसार पड़ा करते हैं । इससे यों कर्म का पाश मात्र कर्म के क्षेत्र अनुसार लगेगा नहीं ।

इससे स्थूल कर्मबंधन होने रुकने लगेंगे और प्राण की आशा, इच्छा, लोलुपता, तृष्णा, वासना ऐसे प्राण की प्रकृति का धर्म भी बदलता रहेगा और अहम् भी अभिमान में न प्रेरित होकर अपने शुद्ध सात्त्विक भावना के हुंकार में रहकर स्वरूप के सत्त्वपन में प्रेरित होते जाता है। इसप्रकार, भक्ति का तत्त्व तो हमारे में ठोस परिणाम जगानेवाला है। भक्ति में बावलापन नहीं है, धुन है सही, किन्तु साथ-साथ समता, तटस्थता और विवेक जागृत रहता होने से उसमें फँसने का भी नहीं होता। भक्ति में खेलदिली है, शहादत है, शूरवीर का पराक्रम और बहादुर योद्धा की हिंमत है। भक्त किसी से हारता नहीं है। किसी से भागता नहीं है। जो जो प्राप्त होता जाता है, उसे प्रभुकृपाप्रसादी समझकर उसका वह प्रेभक्तिभाव से ज्ञानपूर्वक स्वीकार करता है और उसे प्रभुप्रीत्यर्थ अपने विकास के लिए जीवन में जैसे उपयोग कर सकता है वैसे उसमें वह चेतनापूर्वक की जागृति से प्रवेश करता है। भक्ति वह विह्वलता नहीं है। भक्ति तो **जीव** में सचेतनता लाने के लिए साधन रूप में जैसे है वैसे साध्यपन में भी वह उत्तरोत्तर नये नये स्वरूपों में परिणत होती रहती है। भक्ति के स्वरूप एक नहीं होते हैं। उसके स्वरूप के प्रकार, स्थिति बदलने पर नये होते रहते हैं। इसलिए, भक्ति का मूल्यांकन उस उस भक्ति की कक्षा की भूमिका अनुभव किये बिना योग्य रूप से नहीं कर सकते हैं।

संसार के दुःखों का हेतु

संसार भक्ति को विकसित करने के लिए मिला है। इसमें अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ, उलझनें, उपाधियाँ जो मिला करती हैं, उन समग्र का मूल उद्देश्य तो हमारे जीवन

के सत्त्व को जगाने का, जगाकर उसे सचेतन रखने के लिए का तथा जीवन के जोश को तेजस्वित रखने के लिए है और साहस, हिंमत, धीरज, सहनशीलता, उदारता, उदात्त भावना, तटस्थता, शांति आदि गुणों को दृढ़कर के भूमिका प्राप्त करने के सकल साधन हैं । संसार से भगवान के भाव को खेलता अनुभव कर सकने की दिल में प्रचंड आग प्रकट होनी चाहिए तभी हम जीवित रह सकते हैं ।

• • •

मुंबई ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २६-२-१९५१

आनंद से फना होएँ

जीवनविकास का मार्ग यह तो फनागीरी का है । सभी प्रकार से और सभी भावों से अपने आपको घुला घुलाकर यदि **जीव** को धन्य हुआ करने का अनुभव हुआ करे तो जाने और माने कि जीवनविकास की लगनी या रस हमें लगा है । **जीव** का अहम् पिघलाने के लिए संसार में अनेक प्रसंग प्राप्त हुए ही करते हैं । ऐसे प्रसंगों का ज्ञानभान जागता है और उस पल उसमें उस प्रकार की समझ जो जीवित रख सकता है, वैसे **जीव** विकास के मार्ग पर जा सकते हैं, बाकी के नहीं । अपने आपको पूरी तरह से ज्ञानभक्तिपूर्वक शून्यता में हमें व्याप्त रखना है । ऐसी शून्यता आने पर अपने आप आत्मशक्ति खिलती है या खिलती जाती हम अनुभव कर सकते हैं । कुछ भी हो तब भी हमें तो उसी मार्ग पर बने रहना है, ऐसे मनहृदय का पक्का निर्धार जिसे जागा हुआ है, ऐसे **जीव** के प्रयत्न और मनोमंथन, कोई ऐसे वैसे नहीं होते

हैं । प्रामाणिकता से ऐसे यत्न करते **जीव** की मेहनत कोई छिपी रह सकती भी नहीं है ।

प्रत्येक दशा के लक्षण होते हैं, इससे, लक्षण द्वारा अपने आपको तथा मन की दशा को परखना होता है । प्रभु का मार्ग तो ज्ञानभक्तिपूर्वक आत्मसमर्पण का है । समर्पण करते करते जिसके प्राण कंठ तक आ जाय वैसा **जीव** आत्मसमर्पण कर भी नहीं सकता । फिर जिसे आत्मसमर्पण किये का तटस्थतापूर्वक के विवेक का भान भी नहीं जाग सकता, ऐसा **जीव** चेतन के मार्ग पर कभी जा नहीं सकता है, यह भी निश्चित जानना । त्याग, बलिदान, समर्पण – ऐसा त्रिवेणीसंगम जिसके जीवन में प्रकट होता है, ऐसा **जीव** ही जीवनविकास में प्रवेश कर सकता है और ज्ञानभक्तिपूर्वक किये त्याग, बलिदान और समर्पण की भावना से अपार शक्ति प्रकट होती है । अज्ञानमूलक दशा का त्याग वह त्याग नहीं है, यह तो खाली, घिसना ही है । उसमें तो मात्र खींचनापन रहा हुआ है और उसमें लाचारी की भावना होती है और लाचारी की दशा होती है और उसमें से क्लेश, संताप, उद्वेग आदि बढ़ते हैं और जीवन का कुचलनापन होता है । जब कि सच्ची समझ की भावना से हुए त्याग में तो आनंद-उल्लास प्रकट होते हैं ।

इसीलिए, वैसे वैसे प्रसंग मिलने पर ऐसी त्याग की भावना प्रज्वलित होकर के अधिक से अधिक देदीप्यमान रहा करती है । ऐसे **जीव** को तो अनेक प्रकार के त्याग की परम्पराओं से गुजरना पड़ता है और वैसे वैसे त्याग के कदम

उठाने पर अधिक से अधिक साहसी, धीरजवान, अपार हिंमतवाला हुआ करता है जीवन की अनेक प्रकार की कमजोरियों को छोड़कर सदा ही जागृत रहा ही करता है। जो **जीव** अपनी कमजोरियों को पहचानकर ढंकने का जानेअनजाने भी मन से व्याप्त किया करता है, वैसा **जीव** कभी अपनी निर्बलताओं को छोड़ नहीं सकेगा। अनेक प्रकार की मान्यताएँ, समझ, आदतें, आग्रह छोड़ना या रखने के प्रसंग **जीव** को संसार में मिला ही करते हैं, पर जिस **जीव** की तटस्थता की भावना जीवन में विकसित हुई नहीं है, वैसा **जीव** उस-उस प्रसंग में बिलकुल फँस जाता है, यह भी निश्चित मानना। संसार प्राप्त हुआ है - निमार्ण के लिए। संसार यह तो प्राणवान महायज्ञ है, पर उसमें यज्ञ की प्रचंड भावना हृदय में कौन जीवित रख सकता है ? बात करके हमारी दरिद्रता दूर नहीं हो सकेगी।

मन का भाव और मन के विचार और वृत्तियाँ कैसी-कैसी होती रहती हैं, उसे परख परखकर अपने आपको उस उस तरह से पहचानते जाएँ और उसमें थोड़ासा भी भ्रम न रखें। मन को उसकी उस दशा में पड़े रहने देना नहीं है। हम कभी मन के द्वारा झुके नहीं, पर उसके वैसे **जीव**रूप को फेंकने लिए सदा उद्यत रहा करें। जीवनविकास का मार्ग फनागीरी का है और 'फना' में शह समायी है। ऐसा फना होने पर जिसे अंतःकरण में प्रकाश होता है वैसा **जीव** इस मार्ग में प्रवेश कर सकता है। इसलिए, सदा पलपल स्मरण किया करके संसार में उपरोक्त तरह से तुम जीया करो ऐसी हृदय की भावना जागती है।

• • •

मुंबई ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २७-२-१९५१

जीवन-सार्थकता की चाबी

नामस्मरण का जीवित अभ्यास हुआ करे वह उत्तम है। जिसका अभ्यास करना है, उसका भान जीवित रहा करे तभी अभ्यास होगा। चलते, फिरते, उठते, बैठते, कुछ भी काम करते-करते स्मरण जीवंत रहा करे वह काम अब जिन्दगी का मुख्य कर्तव्य है। वह कर्म ज्ञानपूर्वक योग्य रूप से हुआ करे, वही देखना रहा करे तभी जीना सार्थक होगा।

गजल

हृदय का भाव जागे जहाँ, हृदय का भेद टूटता है,
हृदय का भेद जहाँ टलता, परस्पर एक बनते वे।
हृदय की एकता में यदि हृदय-सद्भाव जीये तो,
हृदय की चेतना का तो सचमुच स्पर्श होगा क्या!
जीवन का भव्य और रम्य हेतु जगाये वह!
परस्पर का सही संबंध हृदय की भावना में है,
जीवनभक्ति जगाने में सही उपयोग का वह है।
हमारे में संपत्ति कुछ नहीं, हम तो भाव से जीते,
हमारा सर्व आधार, हृदय की भाव-भूमिका।
हम में जो जीवित रहे, कृपा से क्या अनुभव वह
हुआ करता, जानेगा तो जीया जायेगा सच्ची शांति में।

प्रभु को जो भूलता है वह भूलता है बिलकुल अपना,
प्रभु अंतर जीवित रखे जो प्रभु में मिले वह जाता ।
प्रभु सर्वस्व जानकर 'भूषण वह जीवन का है,
जीवन की एक शोभा वह !' प्रभु भजने का दिल करना ।
हृदय की भावना वह नहीं बेकार कल्पना गिनना,
हृदय की भावना से तुम सदा जीवित रहा करना ।
प्राप्त कर्म प्रीत्यर्थ कर करके वह प्रभुचरण में,
समर्पित करके प्रभु के हृदय में भाव से ठहरना ।
प्राप्त जो सभी उसे स्वरूप प्रभु के हृदय समझकर,
सभी में हृदय भाव से ठहरकर आचरण करे मिलकर ।

• • •

मुंबई ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २८-२-१९५१

संसार भी साधना का सहायक हो

हमें जिस मार्ग पर जाना है, उस मार्ग पर ज्ञानभान और उसकी योग्य समझ यदि जीवित न रहा करे तो उस मार्ग में हम प्रवेश नहीं कर पायेंगे । संसारव्यवहार, सगेसंबंधी ये सभी हमें मिले हुए हैं और उन उनके साथ अनेक प्रकार के प्रसगों में हमें उठना पड़ा और वैसी वैसी स्थिति में हम कितनी ज्ञानपूर्वक जागृति रख सकते हैं, उसकी परख हमें होती रहे और ऐसा करते करते जैसे जैसे हमारी ऐसी जागृति बढ़ती

है वैसे-वैसे ध्येय के प्रति का मनन, चिंतन और निदिध्यासन अधिक तेज होता जाता है । किसी स्थान पर जाना हो और रास्ता भूल गये हों, यदि ऐसा पता चले तो कितने ही व्यक्तिओं से पूछ-पूछकर स्थान खोजकर हम वहाँ पहुँचा करते हैं । इसलिए इसमें भी हमें भूल जाने का भान यदि जागे और उसका दर्द अंतर को खले तो हम एक की एक स्थिति में कभी पड़े नहीं रह सकते हैं ।

जो **जीव** प्रभुकृपा से जागा हुआ है, ऐसा **जीव** कभी भूला पड़ता ही नहीं ऐसा नहीं होता । वह भूला तो पड़ता है, पर उसे प्रभुकृपा से भूल जाने के समय से भान जाग जाता है और उसे तब हृदय में डंक की वेदना होती है । ऐसी वेदना के प्रताप से वह जागृत और सचेतन हो जाता है और ऐसा भूल जाना तो उसे आशीर्वादरूप हो जाता है । इसलिए, संसार व्यवहार जो प्राप्त हुआ है और उसमें अनेक प्रकार के प्रकृति के स्वरूप हैं, वे हमें, यदि रास्ते जाना हो तो, अवरोध करते अनुभव में आते हैं सही, परन्तु इसके साथ-साथ यदि हमारे दिल की धधकती तमन्ना और सच्ची दानत हो तो उसमें से बल भी उतना ही मिलता है । **भगवान का नामस्मरण करते रहें । एक एक शब्द समझ विचार कर बोलें जिससे किसी के साथ कड़वाहट पैदा न हो ।**

• • •

मुंबई ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १-३-१९५१

ज्ञान-समझ को जीवन में उतारो

यह जीवन इतना अधिक विस्तृत और विविधतावाला है कि यदि उसकी काट-छांट करने बैठें तो अंत भी न आये। जीवन को इससे कोई नकार भी नहीं सकता। उसके स्वीकार करने में ही आनंद है। जीवन का जो स्वीकार करता है और ऐसी मनोभावना जिसमें प्रकट हुई है वैसा **जीव** आगे हो या पीछे हो, उसकी वास्तविकता की भूमिका वह नहीं छोड़ता है। ऐसा **जीव** कुछ खोता भी नहीं और उसे प्राप्त हुआ जाता रहता भी नहीं। जो जो कुछ मिलता रहता है, आता रहता है, जाता रहता है अथवा तो जो जो कुछ हुआ करता है, उस उसके हार्द को समझने के लिए वह यत्न करता है। जो कोई इस तरह से और इस भाव से जो भी सब समझने के लिए यत्न करते हैं और ऐसा समझने के लिए अंदर जिसका प्राणवान हृदय का प्रयत्न है, ऐसा मनुष्य उस वस्तु के अंतर में उतर सकता है, उसे प्राप्त भी कर सकता है। हृदय की संपूर्ण भक्ति के बिना **जीव** की ऐसी भूमिका होना कभी संभव नहीं है। जीवन के प्रति हमारी अपनी कोई निश्चयात्मक दृष्टि यदि पैदा हो तो उस प्रकार की चेतनायुक्त समझ आये तो वैसा आचरण भी होगा ऐसा कोई पक्का नियम नहीं है। समझ होने पर भी और् कभी जागृत होने पर भी आचरण उस प्रकार का न भी हो सके। किन्तु ऐसे समय में समझ के आधार पर योग्य

व्यवहार न हो सकने के कारण से दिल में एक प्रकार का जो मनोमंथन प्रकट होता है, वैसा जागृत मनोमंथन उसे अधिक से अधिक आचरण की प्रेरणा में प्रेरित करता रहता है। समझ और आचरण इन दोनों का सुमेल किसी दिन हमें प्राप्त करना ही होगा, इसके बिना चलेगा नहीं। तभी जीवन का स्वीकार किया है ऐसा गिन सकेंगे ।

मरकर ही जी सकते हैं

जीवन के तत्त्व को अनुभव करने के लिए अनेक प्रकार की मृत्यु को भेंटने की हमारी तैयारी होनी चाहिए। केवल मात्र तैयारी ही नहीं, पर सचमुच वैसी परिस्थिति में पड़कर ही हमारे तेज की उस समय सच्ची परीक्षा होती है और ऐसे प्रसंगों में जिस तरह हम ज्ञानभक्तिपूर्वक जितने जागृत होंगे उतने ही प्रमाण में जीवन के विकास के मार्ग को आत्मसात् करने में सफल हो सकते हैं। जो जागृत होगा वह सो कैसे सकता है ? इसलिए सदा ही पलपल भगवान का स्मरण करते रहकर कर्म में डूबे बिना अंतर में अंतर से जागृति रखा करें ।

• • •

मुंबई ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ३-३-१९५१

एक नम्र बुजुर्ग का प्रसंग

गुरुवार शाम को वरसोवा में पूज्यश्री..... के यहाँ हम दस-बारह जन भोजन करने गये थे। बहुत ही प्रेमभक्तिपूर्वक के सद्भाव से हम सभी का सत्कार किया। अंधेरी तक कार लेकर सामने से आये थे। हम सभी को समुद्र किनारे घूमने

ले गये थे । वहाँ थोड़ी देर बैठे । कुछ उपदेश देने को कहा । तुम जानती हो कि मुझे कोई उपदेश देना आता नहीं है । स्थान बहुत रमणीय है और एकांत भी सुंदर है । पूरा घर सभी जगह घूमकर बतलाया और वातावरण की सुंदरता और आनंदप्रेरक शांति में हम सभी के भोजन की व्यवस्था हुई । उन्होंने व्यक्तिगत उपयोग करने को तीन सौ रूपए की रकम भी प्रेमभक्ति से दी ।

तप अर्थात् ज्ञानपूर्वक सहना

उनकी सौम्य मूर्ति हम सभी को प्रत्यक्ष बोधपाठ लेने के लिए योग्य है । वे सद्‌भाव और नम्रता की प्रत्यक्ष जीवंत मूर्ति हैं । हम सभी भी संसारव्यवहार में जितने नम्र होंगे, उतना हमारे जीवनविकास के लिए उत्तम है । संसारव्यवहार में नम्र व्यक्ति को सभी कोई अधिक हैरान करे ऐसा भी संभव होता है सही, परन्तु ज्ञानपूर्वक की नम्रता विकसित करने के लिए जीवनविकास के हेतु के ज्ञान से ऐसा सहन करना यह हमारा तप होगा ।

साधक का एक ही काम

प्रेमभक्ति का ज्ञानपूर्वक अभ्यास दृढ़ करना । भगवान को जो सभी कुछ आत्मनिवेदन किया करें । किसी बात को मन में संग्रह करके न रखें । किसी बात पर मन में मानसिक ताप न करें । हम अपने से अधिक दूसरों को अधिक महत्त्व जानबूझकर दें । हमें कोई सच्ची तरह समझेगा कि नहीं उसकी परवाह किये बिना दूसरों को हमें सच्ची तरह समझने

का जागृत प्रयत्न करना है । **ज्ञानयुक्त सद्आचरण से दूसरे *जीवों* के दिल में हमारे बारे में अच्छा भाव प्रकट हो, उसका नाम भी भक्ति है ।** संसारव्यवहार में प्राप्त हुए स्वजनों और उनकी अलग-अलग प्रकृति और स्वभाव, उन सभी के साथ जितना हृदय से सुमेल रहे उतना उत्तम है । जीवन यह फूलों की बिछाई शय्या नहीं है, परन्तु कठिन से कठिन कसौटी होने के लिए और निर्माण हेतु उत्तम से उत्तम साधन है । इसलिए, जागृति रखकर सब कुछ प्रभुप्रीत्यर्थ किया करें । जीवन की लगनी लगे तभी संसार से हमारा मन हट सकता है और अब हमारा जीवन में इसके बिना दूसरा कर्म ही क्या हो सकता है ? शादी की धूम भले हो, पर उस सभी में जितनी ममता, शांति, प्रसन्नचित्तता, धीरज, सहनशीलता आदि बनी रहे ऐसा आचरण करना है, यह जानना । पूज्य माता-पिताजी को मेरा सप्रेम प्रणाम ।

• • •

मुंबई ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ४-३-१९५१

गुरु-चेतना के स्मरण से लाभ

जीवन के दैनिक आचरण में मन को हमें कैसा रखना है, इसकी चेतनापूर्वक की जागृति यदि रहा करे तो सरल और सहजता से साधना में लगे रह सकते हैं । जीवन में अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं, उन प्रसंगों को यदि हम गुरुरूप मान सकें अथवा उस उस पल ऐसी समझ जागती रहे तो उन प्रसंगों

से जीवनविकास का ज्ञान मिल जाता है । हमें जिसमें से प्रेरणा लेनी है, उसका जीता-जागता भान हमारे आचरण में यदि रखा करें तो उसका चेतनास्मरण भी हम में जागृत रहता है और हमें बल मिलता हो ऐसा भी अनुभव होता है और ऐसे अनुभवों से उसमें हमारे श्रद्धाविश्वास जीवंत होते जाते हैं । जीवन को अनुभव की कसौटी से जैसे तौलना है, उसी ही तरह उस अनुभव की कसौटी से हमारी समझ अधिक विस्तृत अर्थवान, उदारतावाली सर्वग्राही होती जायगी और उसमें से धीरज, शांति, प्रसन्नचित्तता, सहानुभूति, सहनशक्ति और मन की उदात्तता का अनुभव हो तो वैसे अनुभव सच्चे हैं ऐसा समझें और मानें ।

प्रसंगों को तटस्थ प्रेम से हल करो

प्रत्येक प्रसंग का जीवन के लिए रहस्य है और प्रसंग हमें सज्ज रखने के लिए हैं । इसलिए, इस तरह से जीवन में प्रसंग का उपयोग करते रहना है । प्रत्येक के साथ कैसा भी प्रसंग बने तथापि हो सके उतनी तरह से मन को ठिकाने रखने और शांति बनाये रखने का हमारा प्रयत्न हो तो हम से दूसरों का मन ऊँचा न हो और यह एक बहुत बड़ा भारी काम है । इसलिए हमारा व्यवहार और हमारी समझ सभी के साथ इस प्रकार की रखें कि जिससे दूसरे सभी का मन हमारी तरफ सरलता से रह सके । धीरज और शांति से वह काम हल हो ऐसी स्वस्थता हमें रखनी है । हमारा चाहा न हो उस

समय अधिक बलपूर्वक से दुबारा भक्ति से गहरा उतरना और नामस्मरण की भावना में रहकर जागृति रखा करनी है । पानी से भीगा हुआ सूखाने डाला हुआ कपड़ा भारी होता है पर हवा उसे हिला सकती है, वैसा हमारा अनेक बार हुआ करता है । ऐसा होने से हमें बहुत हानि होती है ।

• • •

मद्रास (चेन्नाई) ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ६-३-१९५१

साधन ठीक न हो इससे घबरायें नहीं या नाहिंमत न हों । प्रतिदिन चार बजे प्रातःकाल में उठकर ध्यान में तो बैठना ही । प्रार्थना करना भी चालू रखना । नामस्मरण जोर से बोलने का होते संकोच या शर्म नहीं लगती यह बहुत उत्तम बात है, पर अभी यह काम बहुत कच्चा है । इसलिए, उसमें उमंग बढ़ाना ।

संशोधन से रस घटेगा

संसारव्यवहार की गाड़ी में मन घुसा हुआ होता है, उसमें से उसका रस कोई एकदम से चला नहीं जाता । हम मानते हैं कि हमें किसी में रस नहीं है, परन्तु रस के बिना तो मनुष्य एक क्षणभर भी नहीं जी सकता है । अनेक बातों में मन को रस लगा रहता ही है । हमें कोई समझ न हो और सूझबूझ न हो ऐसी ऐसी सूक्ष्म बातों में मन रसीला रहा करता होता है । ऐसी सब बातों को हमें जानना होगा और उस उसमें से मन को मोड़ने का काम जागृति से ज्ञानपूर्वक करना पड़ेगा ।

मन कैसे मददरूप हों ?

जिस जिस समय मन में विचार उठें, उस विचार के स्वरूप को और उसके मूल को पहचानना हमें सीखना होगा । और वैसा जानकर उसका जहाँ जहाँ नकारात्मक स्वरूप हो यानी कि **जीव** स्वभाववाला भाव हो, उसे त्यागने की अधिक से अधिक हिंमत और साहस हमें जुटाने पड़ते हैं । ऐसे प्रत्येक विचार के स्वरूप को और उसके मूल को यदि परखने की हृदय की कला प्राप्त हो गई तो उसमें से हमें बहुत-बहुत मिलनेवाला है - बल और प्रेरणा भी । हमें अपने मन के साथ खेल खेलना है और साथ-साथ उसकी मदद भी लिया करनी है । मन और उसकी शक्ति अपार है और उसकी कुशलता भी । यदि हम चाहें और निश्चिंत और निश्चित हो जाकर रचनात्माकरूप से उसकी मदद लिया करें तो मन हमारा मित्र है । मन की शक्ति कोई जैसी तैसी नहीं है । सब कुछ जीत लेकर उसके मय हो जाने की उसमें शक्ति है और उस शक्ति में भारी से भारी सिद्धियाँ रही हुई हैं कि जिसकी हमें कल्पना भी नहीं है ।

विश्व के साथ तादात्म्य अनुभव करने और उसके साथ सहृदयता से जुड़े रहने के लिए मन जैसा कोई शक्तिशाली नहीं है । और ऐसा देखते सचमुच मन की शक्ति यह तो प्रकृति की गूढ़ शक्ति है । तथापि उस शक्ति में भी भगवान की लीला है और उस शक्ति की मदद से हम चेतन की ज्ञानशक्ति में प्रवेश करते हैं । इस तरह से सोचने पर मन हमें

बहुत मदद कर सके, ऐसा है । मन को बार-बार टोकते रहना चाहिए । उसे समेटना और उत्तेजित करना भी चाहिए । यह सब काम किया करेंगे तभी हमारा कुछ लाभ हो सकेगा । सकल कुछ कर्म करते करते हम अपने मन के साक्षी होते रहें । और उसके बिना चलनेवाला नहीं है ऐसा ज्ञानभान रखें । मन की तरंगों को जैसे दबाना नहीं है वैसा उसमें फँसना भी नहीं है अथवा तो उसके प्रवाह में बह जाना भी नहीं है अथवा तो जैसे हो वैसे पड़े नहीं रहना है ।

पुनः पुनः यत्न करके जीतो

जैसे बालक व्यर्थ कोशिश करते हुए अनेक बार गिर जाता है और अनेक बार डगमगाता भी है, पर वह अपने चलने का प्रयत्न छोड़ता नहीं है अथवा उपरोक्त सभी चलने की अपेक्षा नकारात्मक दिखती क्रिया को लक्ष में लेता ही नहीं है, वैसा हमारा होना चाहिए । तभी हम प्रभुकृपा से सफल हो सकेंगे । इसलिए, सतत उस मार्ग के प्रति हमारा प्राणवान प्रयास यदि निरन्तर चल सके और श्रीभगवान के नामस्मरण में हमारा दिल रहा करे और असफल होते या नकारात्मक भाव जागते श्रीभगवान की प्रार्थना द्वारा कृपामदद माँगने का हुआ करे तो हम अवश्य जी सकते हैं ।

• • •

मद्रास (चेन्नाई) ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ५-७-१९५१

गुरु पर श्रद्धा जागनी चाहिए

तुम्हारा नामस्मरण ठीक से चलता नहीं है । अभी मन की तरंगों में अति उलझना हो जाता है । मन तो अनेक तुक्केबाजी करता है, परन्तु यदि हम सभान न रहें तो नौका बरबाद हो जायेगी । समुद्र की लहरें उछलती हैं, गिरती हैं और लहरों में ज्वारा-भाटा आया ही करता है । जहाँ तक हमें नौका मिली नहीं है, वहाँ तक उस उसके साथ हमारा भी ज्वारा-भाटा हुआ करेगा । यदि नौका मिली है, ऐसा मनहृदय से दृढ़ विश्वास जाग जाय तो लहरों, हिचकोले, तरंगों का चढ़ाव उतराव लगा करेगा तथापि नौका में हैं ऐसा उसके मन में भान होने से लहरों का अति उछलना या उसका पीछे पड़ने की ये दोनों क्रियाओं से हमें कोई घबराहट नहीं होती है । इसलिए नौका मिलने का भान हमें होना अति आवश्यक है । जब जब विचाररूपी मौजों की प्रचंड छलक टकरायें, तब तब नौका में हैं ऐसा प्राणवान ज्ञानभान मन में प्रकट हुआ करे तो तो बाधा नहीं आयेगी । अमुक बार ऐसे विचार आते हैं कि जिससे हम जैसों को भी धक्का लगता है । इसलिए सावधान रहें ।

प्रभु को सब सौंपना अर्थात् क्या ?

भगवान के नामस्मरण की धुन लगाकर उस धुन की मस्ती में श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ सकल कर्म यज्ञभाव से किया करके उसे फिर ज्ञानभक्तिपूर्वक समर्पण किया करें । यदि भगवान

के मार्ग पर जाना है तो ऐसा किये बिना छुटकारा नहीं है । हमारी मित्रता भी प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक की पल-पल जीवंत रहे तभी चल सकेंगी । भगवान हजार हाथवाला है । उसे जो भी सब सौंपा करने का ज्ञानयुक्त भान रखें तो वह सब सँभाले वैसा है । **सौंपने का अर्थ ऐसा है कि सौंपने के बाद उस बारे में हमें कोई भी विचार न आये । बिलकुल निश्चिंतता हम अनुभव कर सकें ।** संसारव्यवहार के कर्म में भी हम उसे ही खुश रखने के लिए जो सभी करते हैं और ऐसे उनकी भावना में दिनरात लीन रहा करें तभी श्रीप्रभु की लगनी लगनेवाली है, उसके बिना नहीं ।

तुम्हारे द्वारा हमारी शोभा है, इसका जीताजागता कृपा से भान रखना । इतना यदि न हो सका तो कुछ भी नहीं हो सकता, यह बात निश्चित है ।

• • •

मद्रास (चेन्नाई) ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ७-३-१९५१

अब, तुम्हारे ता. २५ से २८ तक के पत्र मिले । उनमें दो आना दंड हुआ । एक तोला वजन हो तो दो आना तक में जा सकता है और उससे वजन अधिक हो तो प्रत्येक तोले पर एक आना की टिकिट अधिक लगानी होती है । फिर, तुम जो कागज में लिखती हो, वह कागज मोटा है और इससे भी वजन बढ़ता है । पतले कागज हो तो अधिक पन्ने भी लिख सकते हैं और लेख भी अधिक लिख सकते हैं ।

आज सुबह '.....भाई ने कहा कि '.....बहन को पत्र लिखना है ?' तब लगा कि आज तो तुम्हें कविता लिखनी

है । इतना लिखते लिखते तो रक्त का दबाव बहुत ही बढ़ गया और बैठे बैठे चक्कर आने लगे । इसलिए सोये रहना पड़ा था । (लिखवाना तो चालू था ।)

गजल

हृदय की भावना को किस तरह उल्लेखित करें कि
परस्पर को हृदय पूर्ण समझ सके हृदय भर के ?
हृदय से भाव उमंगे उछलती एकराग से होकर क्या ।
मिलकर एकतानता भाव से दिल वहाँ मुड़ा करता रहे
हृदय छलकता है खूब संपूर्ण भावना से जहाँ,
हृदय क्या परखना मिले सुयोग अनुभव करने !
हृदय मिलने की उत्कंठा होती उत्कट रहे जब,
गति व वेग हृदय के हल कर सके कौन तब ?

गुरु-संपर्क की योग्यता का थरमामीटर

तुम्हारे पत्र पढ़े हैं । इस **जीव** के साथ का संबंध इस जीवनविकास की भावना को विकसित करने, दृढ़ करने और अनुभव करने के लिए है । ज्ञानभावना प्राप्त करने के लिए यह संबंध है । जीवन को दूसरी तरह खर्च करने के लिए इस संबंध का कोई अर्थ नहीं है । यदि **इस जीव** के संबंध से जीवन विषयक भावना और समझ जीवन के योग्य आचरण में न उतार सके अथवा तो ऐसी आंतरिक प्रेरणा और सहानुभूति मिला करती न लगे तो स्वयं रुककर सोचें । **इस जीव**

विषयक, बिलकुल अतिशयोक्ति बिना गणितशास्त्र की दृष्टि से जैसे एक और एक दो होता है, वैसे स्पष्ट यथार्थ के भान से तुम्हें लिखना है कि मुझ में प्रभुकृपा से जो कुछ चेतन रहा हुआ हो, वैसे चेतनपन के अमुक-अमुक स्पष्ट और नकार न सकें ऐसे उदाहरण जीवन में बने हों, ऐसे कितने ही अनुभव हों कि जिसके ख्याल से अवश्य ऐसा कह सकते हैं कि ऐसा होना या हुआ उस जीवन के आध्यात्मिक क्षेत्र पर चेतन की अमुक कक्षा के प्रमाण में वैसा हो सकता है । शरीरधारी मनुष्य चेतन में संपूर्ण, समग्र नहीं हो सकता है । ज्ञान का विस्तार अनंत है । इससे, वह स्वयं संपूर्ण है ऐसा कोई समझे तो वह योग्य नहीं है ।

मेरी ओर से सर्व किसी के साथ होते रहते संबंधों के कारण मेरे मन में ऐसा या वैसा कुछ नहीं होता । जगत में जो जो स्वजन मिले हुए हैं या मिलेंगे, उन उनके जीवन के साथ एकराग करने को प्रभुकृपा से यत्न करना होता है । यह कला श्रीभगवान की कृपा-बक्षिस है । प्रत्येक के साथ का व्यवहार कभी भी एक ही प्रकार का नहीं हो सकता है । प्रभुकृपा से वृत्ति, विचार, भावना, मनोभाव के अलावा भी **जीव**स्वभाव जैसी ऊपर ऊपर से दिखती वृत्तियाँ-जैसे कि आशा, इच्छा, कामना, राग, मोह, ममता जैसी वृत्तिओं से भी उस उस प्रकार के **जीवों** के साथ आचरण हो कि जिससे उन उन **जीवों** का दृढ़ राग प्रभुकृपा से हो जाय । हमें ऐसा लगा है कि कोई भी एक **जीव** मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार से करके हम में एकराग हो जायेगा तो उसके जीवन

में भी वैसा अंकुर फूटते हैं। ऐसे एकराग होनेपन का भी प्रत्यक्ष लक्षण है। जिस प्रकार का उत्कट राग उस प्रकार का मननचिंतन रहा करे । स्वयं को होते राग में स्वयं को किस प्रकार का मननचिंतन होता है, वह स्वयं तटस्थतापूर्वक समझें। यदि ऐसे होते जाते राग से करके हम **जीव**स्वभाव में अधिक से अधिक पड़ते जाते हम अनुभव करें और मन की वृत्ति उच्च होती न अनुभव कर सकें तो हमें रुकना है। जिस हेतु विषयक संबंध से उस हेतु में फलित होना न बने तो वैसा संबंध उपयोग का नहीं है।

उत्तम साधन : शरणागति

जीवनविकास के मार्ग पर हमारी उँगली पकड़कर मार्गदर्शन देनेवाले सद्गुरु प्राप्त हों और जिनके बारे में श्रद्धा, विश्वास, भक्ति, जीतेजागते हुए हो, उसे सर्व भाव से और सभी तरह से जीवनविकास के योग्य ऐसे ज्ञान से शरणागत रहा करना उसके जैसी कोई उत्तम साधना नहीं है। पुरुषार्थ करते करते अथवा अधिक सच्ची रीति से तो होते जाते, होते जाते, हम तो उन्हीं की शरण में रहा करते थे। पलपल गुरुमहाराज की स्मृतिचेतना हमारे दिल से हटती नहीं थी । हमारे दिल में उसकी लगन लगी थी । इसलिए तो हमारी साधना सहज और सरल बन सकी। हमारे बारे में हमें कोई दावा नहीं करना है, वह भी निश्चित जानना। हृदय की भावना को समझना और अनुभव करना यह बहुत कठिन काम है । पूरीपूरी ज्ञानपूर्वक की प्रेमभक्ति प्रकट हुए बिना वह समझ में आनेवाली भी नहीं है। इसलिए अपने आपको

अधिक से अधिक गहरी रीति से पृथक्करण कर करके समझने का रखें । किसी को भी हमारा ऐसा आग्रह नहीं होता कि हम से ही जुड़े रहो । ऐसा कहना कि 'जुड़े रहो' यह मिथ्या है । जिसे गरज होगी वही जुड़ा रहेगा और जहाँ लगनी लगी होती है वहीं जुड़े रहते हैं ।

गुरुशिष्य का अटूट संबंध

जीवनविकास का मार्ग वह कठिन, अतिविकट और दुष्कर होने पर भी लगनी लग जाय तो बहुत सरल है । जीवन का इसके बिना कुछ ध्येय हो भी नहीं सकता । हम से उस उस **जीव** का ध्येय संपूर्ण फलितार्थ हो सकेगा ऐसा भी हम कह नहीं सकते हैं । हमारी लाचारी तो अपरंपार है । जैसी भूमिका मिले वैसे वैसा वह काम होते जाता है । प्रभुकृपा और उसके बल से हमारे हिस्से जो काम आया है, वह तो भगवान करवायेंगे ऐसी जीवंत श्रद्धा है । सभी प्राप्त स्वजनों के हम में राग प्रकट हो तो जीवन के तानेबाने में वे किसी न किसी काल गूंथाने ही वाले हैं और यदि प्रभुकृपा से चेतन प्रकट हुआ हो तो किसी न किसी काल उनमें भी प्रकट होनेवाला है, ऐसा गणितशास्त्र है । हमारा धर्म, कर्म और कर्तव्य भगवान के जब संपूर्ण हो जाते हैं, तब उस अनुसार अदा करवाने को वह हमें प्रेरित करता रहता है और उसमें कमोबेश का भी फर्क नहीं पड़ सकता ऐसा प्राणवान अनुभव हुआ है । इससे, हम तो प्रभुकृपा से सदा निश्चिंततावाले रह सकते हैं, परन्तु सामनेवाला **जीव** संपूर्ण ज्ञानपूर्वक की जागृति न रख सकता

हो या उसे न लगती हो, जीवन का महत्त्व और रहस्य भी जिसे न समझाता हो या न समझ में आ रहा हो – **ऐसे *जीव* को तो कोटि कोटि काल तक भटकना रहेगा, परन्तु हमारा उनमें प्रभुकृपा से मनोभाव होने से वह हम से अलग नहीं हो सकता है। हम स्थूल रूप में जिस स्वरूप में हैं वैसे स्वरूप में हों या न हों तब भी हमारा संबंध छूट नहीं सकता है।**

जो **जीव** जीवनविकास की भावना को दृढ़ कर करके, मन के सभी भावों को समझ समझकर भावना का विकास किये जाता है और जहाँ जहाँ नकारात्मक भाव प्रकट होते हैं वहाँ वहाँ रुक कर उसके प्रवाह में न खींचकर, तटस्थता से ऐसे भाव को प्रभुकृपा से नकारता है, वैसा **जीव** आज नहीं तो कल जागनेवाला ही है। जिसे जाना है वह तो जाकर ही रहेगा। जिसे चलना है वह तो चला ही करेगा। जिसे जाना नहीं है या चलना नहीं और खाली पड़े रहना है, उसे ही अनेक प्रकार के नखरे हुए करते होते हैं। इसलिए श्रीप्रभुकृपा से **इस जीव** की ओर से मदद या प्रेरणा और सहानुभूति, चेतना भाव से यदि हृदय की भावना **इस जीव** में रहा करती होगी तो उसका वैसा अनुभव अवश्य होगा, यह बात निश्चित मानना।

अनेक प्रकार के दिन प्रतिदिन के विचारों से आत्मनिवेदन द्वारा जानकारी देते रहना। कुछ भी छिपाने जैसा ना रहे उसका दृढ़ ख्याल रखना। **इस जीव** के बारे में संपूर्ण भरोसा न हो, वहाँ तक **इस जीव** के साथ न जुड़ना, ऐसी पक्की सलाह है।

ज्ञानयुक्त भक्ति से जीवनसिद्धि

चेतना विषयक अनेक अनुभव हों, परन्तु **जीव** की भिन्न-भिन्न प्रकार की कक्षा में उन अनुभवों की समझ उससे उच्च प्रकार में ले जाने के लिए योग्य साथी की गरज पूरी करती है और वैसा हो तभी अनुभवों का कुछ मूल्यांकन है। ऐसे अनेक अनुभव हुए हों और जिसका हृदय में भरोसा हो तो वैसे **जीव** को उसका मन अधिक डिगा नहीं सकता। **इस** मार्ग में कल्पना से नहीं जा सकते हैं। बुद्धि से नहीं जा सकते हैं। ज्ञानयुक्त भक्ति द्वारा ही प्रवेश हो सकता है और ऐसी भक्ति प्रकट होते जीवन के क्षेत्र विषयक समझ अधिक गहरी, तलस्पर्शी और सूक्ष्म वेगवाली होती जाती है। संबंध में आते अनेक प्रकार के स्वजनों की प्रकृति और उनके स्वभाव विषयक परख होती जाती है। और वैसा होने पर भी वैसे-वैसे अनेक प्रकार के स्वभाव और उनकी उनकी प्रकृति के भाव से हम स्तब्ध न हों जाएँ अथवा तो उसमें फँस न पड़ें अथवा तो इससे उनके विषय में रागद्वेष पैदा न हो, उसे देखने का काम हमारा है। जो जो विचार, वृत्ति, भाव या मनोभाव उपजे वह वह जीवन के ध्येय को फलित करनेवाला है या नहीं उसका विचार तुरन्त कर लेना औऱ यदि ऐसा न लगता हो तो उसे फटकार देकर प्रेम से विदाई भी दे दें और हमारे मन की तुच्छता और लघुता कितनी अधिक है, उसका उसे भान करायें और वैसा कर करके मन को प्रेमभाव से ऊपर चढ़ाना है, यह जानें।

प्रभुस्मरण वही सही

संसारव्यवहार के संबंधों में, संसारव्यवहार की रीति अनुसार हमें आचरण नहीं करना है और संबंधों के अनुसार मन भी नहीं रखना या पिरोना है । प्रभु की भक्ति व्यक्त और अव्यक्त दोनों हैं । जिस जिस समय जो जो कुछ काम मिले उस उस काम में श्रीप्रभु की स्मरणभावना और धारणा जीवंत रखकर उस उस **जीव** के संबंध को हमें गौण गिना करना है । वह प्रतिज्ञा के बारे में पूछा तो वह ऐसी होनी चाहिए कि जिससे जीवन का विकास बढ़े और उसके सम्बन्धी सूक्ष्म समझ भी आए । हमारी प्रतिज्ञा से घर में रहे अनेकों को अड़चन पैदा हो ऐसी जिस स्थिति में हम पड़े हैं, वह स्थिति अनुकूल आये वैसा नहीं है । जो जो संबंध है वह किसी को त्यागना भी नहीं, छोड़ना भी नहीं है और सामने बढ़ाने भी नहीं जाना, परन्तु जैसे जैसे जहाँ जहाँ हों वैसे वैसे जो हुआ करे उसमें ज्ञानपूर्वक का प्रेमभक्ति का जीवंत स्मरण रहा करे इतना लक्ष में रखा करना है । हो सके उतना कम से कम बोलना और प्रभु का स्मरण करते करते जो जो कर्म मिले वह कर्म करते प्रभु की भावना को दृढ़ बनायें ।

कर्म हृदयपूर्वक प्रभुप्रीत्यर्थ करो

जो कर्म मिलता हो, वह पूरापूरा योग्य रूप से हुआ करे यह भी हमें सँभालना है । अधकुटा कुछ नहीं करना है । तिल जितना काम मिले या लाखों मन जितना काम मिले, तब भी वह सभी काम हमें हृदय के उल्लास

से स्वीकार करके प्रभुप्रीत्यर्थ करना है । प्राप्त कर्म में यदि त्रास, ऊब, दुःख या कठिनाई जैसा लगे तो वह कर्म भाररूप अवश्य लगेगा । हृदय की उमंग से यदि भगवान का स्मरण होता रहे और वैसी उसकी भावना कर्म करते करते जीवंत रह सके तो मन तो हलके फूल जैसा हो जाता है और मन की प्रसन्नता फव्वारे की तरह ऊपर उड़ती ही रहती है और ऐसे समय में ऐसे किसी प्रकार की धुन या नशा हृदय में प्रकट हुआ करता है कि जिससे सभी के साथ संलग्न होने पर भी हम अपने आपको अकेले हों ऐसा लगा करता है ।

अंतर में अलग रहकर प्रेमभाव से मिलो

बेकार की बातों में कदापि मन को न पिरोयें । किसी के साथ बैठने का मौका मिला हो या मिले तो वह वैसी बातें करता हो तो वह भले करे । हमें उसमें रस नहीं लेना है । वैसी बातों में हमें शामिल नहीं होना है और हम बिलकुल अंतर में अलग हों, तब भी दूसरों को खराब न लगे उस तरह के आचरण की कला हमें समझ लेनी होगी । **हेतु या अर्थ बिना या आवश्यकता के बिना कहीं जाने की जरूरत नहीं । मन है अनेक तुक्के सोचा करेगा । जहाँ छुटकारा न हो वहाँ भले जाने का हो ।**

प्रसन्नताभरा आंतरिक मौन विकसित करो

मन को मौन की स्थिति में प्रकट कर देना है, परन्तु ऐसे मौन में हृदय की भावना मिश्रित ही न हो तो जीवन सूखा सूखा और भारी शुष्क लगा करेगा और बोझरूप लगेगा और

ऊब-त्रास लगेगा वह अलग और मन में ऐसा लगाया करायेगा । इसलिए, भावना हमें अत्यधिक विकसित करनी है, विकसित करने से क्या नहीं विकसित होता ? 'भगवान पर भरोसा रखकर वह जैसा करवायेगा वैसे करेंगे' ऐसा बोलना हमारे लिए मिथ्या है । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार भगवान पर संपूर्ण भरोसा रख सके ऐसे बन जाय तब वैसा बोलना यह योग्य गिना जायेगा ।

भगवान के साथ जीवंत संबंध रखो

जहाँ तक ऐसे वे बने नहीं हैं वहाँ तक ऐसे बनाने में हमें संपूर्ण भाग हृदय से लेते रहना है । हार या निराशा जहाँ जहाँ लगे वहाँ वहाँ उसे हृदय के आर्तनाद से हृदय की प्रार्थना करते रहना है । प्रसंग प्रसंग में और विचार विचार में उसकी कृपामदद की प्रार्थना किया करनी है । बालक जैसे माँ के पास अनेक बार कहा करता है और माँगा करता है ऐसा हृदय का सहज भाव श्रीभगवान के पास हमें रखना है । वह कुछ रखे नहीं रह सकता । ऐसी स्थिति हो तभी वह रह सके । इसलिए हमें ऐसी स्थिति में प्रकट हो जाने का रहता है ।

वह स्थिति कैसे प्राप्त हो ?

इसप्रकार ऐसा यह कैसे प्रकट हो जा सके यह एक प्रश्न होगा । जीवन की सच्ची संपूर्ण लगनी लगे बिना वैसा नहीं हो सकेगा यह निश्चित जानें । आकार देने के लिए अनेक प्रकार के टेढ़ेमेढ़े हथौड़े कारीगर मारा करता है, तब आकार गढ़ानेवाली वस्तु जैसे की वैसी, यहाँ या वहाँ हुए बिना रहा करती है, वैसा हम से हुआ करना पड़ेगा । जीवन में प्राप्त

सर्व प्रसंग जीवन को आकार देने के लिए ही हैं और उन सभी प्राप्त होते जाते प्रसंगों से यदि जीवन का ज्ञानभान मिलता जाय तो जानना कि समझ पकने लगी है । मन, विचार तथा भावना की और साथ साथ बुद्धि की सूक्ष्मता की मदद हमें लिया करनी है । प्रत्येक वस्तु को सोच समझकर जीवनविकास के हेतु से ही समझनी है और तौलनी है और जो जो कुछ हुआ करे, उसमें जीवनविकास की भावना के हेतु से मन यदि सोचा करता हुआ अनुभव में आ सके तो जानना और समझना कि हम सच्चे रास्ते पर हैं । बाकी तो यहाँ वहाँ नजर किया करेंगे तो खाली खाली भ्रम में डूब मरेंगे ।

आर्तपुकार प्रभु सुनते ही हैं

यह प्रेम की भावना इतनी तो उदात्त, विशाल है कि उसे यदि समझना चाहें तो जीवन में मिलते सर्व प्रसंगों में उसका उपयोग हो सकता है । जो **जीव** मार्ग पर चलता होता है और उसे उलझन होती है, तब वैसा **जीव** आर्द्र और आर्त भाव से श्रीभगवान के कृपाबल के लिए मदद माँगता है तो वैसे **जीव** को वैसी मदद मिला करती है ऐसा अनेक संतभक्तों का अनुभव है ।

गुरु की कठिन कसौटी

तुम लिखती हो कि 'आपके साथ के संबंध में मनोभाव नहीं चलेंगे, यह बिलकुल सच है । तुम्हारे पत्र पढ़कर मुझे अवश्य आनंद होता है, तथापि आगे पोस्टकार्ड में बतलाया है वैसे अनेक बार धक्के भी लगते हैं । जिस तरह से जीये

हुए हैं, उसकी रीति बदलनी ही पड़ेगी, इसके बिना तो छुटकारा नहीं है । भगवान हमारे हैं, ऐसे दिल में आत्मसात् होते उसकी ओर से बल मिला करता है । **इस जीव** की ओर से अनेक प्रकार के आघात तो हुआ करेंगे और अनेक प्रकार की उथलपुथल भी हुआ करेगी । मनोमंथन हुए बिना सही वस्तु की समझ नहीं आती है । प्रचंड प्रमाण में मनोमंथन प्रकट हुए बिना वस्तु का सच्चा सार नहीं समझ सकते हैं ।

साधक और संसारी के मनोमंथन में अंतर

खूब मनोमंथन हुआ करे और उसका अंत भी न आए वह भी गलत है । मन में सच्चा मनोमंथन होने पर, जिस विषय में मनोमंथन होता हो उसमें से ही उसका हल भी मिल जाना चाहिए । यदि ऐसा हो तभी वह सच्चा मनोमंथन है ऐसा प्रमानना । बाकी तो विचारों के भँवर में चढ़े हैं ऐसा जानें और मानें । जिस **जीव** को जीवनविकास के लिए सच्चा मंथन हुआ करता है वैसा **जीव** विचारों की परंपरा की चक्रमाला में फँसता नहीं है, उसे तो जो खोजना हो या हल निकालना हो, उसकी चाबी उसे मनोमंथन से मिलती रहती है । कभी कभी बहुत देर लगे ऐसा बने, परन्तु जिसे जीवनविकास के लिए मनोमंथन होता है, उस मनोमंथन के प्रकार में और साधारण **जीव** के मनोमंथन के प्रकार में बहुत अंतर होता है ।

आत्मचिंतन के मनोमंथन में स्पष्ट प्रकाश होता है, एक ही दिशा की ओर गति होती है और एक ही लक्ष होता है । वहाँ उलझन नहीं होती है, साथ ही सभानता भी होती है और तटस्थता तो प्राणवान रहा करती है । मनोमंथन के भँवर में

वह पड़े ही नहीं रह सकता । उसमें से उसे उलझन नहीं होती या उसमें उलझकर फँसता नहीं है । जीवनविकास के मनोमंथन की होती रहती तर्कपरंपरा शुद्ध रूप से एक समान हुआ करती है और एक के बाद एक उत्तरोत्तर सीढ़ी की तरह विचारों प्रकट हुआ करते हैं । शायद कच्ची या अधूरी समझ के कारण, मनोमंथन से कई बार सही कदम मिला लगे और सचमुच में वह भूल या दोष हो, तब भी वैसी बातों में उसका भान उसे समय पर जाग जाता है, ऐसे भी अनुभव हुए बिना नहीं रह सकेंगे यह जानना । जीवनविकास सिद्ध करने के लिए मनोमंथन यह अति आवश्यक है और ऐसा मनोमंथन कभी कभी तो ऐसी भारी वेदना पहुँचाता है कि जिस वेदना को सह सकने की हमारी तैयारी भी नहीं होती है ।

जिसके पास किसी मानसिक या आंतरिक भावना का निश्चित आधार नहीं है वैसा **जीव** वैसे उत्कट और उग्र मनोमंथन में टिक नहीं सकता है, और ऐसे वह बिलकुल टूट कर चूर हो जाता है । ऐसों की निराशा का और असंतोष का उस समय पार भी नहीं रहता है । मनोमंथन सही प्रकार का होता रहता है कि नहीं उसका हमें अपने आपको पता चल जाना चाहिए । मनोमंथन की महत्ता और उसका रहस्य तुम्हें समझ में आए इसके लिए विस्तार से लिखा है ।

सच्ची आध्यात्मिक भूख अर्थात् क्या ?

तुम लिखती हो कि 'जगत के संबंध में दोनों पक्षों में गरज होती है, जब कि आपके साथ के मेरे संबंध में तो मुझे

गरज है।' यह तुम्हारा वाक्य तो बिलकुल योग्य है, परन्तु गरज जागी है कि नहीं और यदि जागी हो तो वह हृदय से ज्ञानभावनापूर्वक की गरज है कि नहीं, उसकी भी कसौटी और परीक्षा हुआ करती है, यह निश्चित जानना। संसारव्यवहार में जिस जिसकी गरज होती है या पड़ती है, वहाँ वहाँ उस वस्तु की गरज पूरी होने तक उससे संलग्न रहने का हुआ करता है ऐसा दैनिक अनुभव है। तो उसकी अपेक्षा भी **इस** मार्ग में तो अति कठिन कसौटी होनेवाली है। इससे अनेक कठिन से कठिन कसौटी में से और परीक्षा में से श्रीप्रभु की कृपा से पार हो जाना बना हुआ है। **ये सब कसौटियाँ, परीक्षाएँ, मनोमंथन और आत्मनिरीक्षण का इतिहास जो इस हेतु के लिए प्राप्त हुए स्वजन हैं, उसमें से किसी *जीव* चेतनकक्षा में प्रकट हो जाए तब लिखनेवाला भी हूँ।** ऐसी अनेक कसौटिओं से जीवन का हेतु सतत जीवित यदि रह सके. तो वह हमें अधिक सभान और जागृत रखा सकता है। कसौटी या प्रसंग का हेतु हमें अपने में प्रकट करना है, उसका भान प्रत्येक प्रसंग या कसौटी के समय हमें रखना है, यह जानना।

जीवनविकास के लक्षण

जीवनविकास के कार्य में जो आड़े आता हो, उसे हमें मन में कोई महत्त्व का पद नहीं देना है। उसमें यदि रस लेना छोड़ देंगे तो अपने आप वह हारकर चला जायेगा, यह जानना। जो कुछ करना हो, वह जैसे जैसे योग्य लगे वैसे वैसे समय पर एकदम होता जाय और वैसा करने में थोड़ी भी अस्थिरता ना जागे और वैसा होते होते मन का उल्लास जीवित रहा करे तो समझें कि जो कुछ हुआ करा है वह योग्य है।

सहज विवेक विकसित होगा

तुम्हारे पीहर पूज्य माँ या पिताजी के यहाँ जाना या न जाना इसके बारे में आगे अपनेआप लिख चुका हूँ। हम यदि अपने ही विकास के विचार में मस्त रहा करते हों तो हमारे लिए दूसरा क्या बोलता है या सोचता है, उसकी असर हम पर कुछ भी नहीं होगी, यह निश्चित जानना। किसी के घर मिलने जाना ही नहीं या जाना ही नहीं है ऐसी गाँठ बाँधने से भी नहीं चलेगा। प्रसंग का योग्य सूक्ष्म विवेक हमें विकसित करना पड़ेगा। जो जो कुछ करने या मिलने से जीवन की भावना दृढ़तर हो, जीवनहेतु की समझ को पोषण मिले वहाँ वहाँ वैसा करना आवश्यक भी हो, नापसंद काम आ पड़े और जाना पड़े ऐसा बने और जहाँ छुटकारा ही न हो वहाँ जाना वह भी योग्य है। कहीं कुछ ऐसे ही हो और कुछ न ही हो ऐसा शुष्क नियम **इस** मार्ग में नहीं हो सकता। 'जीवन खोती जा रही हूँ' ऐसा जहाँ जहाँ लगे वहाँ वहाँ हम अपने में प्रामाणिकरूप से दृढ़ रह सकें और जीवन की भावना में ही खेला करने का करें तो हमारी वैसी दशा नहीं होगी यह जानना। खाली खाली जाने या निकलने के लिए अनेक प्रलोभन आयेंगे और जागेंगे, मन भी वैसा बतलायेगा, परन्तु यदि सच्ची समझ और योग्य विवेक जागे होंगे तो क्या करें और क्या न करें यह अपने आप समझ में आ जायेगा। योग्य ढंग से सीधे और सच्चे रास्ते जाते जाते जैसे चलने का अंत आ सकता है, वैसे जीवन के मार्ग पर जाते जाते एक समय उसे प्राप्त कर सकते हैं यह भी निश्चित जानना। भगवान को बारबार उसकी कृपामदद के लिए याचना किया ही करनी। और जितनी हृदयपूर्वक भावना से और ज्ञानयुक्त दशा से वह हुआ करे उतना हमारे मार्ग में उत्तम है।

उत्साह बनाये रखें

'किसी के लिए अन्यथा विचार नहीं आता ऐसा असत्य नहीं बोलूँगी, पर यह विचार व्यवहार में न उतरे इसका तो खास ध्यान रखती हूँ।' यह तुम्हारी बात मुझे बहुत पसंद पड़ी है। जिस मार्ग पर जाने की जिसे हौस है और उत्कट भावना है, वहाँ थकान लगने पर भी थकान नहीं लगती है, ऐसा अनेक महापुरुषों ने अनुभव किया है। **महात्मा गांधीजी बीस-बीस घण्टे काम करते थे। इसप्रकार का जोश और उत्साह हमें जीवन में लाना पड़ेगा और कुछ भी करते हुए त्रास, ऊब या शुष्कता न आये उसकी संपूर्ण सावधानी रखनी पड़ेगी।**

दुर्भाग्य कल्पित है

'आज तक मैं स्वयं को अति दुःखी, खूब दुर्भागी मानती थी, पर अब अपने अंतर में दृष्टि डालती हूँ, तब प्रभु ने दिये अति मूल्यवान जीवन का रहस्य समझ में आता है। फिर, विचारों और मंथनों में तो वर्षों के वर्ष चले जायेंगे पर अंत नहीं आयेगा ऐसा लगता है। इसलिए, अब तो उन मंथनों और विचारों को स्वरूप दे देकर के काम में लगाना है।' यह तुम्हारा लिखा हुआ बिलकुल सत्य है। ऐसे दृढ़तापूर्वक का अडिग निर्धार से ही जीवन को आकार दिया जा सकता है। ऐसे निर्धारण में हृदय का भाव मिलने से जो भी बनने में मददरूप बनता है और ऐसा करते रहने में ही जीवन का सार प्रकट होने का है, यह निश्चित जानें।

प्रभु की दी हुई संत की भेंट सँभालो

तुम्हारी भावना **इस जीव** पर जो है, यह पढ़कर तुम्हारी ओर हृदय में क्या क्या होता है उसे लिखना व्यर्थ है।

परमपिता ने तुम्हें **इस जीव** की भेंट दी है और उसे तुम जतनपूर्वक सँभालकर रखोगी और उस भेंट की अवगणना नहीं करेगी ऐसा जो तुमने पत्र में लिखा है, वह उसके संपूर्ण अर्थ में जीवन के कठिन प्रसंगों में और कठिन परीक्षा में सही निष्पन्न हो ऐसी परम कृपालु भगवान को मेरी प्रार्थना है ।

स्त्री, पुरुष का प्राण और आधार है

हम से अर्थात् कि पुरुष शरीरवाले **जीव** से स्त्री शरीरवाले **जीव** में भावना अति विशेष होती है और उस भावना को यदि ज्ञानपूर्वक जीवन के विकास के हेतु के लिए हृदय की संपूर्ण स्पष्टता से योग्य आधारपूर्वक उसका उपयोग हुआ करे तो जीवनविकास की साधना के लिए उसके जैसा कोई उत्तम साधन नहीं है । हमारा बल विशेष बुद्धि में रहा हुआ होता है । तर्क और दलील में रहा हुआ होता है । संसारव्यवहार में स्त्री हारती दिखे या लगे, परन्तु वह सदा ही भावना से जीवित होती है । पुरुष **जीव** उससे जुड़ा हुआ रहा करता है और उसके अंतर में रहती उसके प्रति की भावना के प्रताप और परिणाम से हृदय की शुद्ध ऐसी प्रेमभक्तिपूर्वक की भावना हमारे जीवन की खुराक बनती है और वह प्राण है और आधार भी है, उसके बिना तो भूखे मर रहे हैं । ऐसी शुद्ध प्रेमयुक्त, प्रेभक्तिज्ञानपूर्वक की भावना द्वारा जो हमें जीवित रखती है, उसका हम स्वस्व हैं । इसलिए, इस तरह से हमारे मन को जोड़ना हो तो जोड़ना ।

'जीव-शिव' के घर्षण होने चाहिए

जगत के **जीव** तो जगत की तरह रहनेवाले हैं और साधनामार्ग के **जीव** अपने मार्ग पर जायेंगे । हमारे भी वर्तमान

दशा में ऐसे दोनों बल जोर करते रहते हैं। ऐसे बलों के संघर्षों का संग्राम जो **जीव** जीवनविकास के ध्येय के लिए नीरख नीरखकर और वैसा संग्राम दे देकर जीवित रहा करे, उसका विकास विषयक रस अधिक से अधिक गहरा और सूक्ष्म होता जाता है। ऐसों को अनेक प्रकार की तो निराशाएँ, उलझनें, उथलपुथलें हुआ करती हैं, उसमें से उसे जीवन के प्रति आशा और हल के मार्ग के स्वर उसे मिला करते हैं। साथ ही साथ तुम्हें अपने से अलग होकर अब सब देखना है और साथ-साथ जीवनस्मरण की भावना में लीन होते जाना है।

फिर तुमने लिखा है कि -

'थोड़ा रखकर लिया सब योग्यता बिना का,

टूट पड़ता है तन रे।'

'चैतन्य देव ! कब प्राप्त करूँगी मैं तुम्हारे पथ को ?'

निश्चयबल विकसित करो

साधनामार्ग पर जाते और उसमें जाते जाते कहीं उलझ पड़े हुए **जीव** की यह प्रार्थना है। बहुत सोचा करने से **इस** मार्ग में प्रवेश करने का नहीं होता है। इससे एक ओर तो निश्चय को अडिग करते जाने का बल विकसित करते जाना है और दूसरी ओर मन जब उसी निश्चय को ढीला करने के लिए या तोड़ने के लिए जोरशोर से सूक्ष्मरूप से पैरवी किया करे तब तब अधिक से अधिक जागृत रहने का प्रभुकृपा से यत्न करना, यही इसका हल है।

• • •

मद्रास (चेन्नाई) ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ८-३-१९५१

घोर जीवनसंग्राम

''भोजन पश्चात् ऊपर जाकर पत्र पढ़ा । पूरी की पूरी काँप उठी । हृदय में चीरे पड़ते हों ऐसा लगा । जैसे जैसे निश्चय को पकड़े रखने का विचार करती हूँ, वहाँ दूसरा पक्ष इससे बहुत ही जोरपूर्वक उसकी दलीलें करता है । ऐसा मनोमंथन तो प्रियजन की मृत्यु के समय में भी नहीं हुआ था । बस, इसी विषय के विचार आया करते हैं कि अब क्या करना ? जीवनविकास यह शब्द छ अक्षर का है, परन्तु अंदर तो महामूल्यवान तत्त्व भरा है और उसे साधना वह भी कितना कठिन है, यह भी अब समझ में आता है । आज माँ के घर से बहन के लिए साड़ी लेने गई थी, अंतर के विचारों की धुन में मस्त थी, वहाँ बैठे-बैठे ऐसा हुआ कि बाहर से स्वस्थ हैं ऐसा दिखाकर घूमना और अंदर तो धमाल मची हुई है । मति बुझ जाये उतनी धमाल चल रही है, कोई सूझ नहीं पड़ रही । जिस तरह से जीती हूँ उस तरह से अब जीने अब राजी नहीं हूँ । आज तो मूढ़ जैसी हो गई हूँ । आपका पत्र तो खड़े खड़े सुलगा देता है । निर्बलता के विचार भी अत्यधिक आते हैं कि मुझ से यह नहीं हो पायेगा और साथ ही साथ विकास के मार्ग पर जाना है, यह निश्चित होता जा रहा है । मेरी निर्बलता के कारण न बने तो दुबारा आपको अपना मुँह नहीं दिखाऊँगी । जीवन में 'युद्ध' शब्द आप किसे कहते हैं, वह अब समझ में आता जा रहा है । कहीं चैन नहीं पड़ रहा है । आपका बनना यह बड़ी तपश्चर्या है । पागल हो जाऊँ इतने

सारे विचार हैं । खड़े खड़े जला देते हैं' यह तो ऐसे अर्थ में लिखा है कि मन को सख्त चोट पहुँचाते हैं और रोमरोम खड़े हो जाते हैं ।''

जुड़े हुए *जीव* का सद्‌गुरु को पूर्ण दर्शन हो

तुम्हारा ऊपर का लेख अति तादृश स्वरूप है और तुम्हारा हूबहू वर्णन नजर समक्ष लाकर खड़ा कर देता है, परन्तु यह हूबहू उस समय के मन की स्थिति के संबंधित है, परन्तु इससे विशेष अन्य अत्यधिक जानना है । मानवीजीवन के समग्र संस्कार की छाया और उसका आकलन प्रभु, जिसके साथ संकल जोड़ता है, उसकी बात में कराया करते हैं । इससे हमारी धीरज का अंत नहीं रहता होता है । तथापि धीरज रखकर ही जीया करते हैं । **इस** मार्ग में अत्यन्त उत्कट ध्येय के संबंधी अधीरता और उसके साथ साथ धीरज का मेल हमें रखना पड़ेगा । मूढ़ बनने से नहीं चलेगा । **मूढ़ता तो अज्ञान का लक्षण है । मूढ़ दशा में सचेतनता नहीं रह सकती है ।**

कुहरा और बादल जैसे सूर्य के प्रकाश को घेर लेते हैं वैसे मूढ़ता मनोमंथन के उग्र विचार और हल खोज निकालने का काम जैसे हुआ करता होता है, उसमें यानी कि उस कार्य के हल में बड़े से बड़ा विघ्नरूप से है । इसलिए ऐसे समय तो अधिक जागृत होकर चेतनापूर्वक की सावधानी हमें रखनी है, इसका ख्याल रखना । मनोमंथन में से और उत्कट विचारों के आमने-सामने प्रवाहों के संघर्ष से क्षणिक मूढ़ता आती है सही पर वैसी मूढ़ता में जीवनविकास के मार्ग पर चलनेवाला **जीव** पड़ा नहीं रह सकता है । प्रत्येक क्षण उसके लिए बहुत

बहुत उपयोगी है । समय और प्राप्त प्रसंगों को इस तरह ज्ञानपूर्वक समझ समझकर वह उपयोग किया करता है, यह भी निश्चित जानना । इसके अलावा, वैसा उपयोग करने के लिए अपनी बुद्धि को अधिक सूक्ष्म और सतेज बनाया करता है । वैसे **जीव** का विकास होते रहनेवाला है, यह निश्चित सत्य है । यदि एक भी कदम निश्चयात्मकरूप से, ज्ञानभक्तिपूर्वक उसे भी भाव की समग्रता में भर सकाया तो उसमें से अत्यधिक आत्मविश्वास आता है ।

बालक का तरीका सीख लो

बालक एक कदम चलना सीखता है, उसमें से उसे आगे चलने और चलने की कला में प्रेरणा और मदद मिला ही करती है । बालक अनुभव की परंपरा से सीखता ही रहता है । एक ही एक प्रकार का अनुभव अनेक बार संपूर्ण एकाग्रता से वह किया ही करता रहता है । और ऐसा अनेक बार अनुभव से कर करके वह अपने ज्ञान को पक्का बनाता जाता है । उस तरह हमें भी उसमें से अत्यधिक सीखना है ।

हरि के जन क्यों मुक्ति न माँगे

जीवन में अनेक प्रकार के अलग-अलग स्वभाव के **जीवों** के साथ व्यवहार करना है और रहना है । उन उनके साथ सुमेल का भाव हमें रखना है और वैसा आचरण करते हुए हमारा मन तंग ना हो या कमी न अनुभव करे, परन्तु उलटा मन को फूल की तरह हलका हमेशा रख सके और मन अत्यधिक सरल और सुगम रहा करे वह भी हमें देखते रहना है । यदि मन तंग बनेगा तो ऊब, असमता, अशांति,

गुस्सा, त्रास, संताप आदि सब होगा और मौका मिलने पर वह शब्दों में भी व्यक्त हो जायेगा । इसलिए, जीवन—समग्र जीवन—यह तपश्चर्या है ऐसा समझकर हमें संसारव्यवहार में जीना है । तपश्चर्या में निरी शुष्कता है या मात्र कठिनाई है, वह ख्याल गलत है । आनंदपूर्वक और ज्ञान के हेतु से, हृदय की उमंगता से जो तप होता है, उससे तो फूल की तरह जीवन में सुगंध फैलती है और जीवन भरा-भरा लगता है । ऐसा जीवन हजारों जन्म जीने के बाद भी आनंदप्रेरक लगता है । ऐसा जीवन जीने का ख्याल यदि जीवित हो जायेगा तो अपने आप सरलता से साधना होती जाएगी । इसलिए उस प्रकार की जागृति रहा करे, उतना हमें देखा करना है ।

मरजिया निर्धार भगवान टिकाता है

मन की स्थिति निश्चियात्मक, हिलेडुले बिना की रहा करे यह हमें करना ही है और करना है और जीवन उसके लिए फना हो जाता हो तो भी भले, ऐसा दृढ़ निश्चयात्मक ख्याल—मात्र ख्याल नहीं पर ऐसा प्राणवान भान—जाग जाय तभी जीवनविकास का काम हो सकता है । हृदयपूर्वक के निश्चय का काम भले ही थोड़ा या मामूली हो, परन्तु 'निश्चय के महल में ही प्रिय बसा रहा हुआ है', यह भी निश्चित जानना । मरजिया निर्धार हुए बिना कुछ नहीं हो सकेगा । जिस **जीव** को मरजिया निर्धार होता है, ऐसे **जीव** को निश्चिय के क्षेत्र बिना की अन्य बातों में बहुत विचार मन में आते नहीं है । उसे अति उलझन भी नहीं होती है । उसे मनोमंथन नहीं होता

ऐसा तो नहीं है । निश्चय को डिगाने और उसमें पतित करवाने के लिए अपनी ही प्रकृति अनेक स्वरूप से यत्न करती रहती है, यह बात सत्य है, परन्तु उस समय सामना करते हुए बल उपयोग करने की कला और सामना किया करके खड़े रहने की हिंमत और साहस तथा धीरज और शांति साधक को मिला करती है, ऐसा भी अनुभव अनेक संतभक्त ज्ञानी आत्माओं को हो चुका है । यह बहुत बड़ा प्रेरणात्मक आश्वासन हमें है ।

इसके लिए चोट लगनी चाहिए

संपूर्ण चोट लगे बिना निश्चय में पक्कापन आता भी नहीं है । फिर, चोट लगने से मन को अपनी पड़ी रही दशा में से हटना पड़ सकता है । मन को जागृत करना या जगाना यह काम भी सरल नहीं है । इसलिए मेरे लेख से तुम्हें 'चोट' लगती है, यह जानकर तुम्हारे लिए आशा तो जागती है, परन्तु यह चोट की मात्रा अभी तो बहुत कम प्रमाण में है ऐसा अनुभव करता हूँ । जिसे सचमुच चोट लगे और हृदय से संपूर्ण लगे उसके भी लक्षण हैं । जैसे संसारव्यवहार के कामों में, उस काम की चोट लगे तो उसमें वह प्रत्येक काम पर्याप्त एकाग्रता, केन्द्रितता, समग्रता से **जीव** अपने आप पिरोया रहा करता है, उसी तरह **इस** मार्ग के प्रति यदि उसी अनुसार चोट लगे तो वैसे **जीव** का मन उसमें ही लगा रहेगा । हमारा मन यदि उस तरह के विकास के मार्ग का मनन, चिंतन और निदिध्यासन में लगा रहे तो समझना और मानना कि सच्ची चोट लगी है । चोट लगती है वह तो भौंचक्का जाग जाता है और जिस बात में चोट लगती है, उस संदर्भ के कर्म में लग जाता है, अथवा तो उस कर्म

की गति में चेतन प्रकट होता है। बुद्धि, प्राण और उसका अहम् भी वैसे कर्म में उसे धकेला करता है। चोट लगने से उसकी एकाग्रता भी जमती रहा करती है और उसकी भावना और मनोभाव उस कर्म में लगते जाते हैं।

सब कुछ निश्चित लक्षणों से मापो

मेरे श्रीगुरुमहाराज ने मुझे अपने साधनाकाल के दौरान मुझ में जो जो हुआ करता उसे उसे लक्षणों द्वारा समझने और अनुभव करने की आज्ञा की थी। लक्षणों द्वारा समझने की आदत पड़ने से कभी भ्रम में नहीं पड़ते हैं। अपने या अन्य के बारे में वैसे ज्ञानपूर्वक के अभ्यास के परिणाम से कुछ कम या कुछ ज्यादा हम मान नहीं सकते हैं। जैसे जिसकी जितनी यथार्थता उतने प्रमाण में ही हम स्वीकार करते हैं। इसलिए जो भी कुछ उसके लक्षणों द्वारा समझने का अभ्यास करें। सचमुच और संपूर्ण हृदय में चोट लगे ऐसी मेरी तो प्रभु को प्रार्थना है। तो ही मन से इधरउधर नहीं हो जा सकेंगे और अपने आप चोट के विषय के क्षेत्र को मन लगा रहा करेगा, परन्तु अभी तुम्हें संपूर्ण वैसी चोट लगी नहीं है, यह भी मेरे मन में ठोस सत्य है। इससे, यदि वैसी चोट लग जाये तभी काम पकना है, यह भी निश्चित बात है।

वैज्ञानिक जैसी धुन लगाओ

फिर, **जैसे कोई वैज्ञानिक किसी आविष्कार करने को प्रेरित होता है तो उस खोज की धुन उसे चालू ही रहा करती है। उस संशोधन विषयक विचार उसे आया ही**

करते हैं । ऐसी धुन में नशा नहीं होता है । ऐसी धुन से ज्ञानपूर्वक की प्रज्ञा जन्म लेती है । ऐसा किया तो ऐसा होगा और वैसा किया तो इससे वैसा हुआ, और ऐसे अनेक प्रकार के अलग-अलग अनुभवों के परिणाम पर से अनेक प्रकार के अनुमान लगा लगा कर, उस खोज के तत्त्व को खोजने का प्रयत्न करता है। जीत मिलने से पहले हजारों बार निराशा उसे मिलती है । तब भी वह अपनी खोज को छोड़ नहीं देता है । वह खोज उसे किस तरह जीत के परिणाम में ले जायेगी उसका संपूर्ण योग्य ज्ञान उसे होता नहीं है, तब भी अनेक प्रकार के प्रयोगों की परंपरा कर करके उसमें से मिलते जाते अनुभवों में से स्वयं इच्छित खोज के परिणाम के बारे में ज्ञान प्राप्त करता रहता है, वह कभी निराश नहीं होता है। उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ भी आती रहती हैं । ऐसे वैज्ञानिक को संसारव्यवहार के व्यवहार नहीं होते, वैसा भी नहीं होता है । वह सभी के साथ व्यवहार भी करता रहता है, परन्तु उसकी अंतर की मानसिक दुनिया तो कोई अलग ही प्रकार की निराली ही रहा करती है । ऐसा **इस** मार्ग के बारे में भी है और हमें भी वैसा ही होना पड़ेगा । वैसा हुए बिना हम से कुछ नहीं हो सकेगा, यह भी निश्चित है ।

उत्कटता के साथ धीरज की आवश्यकता

जैसा प्रभुकृपा से अनुभव किया है वैसा ही मुझे तो कहना है। **'धीरे धीरे चलेगा या होगा' ऐसी निर्बल वृत्ति को फेंक देना है। जैसा हो सके वैसे उत्कट वेग, गति, भावना, एकाग्रता, केन्द्रितता और समग्रता से हमें काम करना है ।**

वैसा होने पर भी मार्ग में फिर जो जो संयोग मिलें वहाँ वहाँ खड़े भी रहना पड़े, रुकना पड़े, वहाँ वहाँ अत्यन्त समतापूर्वक की धीरज भी रखनी पड़ेगी। ऐसे रुकनेपन की दशा में भी मन की गति तो खोज के विचारों की धुन में ही लगी पड़ी हुई अनुभव हो सके तो जानें और मानें कि हम सही मार्ग पर चल रहे हैं।

सिद्ध की सहज साधना

इस मार्ग की पगडंडी का अंत नहीं है। मेरी तो तुम्हें प्रार्थना है कि मुझे कभी संपूर्ण नहीं मानना और सचमुच ही संपूर्ण हूँ भी नहीं। ज्ञान का विकास तो हुआ ही करता है, परन्तु **जीव** की आध्यात्मिक मार्ग में अमुक कक्षा होने पर ज्ञानदशा की स्थिति में, पुरुषार्थ में या साधना में अपने आप की सहजता आती है। प्रगति करने पर भी प्रगति करने के स्थूल लक्षण न हों और तब भी वह हुआ करती हो ऐसी एक प्रकार की स्थिति जन्म लेती है। इससे, भी उच्च एक कक्षा में ज्ञानभक्ति होने पर भी उससे भी पर का प्रदेश है, ऐसा उसे ज्ञान रहा करता है। इससे उसे स्वयं संपूर्ण भरा हुआ है इस प्रकार का कभी आत्मसंतोष नहीं रहता है। ऐसों को एक प्रकार की तृप्ति रहती है सही, परन्तु वह सर्वव्यापी और समग्रता की नहीं इसका भी उसे भान होता है।

साधक तो जागृतिपूर्वक प्रयास करे

जब कि हम सभी तो अभी **जीव**दशावाले हैं तो हमारे कच्चेपन का तो कोई पार नहीं है। ज्ञान की दिशा में जाना है और मन के लक्षण तो अभी अलग ही दिशा में हैं !

इसलिए मन यदि सतत ध्येय की गति में रहा करे अथवा रहा करता अनुभव कर सके ऐसे समय तक हमें जागृतिपूर्वक जाग जागकर मन, बुद्धि और प्राण को हमारे अहंकार द्वारा उन उनको जीवनविकास के मार्ग पर प्रेरित करना होगा । जाते जाते उस मार्ग पर ही प्रेरित करने के लिए अन्य अनेक दिशाओं से उसे समेटना पड़ेगा । इस प्रकार की टोक रोज के व्यवहारवर्तन में हमें उसे किया ही करनी पड़ेगी । जिस **जीव** को ऊपर की बातों का जीवित भान रहा करता है, उसका निश्चय हुआ है ऐसा प्रमानना । जो जागता है, वह सो नहीं जाता ऐसा कुछ नहीं होता है । नींद में भी जागता होता है, ऐसा तो कोई विरल ही **जीव** हो सके । इसलिए जब जागते होते हैं, तब सचमुच में जागते रहा करते हैं कि नहीं उसका भी संपूर्ण भान आना चाहिए ।

गुरु यानी ज्ञानवान 'माँ'

तुम मुझे मदद देने और हिंमत देने को लिखा करती हो, परन्तु मदद का अनुभव तभी हो सकता है कि जब तुम्हारा मन प्रकट हुए चेतनभाव के बारे में प्रेमभक्तिपूर्वक अत्यन्त आर्द्र और आर्त भूमिकावाला बना रहा करता हो । बालक नीचे गिरते ही माँ को आवाज देता है तो माँ एकदम दौड़ आती है । बालक के प्रति सहज आकर्षण माँ के बालक का योग्य सर्जन होने के लिए कुदरत ने रखा हुआ है, यह कोई ज्ञानपूर्वक की प्रगति का परिणाम नहीं है । यह तो कुदरत की ऐसी शक्ति माँ में है कि जिससे इस विश्व की परंपरा जीवित

रह सके । इसलिए इस तरह जो **जीव** में चेतन की जागृत दशा है, उसमें ऐसा भी ज्ञानपूर्वक का साहजिक आकर्षण उसके संबंध में प्रेभक्तिभाव से एकाग्रता से लगे रहे **जीव** के साथ रहा करता होता है । यह हकीकत एक और एक दो जैसी है । इसमें कुछ भी ऐसा या वैसा नहीं है ।

वैसे अनुभव की शर्त

यदि धधकती तमन्नापूर्वक की प्रेरणा से उसके संबंध की उत्कट भावनाएँ जागे तो वैसे तो पास है, ऐसा अनुभव अनेकों को हुआ है । उत्कट भावना से सब कुछ होना संभव है । उत्कट भावना से शरीर से हम बालक न होने पर भी बालक हो सकते हैं, यह भी अनुभव का सत्य है । इसलिए **उत्तम पुरुष की चेतना में हमारा मन, हृदय, प्राण और अहंकार की यदि उपरोक्त दशा प्रकट हुई रहे तो कृपामदद तथा प्रेरणा मिला करेगी यह निश्चित जानना ।**

''जिसके प्रति इच्छा रखी है, उसे निकालकर प्रेम रखना पड़ेगा । किसके लिए मोह किया है, किसके लिए अघटित विचार आया है, किसके लिए ममताएँ रखी हैं, यह सब देखकर चिंता होती है कि 'हाय हाय !' मैंने ऐसा जीवन बिताया है !''

बैर केसे शांत हो ?

ऐसे ऐसे विचार होना वह उत्तम है । जिसके प्रति बैर हो या नापसंदगी हो या गुस्सा हो, उसका सच्चे हृदय से खूब भावनापूर्वक उसमें रहे हुए सद्‌गुण विषयक और उसमें रही अच्छाई के बारे में, जब वह व्यक्त करने का मौका मिले तब तब

व्यक्त किया करने और वैसा किया करने से उस उस **जीव** के प्रति ईर्ष्या, नापसंदगी, बैर, क्रोध, गुस्सा आदि प्रकार की भावना हम में कम होने लगेगी ।

सच्चे पछतावे के लक्षण

बीते हुए जीवन में अनेक प्रकार के संस्मरण जागते हैं और काँप जाते हैं और उतना ही उसमें ही पड़े रहने का होता है, यह अयोग्य भी है । हृदय में पछतावे की अग्नि उत्पन्न हो वह अति उत्तम है, परन्तु हृदय से हुआ या प्रकट हुआ पछतावा जीवन को वैसी की वैसी दशा में नहीं पड़े रहने देता । उसमें से वह तो उसे उठाता है और आगे धकेलता है । सच्चे हुए पछतावे से तो जीवन की गति ऊर्ध्व होती है । जिस दलदलवाली दशा में मन पड़ा हुआ अनुभव किया हो उसमें से हृदय का होता पछतावा हमें हाथ पकड़कर बाहर खींच निकालता है । जिस बारे में पछतावा हुआ हो, उस विषय में एक प्रकार की उत्कट घृणा मन में वह पैदा कर देता है कि जिससे दोबारा मन उसमें लगने से रुक सके । हमें जिस बात का सच्चा पछतावा होता है, उस बात में हमारा मन यदि फिर से न जाता अनुभव कर सके तो पछतावा संपूर्ण सच्चा और पक्का हुआ है ऐसा समझें । सच्चे पश्चात्ताप के उपरोक्त लक्षण हैं, ऐसा समझकर रखें । उसे कसौटी पर रखकर कितना और कैसा पछतावा हुआ है, उसे अनुभव करें ।

गुरु के आधार की शर्त

तुम मुझे लिखती हो कि 'आपको संपूर्ण साथ देना पड़ेगा। आपको प्रचंड साथ देना ही पड़ेगा। आपके के सहारे से विकास के मार्ग पर मुड़ सकूँगी।' किसी के आधार पर चलने की बात कभी करनी नहीं है। संसारव्यवहार में भी हम स्वयं काम करने को तैयार होते हैं और उस काम में दूसरों का सहारा लेते हैं सही; परन्तु जिसका आधार लेना है, उस **जीव** के साथ हमारा परिचय और संबंध हृदय का होता है अथवा तो मनोभाववाला या भावप्रधान होता है अथवा तो सच्चा होता है वहीं काम की मदद में सहारा मिल सकता है, ऐसा दैनिक व्यवहार का अनुभव है। इससे, जिसका आधार लेना है, उसके साथ हमारे मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार उन सभी का हृदयपूर्वक के प्रेमभक्तिभाव से ज्ञानपूर्वक का सहकार हुआ होना चाहिए। जिसका आधार लेना है, उसमें हमारा मन मुड़ जाता हमें अनुभव करना पड़ेगा। इतनी उसकी अनिवार्य शर्त है। इतना हुए बिना आधार या मदद करने की इच्छा होने पर भी वहाँ इच्छा काम नहीं आ सकती है।

अनुत्सुक *जीव* में संतसंस्कार बीजरूप में रहते हैं

तब ऐसा प्रश्न हो कि किसी जाग गये हुए **जीव** की चेतनभाव की इच्छा, वह भी क्या व्यर्थ या मिथ्या हो सकती है ? वह व्यर्थ या मिथ्या नहीं जाती, परन्तु वह जो स्थूल होती है वैसे सूक्ष्म भी होती हैं और कारणरूप में भी होती है।

ऐसी इच्छा को जहाँ हृदय के प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक का स्वेच्छापूर्वक का संपूर्ण सहकार नहीं है, वहाँ ऐसों की इच्छा महाकारण में विलय हुई होती रहती है, जैसे अखिल ब्रह्मांड का विलय होते बीजरूप में वह उसमें समा जाता है वैसे ।

नम्र स्वावलंबी को प्रभु की मदद मिलेगी ही

हमारी इच्छा तुम्हें सहारा और मदद देने की है, पर उसकी शर्त तुम्हें लिखी हुई है तो ज्ञानभक्तिपूर्वक का अमल तुम करती रहना । सचमुच तो यदि हम अपने प्रयत्न में सच्चे और प्रामाणिक हों और ध्येय के प्रति सचमुच की प्रकट हुई उत्कट भावना हो तो उनको अपने में से ही सहारा मिलता रहता है, यह निश्चित मानना । यदि इस प्रकार का ज्ञानभावपूर्वक चिंतन हुआ करता होगा तो सहारा और मदद मिला करती है, ऐसे अनेक अनुभव हुए बिना रहेंगे नहीं, यह मानता । जो अपने आधार पर चलने का निश्चितरूप से दृढ़ रहा करता है और साथ-साथ विनम्र रहा करता है और अपने सहारे के साथ प्रभु की मदद भी मिलनेवाली ही है, ऐसा समझकर जो स्वयं चलता है और अपने प्रयत्न में मशगूल रहता है, वैसा **जीव** दूसरों के आधार की अपेक्षा रखे वह योग्य भी हो, परन्तु दूसरों के आधार पर जीना **इस** मार्ग में कभी संभव नहीं है ।

यदि किसी को अपने सहारे चलने का अभ्यास हो, उसको अभिमान रहा करता है ऐसा अनेक कहते हैं, परन्तु यह सत्य ठीक नहीं है । **इस** मार्ग पर जिसे जाना हो, उसे यदि अपने आधार का अभिमान जागेगा तो वह उसमें से भी जाग्रत

हुए बिना नहीं रह सकता है और जागृत होते अभिमान भी टिक नहीं सकेगा । इसलिए, निश्चित और चैनवाली भूमिका रखकर अपने सहारे सही रूप से जीवन जीना आरंभ कर देना है । यदि जाना ही है तो फिर विचारों की परंपरा किसके लिए जागती है ? यह तो गलत मन की चालबाजी है । निश्चय की दृढ़ता में तो एक प्रकार के चेतनवाली अडिगता आती है । निश्चयवाला मानवी यहाँ या वहाँ डिगता नहीं है । सच्चा और पक्का निश्चय होने पर उसकी दिशा एक ही रहा करती है । इसलिए, अब तो हमारा पक्का मरजिया निर्धार करना है । तुम्हें हृदय का साथ सदा मिला करेगा – यदि उपरोक्त जैसी तुम्हारी मन की स्थिति रही तो, यह भी निश्चित जानना ।

भावना दूर को प्रत्यक्ष करती है

ब्रह्मांड सकल चेतन का जहाँ अंग है वहाँ क्या उसका कोई एकादा टुकड़ा उससे अलग हो सकता है सही ? भगवान की कृपा से अनेकों के भाव उस उस **जीव** में प्रकट करने के लिए अथवा प्रकट हुआ अनुभव करने के लिए उसके हम बने हुए हैं । इससे प्रभुकृपा से हमें उसके योग्य लक्षण में रहा करना पड़ेगा । इसके बिना चलनेवाला भी नहीं है । इसलिए, तुम अपने विचार अपने तक रखना और योग्य प्रकार की ज्ञानभक्तियुक्त उत्कट भावना जिसमें सतत एकसी रहा करती है और जिसके विषय में होती है, वह तो समक्ष हो ऐसा पक्का अनुभव भी अवश्य होगा ।

स्त्रीजीवन की विशिष्टता

स्त्री के जीवन में भावना का प्राबल्य सविशेषता में है। सकल जगत में और सर्व प्रकार के समाज में धर्मभावना को स्त्री ने धारण की हुई है। स्त्री के हृदय द्वारा ही समाज जीवित रह सकता है। समाज के जीवन में उत्तम प्रकार की सहानुभूति और मृदुतायुक्त अनेक प्रकार की वृत्तियाँ, मनोभाव और भावनाएँ तथा ऊष्माएँ - ये जो सभी हैं, उसकी मूल प्रेरणा तो स्त्री का हृदय है। इसके द्वारा समाज जीवित रह सकता है। ऊर्ध्वमार्ग की सही भूमिका स्त्री के हृदय में रही है। स्त्रीजीवन का माहात्म्य बहुत है और उसकी महत्ता अनोखी है। स्त्रीजीवन के योग्य संपूर्ण सहकार के बिना विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए तुम्हें स्त्रीजीवन के बारे में भी भूलचूक से भी लाचारी अनुभव नहीं करनी है। फिर, जिस स्थिति में तुम हो, वह निराधार की स्थिति है, ऐसा भी मन में नहीं लाना। जिसने कहीं कुछ करने का निश्चय किया है, उसे वैसा करने में कभी लाचारी नहीं होती। इसलिए तुम्हें स्वयं सदा मस्त रहा करना है और सतत एकसा जीवन का स्मरण किया करना है।

श्रममहिमा

जो जो काम मिले वह उत्साह से किया करना और जैसे जैसे काम करती जाओगी वैसे वैसे तुम्हें अधिक काम मिला करेगा। तेरे....आदि काम करने का निर्देश करे तो उस

समय काम को हृदय के उत्साह से स्वीकार कर करके मन को उत्तम तरह से निर्माण करने के यह सभी कृपामौके हैं, ऐसा समझना। **शरीर और मन को ठीक रखने के लिए शरीर का श्रम अति आवश्यक है, ऐसा मेरा अपना दृढ़ मानना है और वह अनुभव से सीखा है।** अपने से हो सके उतना सारा श्रम जो **जीव** नहीं करता है, वैसे **जीव** से **इस** मार्ग में गहरा प्रवेश न हो सकेगा, ऐसी भी मेरी निश्चित समझ है। इससे जितना और जैसे जैसे काम मिला करे वैसे वैसे हर्ष से स्वीकार कर करके उसे उत्तम से उत्तम तरह से किया करें और उसे करते करते मन में भावनापूर्वक का स्मरण किया करें। हम काम किया करें उसकी कोई योग्य तरह से कदर करे या ना करे उसकी कभी परवाह न करें। हम बहुत काम करते हैं, तब भी 'मुझे सभी किसी गिनती में नहीं लेते, ऐसा यदि मन में हुआ तो जानना कि हमारा मन अभी तक सच्ची भावना में प्रकट नहीं हुआ है।

हमारा ही दोष

हम जहाँ तक अपने में संपूर्ण रत नहीं हो सकते हैं, वहाँ तक दूसरों का हस्तक्षेप रुकावट करता है। हमारे जीवन और मन में जो अन्य उगते हैं, इसका कारण वह दूसरे नहीं हैं, पर हम स्वयं ही है। इसलिए दूसरों की तरफ जाते मन को मोड़कर उसे टोक करके, समेटकर, सरकाकर बार-बार अपने आप में ही एक हुआ करना है। मन के ऐसे भाव को सतत टिकाये रखने के लिए पल-पल निश्चियवाला रहा करना है।

प्रेमभाव यानी नरम भाव नहीं

तुम्हें भावभरे पत्र लिखूँ इससे क्या होगा ? नरमनरम रूई जैसी भावनाओं से जीवन कभी गढ़ नहीं सकते हैं । अभी तो सही ढंग से मन को जगाने का पल है और उस समय ऐसा ढीलापन नहीं चलेगा, ऐसा जो तुम्हें समझाया है, वह बिलकुल सत्य है । यहाँ प्यार, भाव, मनोभाव, प्रेम है, पर वह जीवननिर्माण के लिए है । अभी तुम्हारे प्रति हथौड़ा के घाव या इस प्रकार का आघात किया नहीं है । ऐसा हो तब भी वह हमारे अपने कोई आंतरिक भाव के लिए है और जीवननिर्माण के लिए है वैसा ज्ञानभान होता रहे तो वैसे दिखते हथौड़े के घाव में किसी दूसरे ही प्रकार की भावना के दर्शन होंगे । मेरे गुरुमहाराज के हथौड़े के घाव में मुझे तो ऐसा अनुभव प्रभुकृपा से हुआ था । जीवन में कभी कुछ कल्पना से मान नहीं लिया है । प्रत्यक्ष प्रमाण और लक्षण से जो भी समझा किया है । इसलिए तुम्हें यह सत्य लिखा है और यह मेरे मन से यथार्थवाला है ।

मस्त रहकर जीवनसुगंध फैलाओ

घूम घूम करके मुझे कहना है कि सदा ही अपने ध्येय की धुन में मस्ती का भाव प्रकट करना और सभी में अपनी सुवास आये और तुम्हारे द्वारा सभी के जीवन में संस्कार आयें ऐसा सद्‌भाग्य मुझे दिलवाना ।

• • •

मद्रास (चेन्नाई) ॥ हरिः ॐ ॥ ता. ९-३-१९५१

ध्येय की कठिनता से न घबरायें

बहुत सा काम करना हो और मन में ऐसा हो कि 'अरेरे ! यह सब किस तरह से होगा' ऐसी कल्पना करनी यह आवश्यक नहीं है। इतना ही नहीं, परन्तु बेहूदी भी है। जो ध्येय हमें प्राप्त करना है, उस ध्येय की संपूर्ण, सचमुच समझ हो वही महत्त्व का है। ध्येय तो जैसे-जैसे पास जाते जाय वैसे वैसे वह तो दूर और दूर जाता ही जायेगा - क्षितिज की तरह। इससे, हमें डरने का कोई कारण नहीं है। जिस किसी को एक कदम बढ़ाने में आनंद प्रकट होता है और एक कदम ध्येय के विकास के हेतु से भरा करता है, वैसे **जीव** का एक कदम भरने में भी उसका अपने आप आत्मविश्वास विकसित होता जाता है। जिसमें आगे का एक कदम करने का साहस, हिम्मत और विश्वास है, उसके लिए तनदिही और अदम्य उत्साह है, और वह कदम, उठाते उठाते जिसके हृदय में थिरकती मस्ती और जोश प्रकट होता है, वैसा **जीव** अनंत कदम भी भर सकता है, यह निश्चित मानना।

ध्येय की विशालता जानकर 'हाय हाय ! यह सब कैसे होगा ?' ऐसा मानना वह तो कायरता ही है, परन्तु जो ऐसा सोचता है कि भले ही कैसी भी अनंतावाला ध्येय हो, परन्तु कदम-कदम उठाते हुए अवश्य वहाँ तक पहुँच जाना ही है, ऐसी सोच जिसकी है वैसा ही **जीव** ध्येय को प्राप्त कर सकता है। मेरे जीवन के साधनाकाल में जो ध्येय प्राप्त करना था, उसकी रूपरेखा

'तुझ चरण में' की प्रार्थना द्वारा प्रभुकृपा से लिख ली थी और मन में हुआ करता खेल को तथा मन को संबोधन करने के लिए और उसे मदद में लेने को 'मन को' की रचना मन में हुआ करी थी, तथा किस किस प्रकार की प्रार्थना करने से मार्ग में मदद मिला करती है, यह 'हृदयपुकार' में से समझ में आयेगा । किस किस मार्ग से उसे पहुँचा जा सकता है, उसका भी स्वस्थ चित्त से विचार कर लिया था । ध्येय की महानता और दुर्घटता समझकर उसे पार पाने के लिए हमें अपने में हो उतनी सभी शक्तिओं का उपयोग करना है और ऐसा करते करते प्रभु की कृपामदद प्रार्थना द्वारा हमें माँगा करनी है ।

साधना की शुरूआत नवदंपति के उछाल जैसी

जो शुरूआत में ही नाहिंमत बनता है, उसका कभी कुछ नहीं हो सकता है । उलटा, प्रारंभ में तो कदम बढ़ा बढ़ाकर तो अदम्य अत्साह और साहस सच्चे साधक को प्रकट होता है । उसकी प्राणचेतना तो आकाशरूपी ध्येय को बाहों में भरकर थिरकती होती है, उसमें वेग और गति अपार होती है । उलटा, प्रारंभ में साधक का वेग, उल्लास, साहस, हिंमत, धीरज - ये सभी इतने अधिक तेजस्वी हुआ करते हैं कि एक कदम बढ़ते-बढ़ते में तो वे काबू के बाहर हो जाते हैं । उसके साथ-साथ ऊपर के सभी गुणों का सुमेल जमता नहीं है और वैसा लगने पर साधक को विचार कर करके अपने ऊपर कहे गुणों की ज्ञानपूर्वक लगाम रखनी पड़ती है ।

शुरूआत नवदंपति के **जीव** में जैसे एक प्रकार का कोई मूढ़ उन्माद रहा करता है और छिपा-छिपा परस्पर

आंतरिक आकर्षण भी रहा करता हैं और एकदूसरे को मिला करने और देखा करने और बातें करने का मन अत्यधिक आतुर रहा करता है, उस प्रकार की (यद्यपि साधनामार्ग में उसका प्रकार अलग है) भावना साधना में कदम बढ़ते ही साधक के दिल में प्रकट होती है । दूसरे सभी साधकों को ऐसा होता होगा कि क्यों उस बारे में तो कुछ नहीं कह सकता हूँ, परन्तु मुझे अपनी साधना की शुरूआत की अवधि में ऊपर बताये अनुसार हुआ था वैसा निश्चित और स्पष्ट ख्याल है । इसलिए तुम्हें भी उस अनुसार हो और वैसा अनुभव कर सको तो जानना कि यह लक्षण बहुत अच्छा और उत्तम है ।

सच्चा उद्वेग आगे ले जाता है

साधक का प्रथम लक्षण प्रसन्नचित्तता है । वह प्रसन्नचित्तता का झरना सहजता, सतता से बहा करे तभी जीवन के इधरउधर के प्रसंगों में हम टिक सकते हैं । ध्येय संदर्भ के मार्ग से विपरीत जाने पर मन में कँपकँपी प्रकट होनी चाहिए, यह सत्य है और इससे दुःख एवं चिंता हो वह भी योग्य है, परन्तु उसमें से पैदा हुई निराशा, दुःख, चिंता, वेदना हमारे ध्येय के संदर्भ के मार्ग में अधिक से अधिक हमें धमकाकर प्रेरित करने को आगे ही आगे बढ़ाया करने में यदि प्रेरित न करती हो तो वैसा सब होना यह कोई भ्रामक दशा का परिणाम है ऐसा जानें और समझें । दुःख या चिंता या वेदना या निराशा सचमुच रूप से हो तो उसका लक्षण है कि हमें वैसी की वैसी स्थिति में पड़े नहीं रहने देते । उसमें से

उठने, जागने, चेताने, चौकन्ना करने हमें प्रयत्न करवाता है, तभी वैसी निराशा, दुःख, चिंता, वेदना आदि सत्य हैं ऐसा मानें ।

प्रसन्नचित्त कैसे रहें ?

संसार के व्यवहारवर्तन में दूसरे किसी के विचारों से, आचरण से, व्यवहार से, बोल से हमारे मन पर कुछ असर हो तब हमें सोचना है कि उसमें उस वस्तु के सम्बन्ध की सच्ची समझ क्या है ? सच्ची समझ के संदर्भ की यदि हमारी अज्ञानता लगे और यदि उस उस विषय का हमें दुःख हो तो वह हमारी बिलकुल तुच्छता होगी । हमारा वैसा होना निरखकर-अनुभव करके हमें अपने मन के भावों को फटकारना चाहिए । वस्तु के सम्बन्धी सच्ची समझ का अज्ञान यदि दूसरों का लगे तो उनके अज्ञान के प्रति हमें नाराज होने का कोई कारण नहीं है । जैसे हमारा अज्ञान एकदम नाश नहीं हो सकता है वैसे उनका अज्ञान भी एकदम नाश नहीं हो सकता है । इसलिए हमें ऐसे समय में उसमें दूसरों के प्रति प्रेमार्द्र भावनावाली सहानुभूति रखनी होती है । इसप्रकार, यदि हम ज्ञानपूर्वक आचरण करते रहेंगे तो दूसरों के वर्तनव्यहार से हमें मन में चीढ़, ऊब, त्रास, ईर्ष्या, डाह, अरुचि आदि ऐसा कुछ अधिक उपजना संभव नहीं रहेगा ।

किसी के विषय में मन में गाँठ न बाँधें

फिर, दूसरे अज्ञानी हैं, इससे बहुत नीचे हैं, ऐसा समझना भी योग्य नहीं है । जो जैसा है, वह वैसा का वैसा

ही सदा ही रहनेवाला है ऐसा कभी नहीं होता है । जो नीचे है, उसमें से ऊपर आ सकने की संपूर्ण संभावना है और ऊँचे है, वह नीचे भी जा सकता है । इसलिए सभी से उत्तम तो किसी के विषय में कुछ भी न मान लें यही योग्य है ।

ज्ञानपूर्वक की आज्ञांकितता का लाभ

संसारव्यवहार के क्षेत्र में अनेक प्रकार के भिन्न-भिन्न प्रसंगों में कसौटी भी पक्की होगी । फिर, हम संयुक्त कुटुंब में मुख्यरूप से जो कर्ता करवाता हो और खास करके बुजुर्गों की समझ और सूचना अनुसार चलना और करना है । वहाँ तो अधिक से अधिक सावधान होना है । हमारे सभी आग्रह, ममता, इच्छा आदि सभी यदि हमें टालना हो तो ऐसे बुजुर्गों को कहे करने में हमारे सभी ममत्व, ममता, इच्छा, आग्रह आदि टालने का यह एक बड़े से बड़ा साधन है । उनके हृदय अनुसार आचरण करने में जब हमारा संपूर्ण रूप से संकोच चला जाएगा और मन में उस बात पर कोई विचार भी न उपजे और वैसे आचरण में हमारे आग्रह, ममता और ऐसे **जीव**प्रकार की वृत्तियाँ टाल देने की यह एक उत्तम साधना है, ऐसा ज्ञानभान यदि जाग जाय तो वैसे ज्ञानपूर्वक के वर्तन में से जीवन की साधना में बहुत चेतन प्रकट हो जाय । फिर, यह करने में दोहरा लाभ है । बुझुर्गों का सद्भाव और प्रेमभाव और हमारे सम्बन्ध की शुभ भावना उनमें प्रगट होती है और उनकी अच्छी भावना तथा सहानुभूति भी हमें मिलती है । यह सब हमें अत्यधिक मददरूप हो पड़ता है और हमें बहुत सरलता हुआ करती है ।

संयुक्त कुटुंब की भावना

संयुक्त कुटुंब की भावना यदि हम सही रूप में समझते हों तो उसमें अनेक गुण विकसित करने के मौके मिला करते हैं । अनेक व्यक्तिओं के स्वभाव और मानस अलग-अलग होते हैं । इससे, उनके साथ ज्ञानभक्तिपूर्वक का सुमेल साधने का सहृदयता से प्रयत्न किया करते होंगे तो जीवनविकास के लिए भूमिका विकसित होती जाती है । सहनशीलता, दूसरों को सहानुभूतिपूर्वक समझने की कला, दूसरों के विचार और मत के संदर्भ की सहिष्णुता आदि गुण जीवन में अधिक से अधिक जीवित होते जाते हैं । बुजुर्गों के सम्बन्धी हृदय का आदरभाव और प्रेम की उत्तम प्रकार की भावना हमारे हृदय में न हो तो उनके सूचनों का अथवा तो उनके कहने का सच्चा मर्म और हार्द हमारे में संपूर्ण उगनेवाला नहीं है ।

सभी के प्रति सद्‌भाव रखो

किसी का भी कहा करने में उनके सम्बन्धी स्वीकार करने की भूमिकावाला हृदय का सद्‌भाव माँग लेता है । इसप्रकार, ज्ञानपूर्वक व्यवहार करने पर हमें संपूर्णरूप से शून्य बनना पड़ेगा । ऐसे बने बिना चलनेवाला भी नहीं तो फिर वैसा होने की तरफ हमारा संपूर्ण हृदय का लक्ष जाग जाना चाहिए । फिर, ऐसा व्यवहार करने से हमारी कोई कदर न करे उसकी परवाह नहीं है, पर हम समझपूर्वक जानबूझकर सभी किसी की कदर करते हो जाएँ, उसकी तो सौ प्रतिशत परवाह

हमें रखनी है । दूसरों के प्रति सद्‌भाव और उनमें रहे अच्छे गुणों की परख और उनके विषयक उनके प्रति हमारी समझपूर्वक की हृदय की ममता दिल में जागी होगी तो ही हम में सद्‌भाव और सद्‌गुण विषयक चोट लगनेवाली है ।

जिसे सद्‌गुणों को जीवन में लाना है, प्रकट करना है, इतना ही नहीं, पर काम करते कर देना है, ऐसे **जीव** को सद्‌भाव और सद्‌गुण के प्रति लक्ष-चिंतन जीवन के प्रति सकल आचरण में यदि न रहता हो तो वैसा भाव और वैसे गुण हम में खिल सकनेवाले नहीं हैं, यह निश्चित जानना । प्रेम की भावना में एक ही पक्ष है । मीरा ने ऐसा प्रेम करके जाना है । नरसिंह मेहता ने भी वह गाकर जाना और अनुभव करके जाना है । अनेक संतभक्तों ने उस अनुसार आचरण करके बतलाया है । उन्हें जगत के प्रति या संबंधिओं के प्रति अवगणना या तुच्छता की वृत्ति न थी । उन्हें जीवन में अपने भाव के प्रति इतनी अधिक उत्कटता, एकाग्रता, केन्द्रितता, समग्रता में व्याप्त थे कि जिससे आगे पीछे का अन्य सब उनके मन शून्यवत् हुआ करता था । सभी के प्रति उनका सद्‌भाव उनके जीवन में व्यक्त हुआ था । इससे, हमें सबके साथ सद्‌भाव से ज्ञानपूर्वक व्यवहार करना है और उन उनमें रहे हुए अच्छे अच्छे गुणों का हमें भान हो ऐसी भावना रखनी है । ऐसा यदि हमारा अभ्यास जीवित रहा करेगा तो ही हमारी सुमेल की भावना सचमुच में जीवित होनेवाली है यह जानना ।

लेखक के सद्‌भाव का सुफल

तुम्हें एक उदाहरण दूँ । मैं नड़ियाद में हरिजन सेवा का काम करता था । पूज्य गांधीबापु के जन्मदिन पर सहभोजन के लिए नड़ियाद के अनेक प्रतिष्ठित गृहस्थों को निमंत्रण दिया था । भजन आदि रखे थे । सूखे नास्ते का प्रबंध किया था । उसमें गाँव के अनेक प्रतिष्ठित नेता आये थे । दूसरे दिन वणिक ज्ञाति इकट्ठी हुई और इसमें भाग लिए हुए को उन्हें ज्ञाति के बाहर निकाल दिया और ऐसे दो दल हुए । मुझे भी ज्ञाति के बाहर रखने के फुसफुस प्रयास हुआ था । परन्तु सभी के साथ मेरा मेल होने से लोकचर्चा हुई तब भी वैसा करने का किसी के हृदय से हुआ नहीं । जो भी सभी बुजुर्गों को प्रेमपूर्वक नम्रता से प्रणाम करता और उनके प्रति सद्‌भाव रखा करता, उसका यह परिणाम निकला । इस तरह ज्ञानपूर्वक व्यवहार करने से उत्तम परिणाम तो यह निकलता है कि हमारा स्वभाव और प्रकृति में बहुत ही फर्क पड़ा करता है ।

बाहर की साधना कैसी हो ?

ऐसे समझपूर्वक के व्यवहार को तो मैं साधना का Practical – व्यवहार के रूप में उपयोग में आये ऐसा प्रकार गिनता हूँ । साधना जितनी आंतरिक प्रकार और प्रमाण की भी है, उतनी ही ऊपर के रूप से बाहर से व्यवहार्य प्रमाण की भी है । इसलिए ऊपर अनुसार हमें आचरण करना है, वह जानना । जीवन में जब जब किसी के द्वारा कोई सूचन

मिले तब तब उसके दो भाग कर दें Essential or non-essential – उपयोगी या बिनउपयोगी । जो जो कुछ कहने या सूचन देने में आये या सूचन करने में आये और जो करने में किसी की कोई हानि न हो यानी कि भावना में क्षति न पैदा होती हो, जो करने में कोई बाधा न हो वैसा तो एकदम स्वीकार करके तुरन्त ही कर ही देना । साधारण रूप से छोटी छोटी बातों में करने या न करने में मन के आग्रह, ममता, आसक्ति आदि के दर्शन या व्यक्तरूप हुआ करता होता है ।

इसलिए हमें अपने आग्रहों, ममता, ममत्व, आशा, इच्छा आदि सब कुछ यदि छोड़ना हो तो दूसरों का कहा मानने में और सूचनाओं का स्वीकार करने में हमारे हृदय की उमंगभरी तैयारी जागी हुई होनी चाहिए, परन्तु उसके साथ ही कार्य हम किस भाव और किस हेतु से करते हैं, और उसकी जागृतिपूर्वक की समझ वह वह करते समय हम में कैसी और कितनी प्राणवान होती है, उस पर उस कर्म के परिणामों का सच्चा आधार रहा हुआ है । यह सब तुम्हें लिख रहा हूँ, उस अनुसार यदि आचरण कर सकोगी तो बेड़ा पार है ऐसा समझना । प्रभुकृपा से **इस जीव** का वैसा व्यवहार होता है । निकट के परिचय में आ गये लोगों से पूछोगी तो पता चलेगा ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १०-३-१९५१

आज हम सभी कुंभकोणम् आ गये हैं और आज शाम को त्रिचि जायेंगे और सोमवार को यहाँ वापस आ जायेंगे । मद्रास (चेन्नाई) के तीन लंबे पत्र तुम्हें मिले होंगे । **पतले कोरे कागज आज अलग बुकपोस्ट से तुम्हें भिजवाये हैं, उसका अब लिखने में उपयोग करना । जिससे, टिकट कम लगानी पड़े ।**

सद्गुरु की ममताएँ

यहाँ के आश्रम का स्थान मुझे तो किसी हृदय के स्वजन जितना ही प्यारा है । हम में तो ममता आदि भी है । इससे, हम कभी अपने आपको ऐसे हैं या वैसे हैं ऐसा नहीं कहते हैं । हम तो साधनरूप में, शक्ति के रूप में उसका उपयोग करते हैं । वृत्ति वह शक्तिस्वरूप है, ऐसा अनेक बार मुँह से बोला किया है, वह हमारे मन हकीकत रूप से है । इसलिए इस मनोहर स्थान में हमारे खेलने के लिए, आनंदविहार करने के लिए ये सब वृत्तियाँ हमारे हृदय में रही होती हैं । यदि स्थूल विषयक ऐसा हो तो जीतेजागते के बारे में हो उसमें क्या आश्चर्य ! परन्तु जो **जीव** अपने जीवनविकास का ज्ञानभान सतत रखा करता है और हम में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार आदि लगाकर जीया करता है, वैसा **जीव** हमें जगत से अधिक प्यारा है । जीवन और संसार में जो कुछ है वह हमारे कारण है । इसलिए हम यदि अपने स्वरूप में प्रकट हों तो जगत में प्रकट हुए हैं यह निश्चित हकीकत होगी । जिसे बनना है और वैसा दिल हुआ

है वह बने बिना बैठे कैसे रह सकता है ? इसलिए, जागृत रहकर भगवान का नामस्मरण बस किया ही करें ।

काम लेने के लिए गुण

पुत्री के अभ्यास में हो सके उतना ध्यान देखभाल रखनी वह हमारा धर्म है । उसका शरीर सहन कर सके उतनी मर्यादा में जो बने वह करना । हृदय में जिस किसी के पास से किसी भी प्रकार का काम लेना है, उसके प्रति उन कर्मों के योग्य निराग्रहवाला, ममतायुक्त, सहानुभूतिवाला प्रेमभाव प्रकट हुए बिना कुछ भी नहीं हो सकता है । बालक के जीवन और उसके संस्कार की जिम्मेदारी अवश्य मातापिता की है और पुत्री के विषय में तुम जितना ध्यान रखोगी उतना उत्तम है, पर किसी बात पर अत्याचार न करना ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १५-३-१९५१

हँसते मुँह यज्ञ में होम हो जाओ

तुम्हें जानबूझकर पत्र नहीं लिखे हैं । काम हो और ना लिखूँ यह भी समझ सकते हैं । १९४२ के आखिर में मुंबई में पैसे उगाहने का (हरिजन संघ के लिए) बहुत काम रहा करता था और बहुत आवारागर्दी थी फिर भी....को पन्ने भरकर पत्र लिखा करता, परन्तु मुझे तुम्हारी स्थिति का ख्याल है । तुम्हारे पत्र पढ़कर तुम्हारी भावना की समझ पड़ती है और कदर भी होती है । जीतेजागते प्राणी को कसाई (हमारी

समझ से) निर्दयरूप से काट डालता है, उसी तरह हमें अनेक तरह से समझ समझकर कटते रहना है। उस कटने की विधि में हमारे हृदय की उमंग, उत्साह, उल्लास, धीरज आदि अनेक गुणों को जीवित करके अथवा तो जीवित रहा करे ऐसा आचरण हुआ करे तभी वह **इस** मार्ग के लिए उत्तम बात है।

सहज सावधान होते सब मिले

हृदय का प्रेमभाव प्रकट हो तो कोई बाधा नहीं आयेगी। और महान लगता कर्म—वह कर्म महान होने पर भी और कठिन होने पर भी—हमारे लिए वैसी स्थिति का तब वह रहता नहीं है। जीवन का एक पक्ष नहीं; पर अनंत पक्ष हैं। उन सभी पक्षों में हमारी समझ हमारे आदर्शों की अपेक्षा से योग्य प्रकार की रहा करे ऐसी सहज सावधानी हमारे में प्रकट होनी चाहिए। और जो कुछ साधन है, वह साधन तो वैसी अंतर की समझ लाने के लिए है। इसलिए हमारा हेतु लक्ष में रखकर जो भी कुछ करें उसमें उसका चेतनास्मरण अंतर में जागता रहे तो हमारा निमार्ण अवश्य हुआ करेगा।

जो कुछ हो वह हमें श्रीभगवान को प्रार्थनाभाव और आत्मनिवेदनभाव से—आर्त और आर्द्रभाव से—पुकारा करें तो वह जो शांति देगा वैसी शांति कोई नहीं दे सकनेवाला है।

गुरुवचन कब और क्यों स्वीकार करें

तुम्हें मैंने जो जो पत्र लिखें हैं, उन पत्रों में तुम्हारे वहाँ से लिखे हुए पत्रों के उत्तर मिल ही गये हैं। मेरे बारे में कुछ

भी—अनुभव बिना या मान्यता—कल्पना से मान नहीं लेना है, पर उसकी ठोसता स्वीकार कर सके उतना दिल में लगे तभी उसका स्वीकार करना । **'स्वीकार करना' इसे कहते हैं कि जिसे स्वीकार करने के बाद उसमें से पीछे हटना ही न हो सके । इसिलए भावना और आवेश से कुछ नहीं मानना है, ऐसी मेरी तुम्हें बार-बार विनती है ।**

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १६-३-१९५१

श्रद्धा ठोस अनुभव से होती है

तुम्हारे ता. १२ से १४ तक के पत्र मिले हैं । मेरे पत्र से तुम्हें अपनी मानसिक परिस्थिति और संयोग का हूबहू वर्णन मिल जाता है, यह बहुत ही उत्तम यथार्थ है, परन्तु वह सत्य उसकी वास्तविकता में ही अनुभव हुआ हो और उसके पीछे कल्पना न हो तो इतना सत्य भी विश्वास जगाने और विश्वास जीवित करने के लिए पर्याप्त हो जाता है ।

सद्‌गुरु अपने आचरण का खुलासा न भी दें

'हमारे बारे में हमें कोई दावा नहीं करना है, परन्तु तुम्हें हम सभी तरह से समझाने की माथापच्ची के कभी नहीं पड़ सकते, यह भी निश्चित जानना ।' (इस बारे में) तुमने मुझे पूछाया वह योग्य किया है । तुम्हारे साथ हमें कैसे लिखना, कैसे रहना, कैसे वर्तन करना वह सब कुछ वह कहकर नहीं होता है और मेरा कोई ठिकाना भी नहीं होता है और इससे

सामनेवाले **जीव** में मेरे बारे में योग्यता अथवा अयोग्यता के बारे में, विशेष करके अयोग्यता विषयक ख्याल भी जागने का पूरा संभव रहता है। उस समय मन में अस्थिरता भी जागे और हमारा आधार और नींव हिल भी जाय ऐसा भी होता है। ऐसे समय में तुम मुझे समझाने के लिए कहो तो वह तुम्हारे लिए अयोग्य है ऐसा नहीं कहना है, परन्तु मुझे समझाना पड़े और ऐसी माथापच्ची में उतरना पड़े यही मुझे तो अघटित लगे।

इसलिए, ऐसा कोई प्रसंग आ पड़े तो ऊपर का सत्य तुम्हें बतला दिया हो तो वह अति उत्तम। मैं तुम्हें कोई बुलाने के लिए नहीं आया। मुझे कैसे चलना, कैसे व्यवहार करना, कैसे कहना और कैसे लिखना यह मेरी अपनी बात है। इससे, तुम यदि अपने हृदय के प्रेभक्तिभाव से आई हो तो और जीवन के निर्माण के विकास के लिए सच्ची तमन्ना जागी हो तब भी—अथवा तो इस **जीव** के चेतनपन विषयक संपूर्ण समझ न हो तो—अथवा तो हमारी अपनी मानसिक भूमिका और समझ द्वारा कुछ कुछ अनुमान लगाना और मानना बने तो—उसके पहले मुझे तुम्हें चेतावनी देनी चाहिए। साधारण रूप से मैं समझ नहीं देता ऐसा होता नहीं है, पर ऐसा ही आचरण करूँ ऐसा कोई निश्चित पैमाना नहीं है।

मेरे पत्र में से तुम्हारी माँ या दूसरे किसी को पढ़वाना हो तो वह अवश्य पढ़वाना, पर कौनसा हिस्सा पढ़वाना है, उसका विवेक तुम्हें संपूर्ण रखना।

लेखक के पत्रलेखन का सविशेष तरीका

मैं लिखते हुए कुछ भी सोच सोचकर नहीं लिखता हूँ। तुम्हें अपने मन के तख्ते समक्ष रखकर जैसी स्मृति जागे वैसे लिखाता जाता हूँ। इसलिए क्या पढ़वाना और क्या नहीं पढ़वाना उसका विवेक तुम्हें करना है। ये पत्र तुम्हारे घर में से दूसरे सभी पढ़ें उस बारे में मुझे आपत्ति तो नहीं है, पर तुम्हारे जितनी भावना दूसरे पढ़नेवालों में न हो तो उन्हें उस लिखने की वस्तु का हार्द हाथ में ही नहीं आये और सुलटा का उलटा अर्थ भी हो।

गुरु के साथ का संबंध सर्वश्रेष्ठ है

मेरे साथ का तुम्हारा संबंध जगत की सर्व पवित्र में पवित्र भावनाओं से भी विशेष पवित्र है। यह पवित्रता तो भगवान का अंग है और उत्कट भावना को आकार देनेवाला उत्तम सहज साधन है। हम से कभी उसमें कहीं दाग न लगे और हमारी भावना सर्व प्रकार से सर्वोच्च और सर्वोत्तम रहे उसमें ही जीवन की उत्तम कला और शोभा है। और इससे हमारा मन, हृदय, प्राण, चित्त और अहम् को किसी **जीव** की जाग गई हुई चेतना में प्रेमभक्तिज्ञानभाव से यदि हम संपूर्ण रूप से पिरो सकें तो सभी करणों का मैल जल्दी निकल जाता है, यह जानना। हृदय की भावना यह कल्पना नहीं पर ठोस सत्य की बात है। गजल की एक पंक्ति इसप्रकार है –

'हृदय के भावसागर की, उछलती छलक पर छलकें'

हृदय के भावसागर की ऐसी छलकें जब जीवन में

उछलती हैं और ऐसी छलकें उछलती हों ऐसी क्षण के समय में यदि उसे ध्येय के हेतु संदर्भ में आकार देने की समझ हमारे में जागती रह सके तो अत्यधिक हो सके ।

भक्ति की व्याख्या तथा उसका सुफल

भावना और भक्ति प्रकट हुए बिना जो जो कुछ करते हों, उसमें भावना का प्रवेश हुआ न होने से भावना का घन स्वरूप नहीं बन सकता । ज्ञानपूर्वक की प्रेमभक्ति प्रकट हो सके, तभी मन का अंदाजा लगाना सरलता से एकाग्र भाव से मिल सके। जैसे कुछ चिपकाने के लिए गोंद की आवश्यकता रहती है वैसे मन को भगवान में लगाने को भक्ति है, पर **भक्ति यानी बावलापन नहीं । भक्ति तो ज्ञानप्रेरक है । भक्ति प्रकट होते जीवन के अनेक पक्षों की योग्य समझ हम में जागती है, बुद्धि की अति सूक्ष्मता होती है, सर्व प्रकार की शुद्धि का योग्य भान आता है । अपने बारे में योग्य और अयोग्य भावना और वृत्तिओं की संपूर्ण समझ जाग जाती है ।**

हमारी विवेकशक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म होती जाती है । हम अपने आपको अधिक से अधिक समतापूर्वक का निरीक्षण किया करके समझते होते जाते हैं । जो कोई अपने को पूरी तरह समझता हो जाता है, उसे दूसरों को समझने में थोड़ी भी देर नहीं लगेगी । फिर, सभी किसी परिस्थिति में और सभी प्रकार के संयोगों में किसी से भी कभी उलझना होता है तो उसका मूल हमारे में रहा हुआ है और हमारी वैसी भूमिका के बारे में होता है, वैसी ज्ञानपूर्वक की समझ हम

में प्रकट होती है। भक्ति जागने से अडिग से अडिग निश्चलता और निश्चय का अटूट बल हम अपने में प्रकट होता अनुभव कर सकते हैं। इसलिए ज्ञानपूर्वक की प्रेमभक्ति प्रकट हो तो हम सब कुछ कर सकते हैं।

भक्त के लक्षण

धुरंधर पंडितों, विद्वानों, आचार्यों, महंतों, साधुसंन्यासिओं और उस विषय में अनेक प्रकार के 'भाषण' करनेवाले **जीव** भक्ति के बारे में संपूर्ण ज्ञान नहीं रखते हैं, ऐसा मेरा अपना निजी मानना है। जिसमें भक्ति है वह कभी निर्माल्य नहीं हो सकता है। उसके शौर्य, साहस, हिंमत, धीरज और सहनशीलता को कोई चुनौती दे सके ऐसा नहीं है। भक्त कभी हारता होता नहीं। विकास के हेतु की कक्षा से वह कभी पीछे पड़ता लगे, पर ऐसे पीछे पड़ने पर वह एकदम जाग जाता है। जिस किसी **जीव** को अपने ध्येय के प्रति जीताजागता ध्यान प्रकट हुआ है, उसके जीवन में उससे कभी भूल नहीं होती ऐसा तो नहीं है, परन्तु ऐसी होती रहती भूलों में से वह एकदम सीख लेता है। भूल में से तो वह ज्ञान प्राप्त करता है और उच्च प्रकार की समझ पाता है। इसलिए जो कुछ किया करें, उसमें से बोध, प्रेरणा मिला करें तो जानना कि हम में भक्ति जागने लगी है। जिसमें भक्ति जागती है, उसे किसी के प्रति बैर नहीं होता, किसी के प्रति तुच्छता नहीं होती। सभी को वह अपने में देखता है और सभी में अपने को देखता है। यद्यपि यह तो अति आगे का यथार्थ है, तथापि ऐसी भावना की शुरूआत उसमें होने लगती है।

माता, पत्थर में भी प्राण प्रकट कर देती है । इसलिए यदि भक्ति की भावना प्रकट हो जाय तो सब कुछ सुलभ है और तुम से वह क्यों न होगा ? स्त्रीहृदय में रही हुई भावना यह तो अमोघ शक्ति है, उनके हृदय की भावना ने तो धर्म धारण किया हुआ है, उनके द्वारा तो समाज की धर्म-भावना आज थोड़ी बहुत भी टिकी हुई है, उन्होंने ही संसार को निभाया है । जैसा माता का हृदय, तेजस्विता और शक्ति, उस अनुसार ही हम सब पैदा होते हैं । माता का हृदयस्थान और उसकी गोद यह तो हमारे जीवन का अमृत और भगवान की लीला-अमृत जैसे हैं । माता की बराबरी इस जगत में कोई कर सके ऐसा नहीं है । माता के हृदय की भावना भले ही संसारी हो और वह भले ही शुष्क प्रकार की व्यवहारिक हो, तब भी बालक के साथ माँ का जैसा दिल का तार जुड़ा हुआ है वैसा किसी का नहीं रह सकता है । माता में वह शक्ति प्रकृति ने सहजता से रखी है । जिससे, विश्व में वैसा यज्ञ अनंतरूप से चल सके । इसलिए, यदि हम सही रूप में माता बन सकें तो पत्थर में भी प्राण प्रकट कर सकते हैं ।

साधना में प्रगति कैसे हो ?

मेरी तो तुम्हें मदद करने की उम्मीद है । उम्मीद तो क्या पर भगवान के प्रति चेतना, जो कोई मिले उनमें जागे ऐसी हमारी तो उत्कट आतुरता है, परन्तु जीवन में **इस** मार्ग सम्बन्ध की भावना का परिशीलन और अनुशीलन सतत निरन्तर हुए बिना इसमें कोई अधिक चंचुप्रवेश होगा नहीं, यह

निश्चित जानना । मेरी मदद किस तरह से मिले, वह तो तुम्हें लिख चूका हूँ । उस तरह अनुभव करके देखना और भरोसा भी करके देखना । यदि तुम्हें ऐसा अनुभव और भरोसा प्रभुकृपा से होगा तो श्रद्धाविश्वास जागृत होने में सहारा मिलेगा । अनुभव होने से संपूर्ण श्रद्धा और विश्वास प्रकट हो जाता है और सोलह आना जीवित बनता है ऐसा भी नहीं होता है । इससे हमारी अपनी इस विषय की समझ जितनी विस्तारपूर्वक और योग्य प्रकार की हुआ करे, वह भी आवश्यक है । कहीं किसी के विषय में दाँवपेच न रहें और **जीव**स्वभाव का सब कुछ हो उसे मृत्यु देकर हमें नवजीवन पुनः प्राप्त करना है, यह जानना । संबंधी, सहोदर वे अन्य कोई नहीं हैं, पर हम स्वयं ही हैं । **हम स्वयं अपने को काम सौंपे तो हम अपने साथ जिस स्थिति में रहते हैं या आचरण करते हैं, उसी तरह दूसरों के साथ व्यवहार करना है, दूसरों का दोष लगे वहाँ हमें चेत जाना है ।**

जागृति की महत्ता

जीव ज्ञान को प्राप्त करता है उस समय किसी **जीव** की प्रकृति उसके असल आकार में नहीं होती ऐसा नहीं होता, परन्तु जहाँ तक हमारी स्थिति वैसी हुई नहीं वहाँ तक दूसरों को समझने या उनमें दोष देखने की वृत्ति जागने पर हमें एकदम सभान चेत जाना चाहिए और हमें स्वयं अपने मन को मठारना है । ऐसी स्थिति से मन को समेट लेना और उसे टोका करें । ज्ञानपूर्वक की जागृति बिना ऐसा हो सकना दुर्लभ

सत्य है, परन्तु कल्पना एक बात है और भावना दूसरी हकीकत है । इसलिए जैसा कुछ होना है और जिस प्रकार की योग्य समझ और योग्य व्यवहार की मिलावट उसके साथ यानी कि ज्ञानभक्ति के साथ हमें जो करना है, उसका भान हमें जागना चाहिए । सब कुछ करते करते या किसी के साथ आचरण होते हमारे मन में यदि जीताजागता भावनापूर्वक स्मरण रहा करे, करेगा तो कोई अड़चन आनेवाली नहीं है, यह निश्चित जानना ।

रामबाण लगे तो वाग्बाण न अखरे

हम यदि खूब उल्लासवाले मन के भाव में हों, उस समय कोई कहीं इधरउधर चीढ़ चड़े ऐसा कहे तो उस समय हम एकदम अकड़ नहीं जाते और स्वस्थता से शांति रख सकते हैं । अत्यंत उल्लास और आनंद में मन हो उस समय कोई हमें त्रास या संताप हो ऐसा कहे तो वह अधिक खराब नहीं लगता है । परन्तु मन ऊबा हुआ हो और विचारों की उलझन और आकुलता में उलझ पड़ा हो और कोई उलझन की माथापच्ची में आ पड़ा हो अथवा मन की ऐसी द्विधा स्थिति में कोई हमें ऐसा कहे तो हम एकदम जल्दी अकुला उठते हैं और भड़क जाते हैं । यह तो समझ सकें वैसा हमारा अनुभव है । इस पर से मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मन यदि प्रेमभक्ति की भावना के आवेश से प्रभु के स्मरण में मस्त होकर लीन रहा करे तो संसारी **जीवों** का कुछ भी टोका हुआ या कहना-बोलना हमें अयोग्यता

के भान में लगनेवाला नहीं, यह निश्चित जानना । इसलिए हमें अपनी मानसिक भूमिका पलटनी है ।

गुरु संबंध के सुपरिणाम

तुम्हारे हृदय की भावना **इस जीव** के संदर्भ में जो कुछ हो, वह तुम्हें जीवन के ध्येय संदर्भ में ले जाय तभी वह उपयोगी है, उसके बिना तो चिमटना मिथ्या है ऐसा समझना । मेरे संदर्भ की भावना और उससे होता हृदय का(आंतरिक) आकर्षण वह तो **जीव** को अपना सच्चा भान करवाने के लिए मददरूप से है । मन को एकचित्त करवाने और तल्लीन करवाने किसी एक प्रकार के आकर्षण की जरूरत रहती है और ऐसा आकर्षण हृदय की मिलावट कराती है । यदि ऐसी मिलावट हो तो शक्ति का अनुभव हुए बिना रहता नहीं । हमारे आगेपीछे और हमारे साथ साथ कोई है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है और इससे हमें बहुत शांति और धीरज मिला करते हैं और हम जीवन में अकेले नहीं हैं पर मार्गदर्शक साथ ही है, ऐसा प्रत्यक्ष लगता है । ऐसा लगने के बाद ही जीवन में सच्ची प्रगति हो सकती है, यह जानना ।

सद्‌गुरु का अनासक्त प्रेम

'जीवनपगरण' समाप्त होते 'जीवनसंग्राम' पढ़ना प्रारंभ करना । उसमें भी जो जो उत्तम लगे उस नीचे रेखा खींचना । श्री....मिलें तो मेरा उन्हें सप्रेम प्रणाम कहना । उनमें भजन गाने की जो मीठी आवाज है, वह गाने जितनी ही मर्यादित

न रहें, परन्तु जीवनविकास के मार्ग पर काम करती रहे और जीवन के सभी क्षेत्रों तथा जीवन संबंधित सच्चा ज्ञान प्रकट हो ऐसी हो, ऐसी उनके बारे में दिल की शुभेच्छा है। सदा ही पल-पल आनंद में रहेगी तभी तुम काम की हो, बाकी नहीं। हमें धक्के या लात नहीं मारना। उसका पूरा भान रखना।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १८-३-१९५१

मिलना अर्थात् क्या ?

मुझें तुम्हें 'मिलना' अर्थात् क्या ? वह लिखना था। दूध और पानी मिल जाय यानी कि दोनों एकदूसरे के स्वरूप में एक हो जाते हैं और एकरंग के हो जाते हैं। दोनों का मिलना होने से अलगपन रहता होने पर भी वहाँ अलगपन रहता नहीं है। अरसपरस एकरस हो जाते हैं। उस तरह मिलना अर्थात् एकभाव में एकाग्र, केन्द्रित्त और संपूर्ण तल्लीन हो जाना वह। जगत और सृष्टि में पुरुष और प्रकृति ऐसे दो हैं। पुरुष जागृत नहीं होता। यहाँ 'पुरुष' अर्थात् मूछोंवाला शरीर वह नहीं, पर 'पुरुष' एक तत्त्वरूप से, चेतन की किसी एक अवस्था की स्थिति का ख्याल दर्शाता शब्द है; वह एक स्त्रीशरीरवाले **जीव** में और पुरुषशरीरवाले **जीव** में समान रूप से रहता है। उसमें अलगपन कहीं भी नहीं है। हमारा पुरुष यदि जागृत हो जाये तो फिर प्रकृति, प्रकृति होने पर भी और प्रकृति में बहने पर भी और प्रकृति प्रकृति के रूप

में हिस्सा निभाने पर भी उसमें प्रकृतिपन रहता होता नहीं । सामान्य **जीव** में प्रकृति ही खेल रही होती है और पुरुष सुषुप्त होता है । पुरुष जागृत हो जाय तभी सच्चे रूप में मिलना हो सकता है । ऐसी स्थिति में शरीर से मिलनेपन की आवश्यकता या कमी नहीं लगती है और तब हृदय की इच्छा होने पर मिलने का हुआ करता है ।

स्थूल प्राकृतिक भूख कैसे शांत हो ?

जैसे जप, तप, प्रार्थना, ध्यान आदि साधन हमारे पुरुष को जागृत करने के लिए हैं, उसी तरह शरीर का साधन यह भी उसके लिए ही स्वाभाविक रूप से निर्मित हैं । शरीर के वे साधनों का हम ज्ञानभक्तिपूर्वक ऐसा उपयोग नहीं करते हैं । इसीलिए ही हमारे शरीर की भूख अलग प्रकार की रहती है । शरीर की प्रकृति के प्रकार की भूख भी एक प्रकार की नहीं होती है । शरीर के खानेपीने और श्वास आदि लेने की जो भूख है, उसके साथ शरीर में प्राकृतिक प्राण की भी अलग-अलग प्रकार की भूख होती हैं । प्राकृतिक प्राण की भूख अर्थात् अनेक प्रकार की इच्छाएँ, आशाएँ, लालसाएँ, कामनाएँ, तृप्तियाँ, पसंद, नापसंद, तृष्णाएँ आदि अनेक प्रकार की रहा करती हैं । इसलिए हमारे प्रकृति के प्राण में श्रीभगवान के चरणकमल की आसक्ति यदि बनी रहे अथवा तो यदि वह ज्वालामुखी की तरह दहकने लग जाय तो फिर प्राकृतिक प्राण की अलग-अलग प्रकार की अधोमुखी भूखों का स्वभाव

बदलता रहता है। कलेवर तो उसका वह होने पर भी उसका मूल धर्म प्रकट होता है। उसके पश्चात् जो श्रीभगवान के चेतन लक्षण के बारे में मिलना होता है, यह मिलना कोई ओर-अलग ही प्रकार का मिलन होता है। इसलिए जो हमें मिलना है, वह तो वहाँ और वैसी दशा में मिलने का करना है।

अंतर और बाहर की शुद्धि करो

हमारे शरीर की शुद्धि बनाये रखने के लिए आचरण आदि नियमों को हमारे शास्त्र में बतलाया गया है। **जो कोई *जीव* शरीर की योग्य शुद्धि बनाये नहीं रखता, वैसे *जीव* को आंतरिक शुद्धि का क्या पता चलेगा ?** चेतन संदर्भ की धधगती तमन्ना प्रकट हुई नहीं वहाँ तक चेतन संदर्भ की आंतरिक शुद्धि प्रकट करने के लिए शरीर की शुद्धि के आचरण के नियमों की आवश्यकता रहती है और उन आचरणों की शुद्धि कौन-कौन-सी और किस किस तरह की हो सकती है, वह तुम्हें समझाने की जरूरत नहीं है। उस स्थूल शुद्धि में अनेक नियम हैं। उसमें शरीर को स्नानादिक से लेकर दूसरे अनेक तरीकों में शुद्ध रखने की प्रक्रिया समायी हुई है। यह सब करने के साथ मानसिक और प्राकृतिक प्राण की आंतरिक शुद्धि का आहारविहार शुद्ध हुआ करे इसका सूक्ष्म विवेक हमें बनाये रखना है। ये दोनों प्रकार की शुद्धि साथ साथ हुआ करे, यह अति आवश्यक है।

स्पर्श की साधना की शर्तें

वैष्णव धर्म में मरजाद का वैयक्तिक धर्म जो है, उसमें ऊपर का प्रकार समा जाता है। किन्तु अभी उस मरजाद धर्म

में आंतरिक शुद्धि की जगह स्थूल शुद्धि पर ही एकमात्र झुकाव रहा हुआ है और महत्त्व भी उस ओर ही अनेकों का मुड़ा हुआ होता है । उस शुद्धि का हेतु क्या है और वह किस लिए है, इसका ज्ञानभान भूल गये हैं । इसलिए हमें तो इन दोनों प्रकार की शुद्धियों को ज्ञानभक्तिपूर्वक बनाये रखनी हैं और बढ़ोतरी करनी है । ऐसी दो प्रकार की शुद्धियों को अधिक चेतन स्वरूप में प्रकट करने के लिए स्पर्श की मर्यादा का ज्ञान हमारी संस्कृति में विकसित हुआ था । मनुष्य के शरीर के रोम-रोम में से कोई एक प्रकार का अदृष्ट और न समझ में आये ऐसा सूक्ष्म प्रकार का प्रवाह बहा या झरा करता रहता है । उस प्रवाह की सूक्ष्म असर हमें स्पर्श करती भी होती है । यह असर नकारात्मक भी हो सकती है और रचनात्मक भी हो सके ।

संतमहात्माओं के चरणस्पर्श करने की परम्परा हमारी संस्कृति में है, इसका हेतु, ऐसी उसकी रचनात्मक असर, यदि हमारी अपनी भूमिका चेतन के भाव को स्वीकारयुक्त भूमिका की दशा में हो और चरणस्पर्श करते समय पर यदि उसका संपूर्ण भान और उसके हेतु का ज्ञान रहा करे तो हमारे शरीर के रोमरोम में एक प्रकार का आह्लादक रोमांच अनुभव होता है । किसी प्रकार की बिजली के जैसा प्रवाह हम में मानो बहता हो ऐसा भी उस समय अनुभव होने का समझ आता है । संत या महात्मा पुरुषों के स्पर्श की महिमा हमारी संस्कृति में है, पर जैसे वैष्णव धर्म के मरजाद की भावना का सच्चा

स्वरूप और महत्त्व आज जैसे भूल गये हैं और अज्ञानमूलक एक स्थूल प्रथा की तरह वह रहा हुआ है, उसके जैसा ऊपर की बात में भी वह बना है । इसलिए स्पर्श की मरजाद वह एक उत्तम प्रकार की साधना है । आज के समय में उसकी समझ बहुत कम को है । **छूना न छूना की बात में हम लोग रास्ता भटक गये हैं । इसलिए शरीर से मिलना या उड़कर पास जाएँ ऐसा चाहना वह अज्ञान है, परन्तु मन और प्राण में अपनी आंतरिक शुद्धि हो, उस हेतु के ज्ञान से किसी उच्च जीवात्मा के हृदय की प्रेमभक्ति से चेतनाशक्ति के साथ बार-बार मिलना करना किया करें तो ऐसे मिलने का कोई अर्थ हो सकता है और वह योग्य भी है । इसके बिना मिलने का कोई दूसरा कोई अर्थ नहीं है ।**

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. १९-३-१९५१

भाव के बाढ़वाली दशा का वर्णन

हृदय का भाव जिसमें एकाग्रता के साथ केन्द्रित भरपूर छलकता रहा करता है, उस समय हमारा मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् आदि करण उस भाव में सराबोर रहा करते हैं । हृदय में **भाव**-सागर की लहरों पर लहरें उछला करती हैं, इस समय जीवन में सब भरा भरा लगता है । किसी नये ही प्रकार का ही, समा न सके ऐसा आनंद उभरता रहता है और उस आनंद की छाया जो जो किया करते हों उसमें फैले

बिना नहीं रहती है । हमारे करण मौन दशा को प्राप्त करते हैं और मन में कुछ भी द्विधापन नहीं रहता है । कहीं किसी के विषय में कोई विचार भी उद्‌भव नहीं होते हैं । एक प्रकार की आह्‌लादक मस्ती और नशा **जीव** तब अनुभव करता है और स्वयं उसमें लीन रहा करता है । ऐसे समय में भी अंतर की तटस्थता की भावना यदि जागृत हो तो उसमें उलझना नहीं होता है । हमें तो सभी स्थितियों में संपूर्ण जागृत रहा करना है ।

गजल

स्वजन की याद में हमें, स्वजन को जीवित करने –
जो शौक लगा है, कृपा से वह प्राप्त हुआ है ।
स्वजन की याद में कैसे, विचित्र प्रवाह के नखरे –
मिला करते ! हमें वह खुशी से सारे भोगने हैं ।
अद्‌भुत क्या प्रसादी को स्वजन तो भेजा करते !
हमें चाखनी पड़ती पूरे आनंद से वह वहाँ ।

इसलिए, स्वजनों को पूरी आंतरिक सावधानी रखनी है । जैसे कर्म को भोगे बिना छुटकारा नहीं है वैसे यहाँ भी भोगे बिना छुटकारा नहीं है ।

योग्य अपरिग्रह अर्थात् क्या ?

हमें तो कुछ भी संग्रह नहीं करना है । पुण्य भी दे देना है और साथ साथ में पाप भी । कुछ भी नहीं रख सकते । जो है वह सभी—मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् का—

हमें दिया करना है, परन्तु वह सभी देते समय मन की दशा संपूर्ण एकाग्रतावाली और प्रेमभक्ति के भाव से केन्द्रिततावाली हुई हो और जिसे देना हो, उसे संपूर्ण हृदय में प्रकट करके और देने के हेतु का ज्ञान जागृत रखकर यदि सभी देने करने का हो तो वैसे देनेपन से हम खाली होते रहते हैं ।

समर्पणयज्ञ का अर्थ

श्रीभगवान का नामस्मरण खूब खूब प्रेमभक्ति से और हृदय के उल्लास से लिया करें तो मन अधिक विचार करते हुए थम सकता है सही । **मन में जो जो हुआ करे वह वह देने का आदत किया करनी है । अच्छा और बुरा दोनों दिया करो । ऐसा देने का तो पलपल हुआ करेगा । ऐसा प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक का देना इसका ही नाम समर्पणयज्ञ ।** समर्पण-यज्ञ की भावना में आत्मनिवेदन अपनेआप समा जाता है ।

चाहने का भेस झेलना करना कठिन है

जो जो प्राप्त हुए हैं, उनको हृदय से चाहा करना तो हमारा भेस है । भेस के धर्म में बहुत बहुत रहा हुआ है । हमारा ऐसा भेस यह तो श्रीप्रभु की अनहद कृपा का परिणाम है । दूसरा कोई इसे झेल सके या नहीं यह शंकास्पद है । जहाँ तक हम **जीव**भाव से हैं, वहाँ तक जो जो प्राप्त हुए हैं, उनका सहन करने का जो मिले उसे तपश्चर्याभाव से और जीवननिर्माण के लिए प्रेम उमंग से स्वीकार करना होता है । जहाँ ऐसे सहन करने में प्रेमभाव है, वहाँ वैसा सहन करना दुःखदायक, त्रास

या ऊबाऊ नहीं लगता । मन को कोई खिंचाव या तंगी भी नहीं लगती, परन्तु उसमें अपने जीवन का विकास होता रहता है ऐसी ज्ञानपूर्वक की भावना अधिक से अधिक जीती होती जाती है । इसलिए, कुछ सहने का आये तो वह प्रभु की कृपाप्रसादी है ऐसा समझना है । ऐसा समझ में आता जाय तो मानना कि मन कुछ शांत पड़ता जा रहा है ।

सदा ही पलपल जागृति रखते जाएँ तभी सही मार्ग पर रह सकते हैं, यह निश्चित जानना । इसलिए, चेतनायुक्त रहकर प्रभु का नामस्मरण खूब खूब भक्ति से लिया करना है ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २०-३-१९५१

आतुरता

पत्र की आतुरता यह हृदय की सच्ची आतुरता नहीं है । यह तो कामना या लालसा गिनी जायेगी । ऊर्ध्व प्रकार की आतुरता से कभी निराशा नहीं मिलती और उसमें बेचैनी होने का संभव नहीं होता । पत्र की आतुरता किस लिए ? पत्र से तो यदि ज्ञान की परख हो तो उसके लिए हृदय की योग्य प्रकार की आतुरता रहती है और मन उसमें एकाग्रता अनुभव करके हृदय के भाव में केन्द्रितता व्याप्त हो तो वह योग्य है । ज्ञान या योग्य प्रकार की समझ प्राप्त करने के लिए बहुत उत्सुक हों तो वह भी योग्य है और वैसी उत्सुकता की उत्कटता में दूसरा कुछ काम हो तो वह काम करते करते मुग्धता प्रकट हो

ऐसा भी हो सही । ज्ञान की उत्सुकता की उत्कटता या आतुरता हमारे मन को अधिक एकाग्र और केन्द्रित करती है और हमारे मन को जिसकी आतुरता है, उसे वह प्रत्यक्ष कर देती है । इसलिए यदि सचमुच हृदय की सच्ची आतुरता प्रकट हुई हो तो हमारे मन में वही विषय जीवित हो जाता है । फिर दूर कहाँ रहा ? मैं भी स्वजनों से दूर होने पर भी मिलता रहता हूँ, परन्तु किसी से मन को संतोष नहीं होता है । जलाभुना रहा करता हूँ । 'जीवनप्रेरणा' में 'बाँझपन' नाम से एक पत्र है, वह पढ़ जाना । जो आतुरता रेगिस्तान के मृगजल के जैसी है, उस आतुरता से कुछ लाभ नहीं होगा । आतुरता यदि आतुरता के विषय में मनन, चिंतन और निदिध्यासन में हमें सतत प्रेरित न करे अथवा आतुरता ध्येय के हेतु के अनुकूल योग्य प्रकार का आकार न लेती हो तो ऐसी आतुरता बाँझ है । ऐसी बाँझ रहती आतुरता से क्या आलस्य दूर होगा ?

सद्‌गुरु का संताप और अभिलाषा

तुम मेरा पूरा मानती हो ऐसा जो तुम्हारी माँ मानती है वैसा मैं स्वयं पूरी तरह नहीं मानता हूँ । यदि तुम हृदय से मेरा मानती हो गई हो तो आज तुम्हारी कक्षा यानी कि मानसिक स्थिति कितनी ही ऊर्ध्वगामी हुआ करे ! **प्रभुकृपा से प्राप्त हुए स्वजनों को ठीक से मैं जानता हूँ । वे मुझे ठीक से जानते नहीं हैं, यह बड़े दुःख की बात है ।** ***उनमें मेरा मन रहता है, परन्तु उनके मन में मैं नहीं रहता हूँ ।***

इसलिए तुम्हारे बारे में तुम्हारी माँ जो माने ही यानी कि तुम मेरा सब कहा करती हो और मानती हो, उस तरह उस बात में मैं मानूँ ऐसा नहीं है, परन्तु मेरे हृदय की तो प्रार्थना है कि तुम्हारे द्वारा शोभित होने का सद्‌भाग्य मिला करे ऐसी तो इस हृदय की आतुरता है । तुम्हारे सद्‌व्यवहार से दूसरे **जीवों** के दिल में मुझे उतरने का स्थान मिले तो तुमने मेरी उत्तम सेवा की है गिना जाएगा । इसका नाम ही गुरुभक्ति है । यद्यपि मुझे गुरु गिनने की तुम्हें मैंने साफ मना किया है । तुम्हारे साथ कौन-सा सगापन नहीं ? परन्तु वह सगापन और उसका विचार और उसकी भावना यह कोई अलग ही प्रदेश की सच्चाई है ।

विचार अनुसार वर्तन कैसे हो ?

'**मोटा,** विचारों और वर्तन में अंतर क्यों पड़ता होगा ? विचार तो बहुत बार बहुत अच्छे होते हैं, पर वर्तन में चाहे उतनी सरलता में उतर नहीं सकते ।' महान आत्माओं में वर्तन पहला होता है, विचार बाद में होता है, जब कि हमारे में तो उससे उलटा होता है । **हजार मन विचार हो तो एक रुपिया भर जितना भी वर्तन न हो ।** अब, सद्‌विचार होने पर भी वर्तन क्यों नहीं होता ? सद्‌विचार हो पर उस सद्‌विचार को अमल में लाने का आंतरिक और प्रेरणात्मक बल होना चाहिए । वह बल हम ने कहाँ प्राप्त किया है ? ऐसा आंतरिक प्रेरणात्मक बल प्रखर साधना किये बिना अथवा तो प्रेमलक्षणाभक्ति हृदय

में प्रकट हुए बिना अथवा तो हमारे ध्येय संदर्भ की जीतीजागती धधकती तमन्ना प्रकट हुए बिना मिल नहीं सकती अथवा तो जिस आत्मा के पास से हमें ज्ञान प्राप्त करना है, उसकी जीती मननात्मक चिंतनात्मक भावना की शीलात्मक सोबत पलपल हमारे मन में रहती हो—जीतीजागती रहती हो—तो हमें जो सद्‌विचार ध्येय के संदर्भ में जागे, उसका अमल वर्तन में रख सकते हैं ।

पढ़ा हुआ पचाओ

तुम्हें रोज पत्रों में लिखना तो अत्यधिक हो पर लिखकर क्या करूँ ? जितना लिखकर भेजा है, उतना तू समय से पचा ले तब भी पर्याप्त हो जाय । तुम यदि संमति दो तो रोज तुम्हें तीन पैसे का पोस्टकार्ड मात्र 'हरिः ॐ' 'हरिः ॐ' ऐसा लिखकर भेजूँ । **मेरा पत्र न हो उस दिन बार बार पहले आये हुए पत्र पढ़ लेना और उसके बारे में सोचना । हृदय की भावना जागी हुई होगी तो उसमें से नया नया समझ आयेगा । इसके अलावा, तुम्हें मेरा प्रकाशित साहित्य संपूर्ण पढ़ जाना है । उसमें से तुम्हें इस मार्ग की बहुत समझ मिलेगी ।**

तुम मुझे अपने में ज्ञानस्वरूप में जीता करे तो जो **जीव** आज है, वह सच्चा सात्त्विक बने । विवाह कोई पतिपत्नी के ही होते हैं ऐसा कुछ नहीं है । ऐसा विवाह यह तो मात्र शरीर का होता है । संसार में मनहृदय के विवाह हुए हो, ऐसे जोड़े क्वचित् हैं । **विवाह अर्थात् तो एक होना । हमें तो श्रीभगवान**

की भक्ति में एक होना है, उन्हें वरण करना है । दूसरे वर का क्या करना है ? जिसके द्वारा हमारा अखंड सौभाग्य प्राप्त होता हो ऐसा वर हमें उपयोगी हो । इसके साथ कल लिखी छः पंक्तियाँ तुम्हें भेजी हैं ।

गजल

स्वजन को याद करने की हमें जो पड़ी आदत,
हम हैं सही उसमें, पूरे तल्लीन मस्ती में ।
स्वजन की याद प्यारी है, स्वजनमित्रता अनोखी है,
परन्तु क्या स्वजन भटके ! हृदय चिनगारी लगाते हैं ।
स्वजन लगाकर हम हृदय से, प्यारे उस प्रभु के साथ,
हम जहाँ तहाँ घूमा करते हम न अकेले कहीं भी ।

पूज्य पिताजी माताजी को सप्रेम प्रणाम ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २१-३-१९५१

जीव की भावना की शक्ति और उपयोग

तुम्हारा तारीख १६ से १९ तक का पत्र मिला है । तुम्हें मेरे पत्र न मिलने से इतना विलाप होता है, यह एक तरह से मुझे अच्छा भी लगता है और दूसरी तरह से दुःख भी होता है । दुःख इसलिए कि पत्र अनेक कारणों से न लिख पाये और तुम्हें तो जानबूझकर पत्र लिखे नहीं हैं, यह भी मैं लिख चुका हूँ । फिर, तारीख १६ से १९ तक में कोई पत्र मिला

नहीं, यह जानकर आश्चर्य होता है, पर होगा, उस बारे में अब कुछ हमें सोचना नहीं रहता, यह जानना । पत्र न मिले और इससे भाव हो तो उस भाव के बल द्वारा उस आत्मा में हम अधिक चिंतनशाली बनें और उसीका ही विचार किया करें । भावना का एकाग्र और केन्द्रित हुआ बल इतना तो उत्कट गतिवाला और सूक्ष्म बनता है कि उस भावना के विषय में हमें तद्रूप कर देता है । और भावना में ऐसे तो यद्यपि कल्पना नहीं होती, परन्तु जहाँ तक हम **जीव**दशा में हैं, वहाँ तक भावना में प्राण बहुत बड़ा भाग निभाता होता है और प्राण का प्रकृतिधर्म क्या है, वह तो मैंने तुम्हें लिखा है । प्राण का आक्रंद और ऊँचानीचा होना ये साधना में काम नहीं आते । काम आता भी है, यदि उसका विवेकपूर्ण ज्ञानयोग्य उपयोग किया करें तो ।

साधक निराशा से भी कमाएगा - सीखेगा

जहाँ जहाँ आशा है, वहाँ वहाँ निराशा है ही । 'लाखों निराशा में अमर आशा छिपी है ।' कोई एक वैज्ञानिक किसी तत्त्व की खोज करने को प्रयत्न करता है तो उसे लाखों बार निराश होना पड़ता है, तथापि वह धीरज, हिंमत, साहस नहीं खो बैठता और पुनः पुनः उसके वही विषय का मननचिंतन करके नये नये प्रयोग करता है और प्राप्त निराशाओं से वह नयी समझ और नया ज्ञान प्राप्त करता रहता है । और अनेक बार निराशा मिलती होने पर भी उसका उत्साह अदम्य रहता है । मैडम क्यूरी की फिल्म मैं एक बार देखने गया था । वह

रेडियम खोजने का तरीका खोज रही थी । उसे हजारों बार निराशा मिली थी, परन्तु वह कभी हताश नहीं हुई थी या निष्प्राण भी नहीं हुई थी कि सिर पर हाथ रखकर बैठी भी नहीं थी । निराशा से वह नयी नयी शोध कर डालती और क्या करें, जिससे उस तत्त्व की (रेडियम की) खोज की सही रीति मिले वह खोजने के लिए वह यत्न करती थी ।

उसी तरह हम यदि भगवान को अनुभव करने निकले हों तो हमें लाखों तो क्या इससे भी अधिक निराशाएँ प्राप्त होंगी, परन्तु साधक ऐसी निराशा में कभी डूब नहीं जाता है, परन्तु वह पुनः पुनः अपने बारे में सोचता है और अपने अंतःकरण में डूबकी मारता है और अपने मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार का पुनः पुनः संशोधन करता है और उसके ऐसी बुद्धि के कार्य में वह लग जाता है । **साधक को निराशा यह तो आगे बढ़ने के लिए उत्तम अवसर है । निराशा मिलने पर उसका उत्साह त्रिगुणित होता है और उसके हाथ-पैरों में नया उत्साह आता है, उसकी छाती हिंमत से फूल जाती है, उसके सिर में एक प्रकार की अधीरता आ जाती है और ध्येय को वरण करने की उसकी तमन्ना और प्रेरणा के पंख आते हैं । वह स्वयं भौंचक्का जाग जाता है और जागकर दौड़ता है ।**

मुझे अनेक बार ऐसी निराशाएँ हुई हैं, अनेक बार मन के भावों से संघर्ष हुआ है, परन्तु जिसे जहाँ जाना है, उसका उत्कट भान जहाँ जागा है, वैसे को मन से मिट जाना भी आ

सकता है । हमारे प्राण अनेक स्थानों में – अरे ! स्थान में क्यों ? कुछ कुछ **जीवों** में राग, मोह, ममता, आसक्ति में लपटाने की तैयारी में भी पड़ता है । स्थूल रूप से नहीं तो सूक्ष्म रूप से कभी लिपट भी जाता है, परन्तु प्रभुकृपा से हक्का-बक्का जाग जाता है और स्वयं न जाने के स्थान पर जाने के कारण उसके हृदय में पश्चात्ताप की गहरी अग्नि प्रकट होती है और वह पश्चात्ताप के कारण प्राण के प्रकृतिधर्म से अलग भी पड़ सकता है । इसलिए निराशा से यदि हम मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार हमें सचेतन न बनाते हों तो हमारी ऐसी हुई निराशा वह प्राण के प्राकृतिक स्वभाव की है, ऐसा समझें और मानें ।

चेतन में और चेतन से जागा हुआ **जीव** मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार का जैसे ज्ञानपूर्वक उपयोग करता है वैसे हम भी अपने को होती अनेक प्रकार की आशाएँ, इच्छाएँ, कामनाएँ, लालसाओं और ऐसे अनेक प्रकार के आंदोलनों को विवेक का उपयोग कर करके उसे ठिकाने लाने का यदि चाहें तो अवश्य यत्न कर सकेंगे ऐसा है । हृदय में यदि प्रेम का भाव जागता है तो उस प्रेम की भावना की ऊष्माओं में तरंग पर तरंग पैदा होती रहती हैं और ऐसी ऊष्माओं की तरंगों में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार पिघलकर शून्य हो जाते हैं । साधक के हृदय का प्रेमभाव वह एकात्मभाव उपजाने के लिए है । मन को भावना के विषय

में एकाग्र, केन्द्रित और तद्रुप बनाने के लिए वह जितना उपयोगी है, उतना दूसरा कोई काम का नहीं है । इसलिए निराशा यदि प्रेमभाव विषयक हो और ऐसा प्रेमभाव यदि जीवन के प्राकृतिक भाव से और दलदल से **जीव** को उठा न सके तो वह प्रेमभाव **जीव** कोटि का है ऐसा समझना ।

विचार और वर्तन का योग्य मेल खाता हो, तभी साधक साधना कर सकता है । उत्तरोत्तर साधना होते जाये तब विचार से व्यवहार का प्रमाण अधिक हो जाना चाहिए । और ऐसा करते करते व्यवहार हुआ करेगा, पर विचार उद्‌भव न हो ऐसी स्थिति हमें पैदा करनी है, यह जानना ।

आध्यात्मिक जीवन रसभरा है

आध्यात्मिक जीवन में इतना सारा रस है कि जो रस की कल्पना भी हमारी कल्पना नहीं कर पाती है । आध्यात्मिकता से जीवन शुष्क बनता है ऐसा कहनेवाले को आध्यात्मिकता का कुछ भी भान नहीं है, उस बात में वे बिलकुल मूर्ख और अज्ञानी हैं ऐसा समझना । सावधानी रखकर लगे रहने के तनदिही और सँभाल, हृदय का अदम्य और अपार उल्लास और उत्साह, अपार धीरज, अपार हिंमत और साहस आदि गुण हमें विकसित करने हैं, उसका भान तुम रखना । पत्र में रोज लिखूँ भी क्या ? तुम प्रश्न पूछते रहना । जिससे मुझे लिखने का सूझे ।

सद्‌गुरु की आर्त पुकार

संसार के कर्म के भँवर में कदाचित् डूब जाओ । संसार की भूलभुलैया तो ऐसी है कि अच्छे से अच्छे उसमें टूट जाते हैं । इस भूलभुलैया के खेल से जीतकर बाहर निकलनेवाला कोई विरला वीर होता है । तुम ऐसी वीर बनो और रहो इसे देखने का कितना अधिक दिल होगा ? सभी प्रसंगों से बाण की तरह आरपार निकलकर बाहर आये ऐसा देखने को मेरा हृदय सदा छटपटाता रहता है, तुम्हें ऐसी देखने को सदा मेरे मन की ऊष्मा रहा करती है । अपने जीवन के सद्‌वर्तन से हमारी शोभा है । तुम्हें मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार के अनेक प्रकार के खेलों में फँसी हुई देखकर हमें दिल में कँपकँपी भी होती है और तब तुम्हें हृदय की उमंग से याद कर करके वहाँ से भुलाने का भी करते हैं, पर हमारे कितने ही स्वजनों को उस समय हम पुकारा करते हैं, पर हमारे हृदय की आवाज कौन सुनेगा ? हम में से उस समय एक प्रकार की हाय भी निकलती है । उस हाय को तुम सुनना और जीवित होते रहना, वही तुम्हें प्रार्थना है । नामस्मरण खूब-खूब प्रेमभक्ति की उमंग से भरकर करती रहना । जीवन वह आनंद की मस्ती के लिए है, आक्रंद के लिए नहीं या बीती कहानी रोने के लिए नहीं है । इसलिए, साहसी मर्द बनना ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २३-३-१९५१

गजल

हृदय का भाव नहीं खाली, हृदय का भाव एकाग्र,
करे मन बुद्धि और प्राण अहं और चित्त को साथ ।
हृदय का भाव उमंग गहरा उल्लास जगाये,
मनन, चिंतन करवा कर जीवन में प्राण प्रेरित करे ।
जीवन क्या है ? जीवन क्या है ? सदा वह ध्यान प्रेरे,
पड़ा रहने न दे कहीं भी उठाकर चलाता है ।
जीवन के भान में, रास्ता चूक जाने पर, सुझाता है,
सुझाकर गहरे प्रेम से मंद कदम भरवाता है ।
सदा उत्तेजित करे, समेटे टोका वह करे मन को,
होते रहते सभी कर्म में जीवन समझ बतलाता है ।
प्रयत्न क्या कराता है ? कल्पना कर नहीं सकते हैं,
पथ में अंधेरा आच्छादित होते, उपाय बतलाता है ।
नजरवृत्ति जाती कहाँ कहाँ ! होती जहाँ इधरउधर वह,
सचमुच इंगित कदम वापिस सही रास्ते चढ़ाता हैं ।
रहो न क्यों पथ पर सीधे ? कहाँ कहाँ जाते हो भागे !
रहे न भान क्यों पूरा ? शरारती गति न्यारी !
कृपा करके हृदय जागों पथ पर रहो दृढ़ धीरज रखकर ।
कृपा करके सीधा रहना, कुढ़ंगा जीना व्यर्थ है,
मरण उससे भला ! विशेष, प्रभु-भान में जीना भला ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २४-३-१९५१

भावना का उपयोग होना चाहिए

तुम आश्रम में जाकर आयी हो और... भाई और... माँ को मिली, यह सारी बातें जानी हैं। तुम्हारे हृदय की भावना की ऊष्मा यदि हमें स्पर्श न कर सके तो हम पत्थर गिने जायेंगे। हृदय इतना तो प्लावित हो जाता है कि उसे भाषा में व्यक्त करना संभव नहीं है। तुम्हारी उस भावना की ऊष्मा हमें हिला सके ऐसी होने पर भी इससे हमें संतोष नहीं है। भावना यदि जीवननिर्माण को योग्य आकार न दे सके तो ऐसी भावना की ऊष्मा वह तो मौसिम बिना की बारिश जैसी है। भावना बिना जीवननिर्माण होना संभव नहीं। इसलिए जब भावना प्रकट हो तब तब वह हमें एकाग्र, केन्द्रित करे और एकांगी बनाये यह अत्यधिक आवश्यक है। हमारे किसी हृदय के प्रियजन के स्मरण से भावना प्रकट हो और वह भावना हमें प्रियजन के स्मरण में तल्लीन करे इतना हमारे लिए बस नहीं है, परन्तु ऐसी हृदय से प्रकट हुई स्मरणभावना किस हेतु के लिए है और उसका प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक कैसा उपयोग करना ऐसी कला यदि हम सीखते रहें तो वह यथार्थ है। भावना से पलपल जो **जीव** भीगा रहता है और जो **जीव** सभी प्रसंगों से प्रसंग का हेतु और उसके संबंधित ज्ञान समझकर स्वयं भावना से सराबोर होकर प्रसंग के साथ तादात्म्य रख रखकर और तथापि स्वयं वापिस उससे निराला है, ऐसा अनुभव से स्वयं हृदय में हृदय से दृढ़कर के रहता है, उस **जीव** को भावना द्वारा ऊँचे आना होता है।

आनंद से प्रसंग और कर्म स्वीकार करो

संसारव्यवहार में अनेक प्रकार के पसंद, नापसंद और अरुचि ऊपजाये ऐसे भी प्रसंग मिला करेंगे और उनमें हमारी कठिन परीक्षा भी होगी । वह यदि हमें अखरा, उसमें संताप हुआ या क्लेश हुआ या चिढ़ हुई या अकुलाहट हुई या दम घुटा तो जानना कि हम अभी कच्चे हैं । प्रसंग मिलने पर यदि उसका हृदयपूर्वक प्रेमभक्ति की भावना से स्वीकार हो तो एक प्रकार के आनंद की उमंग आती है, प्रत्यक्ष प्रभुप्रसादी मिलने पर कितना उत्साह होता है ! ऐसा हुलास ज्ञानपूर्वक वहाँ हमें दृढ़ करना है । हृदय में हृदय से ऐसे आनंद की उमंग यदि उभरती रह सकी तो प्रसंग का या प्रसंग में प्राप्त काम का भार हमें कुछ भी नहीं लगेगा । भार या बोझ लगे तो जानना कि कहीं दुःख या पश्चात्ताप की मानसिक जलन की भावना है । जिसके दिल में आनंद आता है, उसे तो एक प्रकार की धुन की मस्ती रहती है । ऐसी धुन के नशे में मनुष्य अबजों खांडी* काम कर डालता है ।

महात्मा गांधी राउन्ड टेबल कोन्फरन्स में लंदन गये, तब भाग्य से ही दो घण्टे सोते । श्री जवाहरलाल नेहरु भी भाग्य से ही चार घण्टे सोते हैं, ऐसा सुना है । ऐसे ऐसे उदाहरण हमें प्रेरणा देनेवाले हैं । स्थूल काम से जो **जीव** यदि डरा या जरा भी नाहिंमत हुआ तो वह आध्यात्मिक मार्ग में अधिक लाभ नहीं कर सकता है वह जानना । कर्म वह स्थूल कर्म नहीं है, किन्तु कर्म से करके भावना को जीवित रहा

---

* बीस (कच्चे) मन का एक तौल

करना बनता है और उससे भावना की निरन्तरता रहा करती है । और चेतनापूर्वक के स्मरण को (यदि हमारे में वैसी भावना प्रकट हुई हो तो) जीताजागता रखाने के लिए वह यत्न करता है ।

तुम्हें अपना एक उदाहरण दूँ । **संघ* में एक समय ऐसा था कि पैसों की तंगी थी । वेतन मिले ऐसा नहीं था । इसलिए डेढ़ घण्टे का ट्यूशन रखा । वह ट्यूशन करने रोज जाता था । इसके अलावा, आश्रम में रोज सवा घण्टे आश्रम की बड़ी बहनों को प्रौढ़ शिक्षा के वर्ग चलाता और अभी संघ की ऑफिस में चार लोग काम करते हैं, उतना काम अकेले हाथ करता था । सुबह के छ बजे से रात के ९ बजे तक काम चलता । तब दोपहर आराम लेने का न रहता था । चाय भी ऑफिस में दोपहर को माँ या भाभी दे जाते थे, परन्तु मेरे काम के प्रकार और तुम्हारे काम के प्रकार में अंतर है ।** तुम्हारे काम के प्रकार में अनेक व्यक्तिओं के साथ मिलाप हुआ करने से आमने-सामने वृत्तिओं की मुठभेड़ भी होना संभव है । मेरे काम में इतने प्रमाण में मुठभेड़ का संभव नहीं था । मुठभेड़ हो ऐसे संयोग पैदा होते थे, परन्तु उसे प्रभुकृपा से स्पर्श करने नहीं देता था । अत्यधिक मौन रखता था । अभी जितना बोलता हूँ वैसा तब नहीं बोलता था । मात्र चीख-पुकार और उछल-कूद करता था ।

संयुक्त कुटुंब में प्रसन्नता कैसे रहे ?

तुम्हें संसारव्यवहार में काम करना है और अनेक **जीवों** के साथ मिलना है और साथ मिलकर काम करना है । इससे

---

* हरिजन सेवक संघ, साबरमती

मानसिक टकराहट भी होने की बारी आये । टकराहट होते मन तंग हो जाता है और तंग होने से व्यग्रता आती है और उसमें से अशांति होती है और अशांत होने पर भावना और स्मरण उड़ जाते हैं । वैसी दशा होने से हम जीवन का धन बरबाद कर देते हैं, परन्तु उसका भान भाग्य से ही किसी **जीव** को होता है। इससे प्रसंग में या कर्म में या सभी के साथ में हमें हो उतनी शांति और तटस्थता विकसित करना सीखें और सभी के साथ हृदय का सद्भाव प्रेम और मानसिक उदारता रखें, यदि जीताजागता ज्ञानपूर्वक का प्रयास किया करें तो हमें उसमें से अत्यधिक सीखना मिलेगा । हमारी जात को उसमें बहुत घिसना पड़ेगा, पर वह घिसना ही यज्ञ है, तप है और तपश्चर्या है । यदि ऐसे घिसते जाने में हृदय में हृदय की प्रेमभक्ति की शुद्ध भावना झलकती रहे तो जीवन तो चमकारा की तरह उत्कृष्ट हो जाएगा ।

आध्यात्मिक जीवन केवल गगनविहारी नहीं है

विचार से प्रकट हुई समझ अलग है, भावना से प्रकट हुई समझ अलग है और वर्तन में रखी समझ अलग है । समझ समझ के प्रकार अलग अलग हैं। विचार, भावना और व्यवहार–इन तीनों का सुभेल हमें करना है । विचार कुछ हो, भावना कुछ हो और वर्तन कुछ हो ऐसा बेहूदा और कुढ़ंगा जीवन तो लोग जी रहे हैं । हमें ऐसा नहीं जीना है । हमें तो प्रभुकृपा से लोकोत्तर होना है । हमारी दृष्टि, वृत्ति और भावना तो गगनविहारी है । गगनविहारी होने पर भी उसके कदम तो वास्तविकता की भूमि पर हैं । हमें कोई शेखचिल्ली का खेल नहीं खेलना है । हमें तो जीवन में प्रेमज्ञानभक्ति की ठोसता लानी है और उस ठोसता से जीना है ।

माँ की उच्चतम भावना

तुम मेरी माँ बनो और ऐसा जीवन तुम जीओ तो उसके जैसा दूसरा सौभाग्य मेरे लिए कोई नहीं है । मैं सच्चा ज्ञानस्वरूप का बालक बनूँ और में तुम्हारा सच्चा बालक होऊँ उसका तुम्हें स्थूल प्रकार से प्रभुकृपा के बल द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव हो ऐसी भगवान को प्रार्थना है । आज कोई सच्चे स्वरूप में माँ नहीं बन सकता है । मेरे जैसे की माँ बनना यह अति कठिन है । माँ और बालक के बीच का प्रेमभाव नैसर्गिक है । हजारों व्यक्तिओं के बीच भी बालक माँ को आलिंगन करता है और बालक को गोद में लेते माँ को संकोच नहीं होता या शर्म नहीं आती है । हमारे जीवनव्यवहार में हमारी वैसी स्थिति होते हमारे रूपरंग किसी चेतन के प्रकार के हों तभी स्वाभाविक ज्ञान की दशा होती है । माँ का प्रेम बचपन में अनुभव नहीं किया है । बेचारी माँ को रोज दो मन अनाज पीसना और दलन ओखली में कूटना आदि काम होने से प्यार दिखाने का उसके पास समय ही कहाँ था ? पूरा आँचल देने का भी उसे समय की माँग रहती थी । महाकष्ट से जैसे तैसे उन्हें हमें पाला-पोषा है अथवा सचमुच कहें तो अपनेआप हम बड़े हो गये ।

माँ पर मुझे तो बहुत प्यार था । घर आते ही बहुत दूर से 'माँ' 'माँ' की बड़ी जोर से आवाज देता । आश्रम में 'माँ' के शब्दोच्चारण के गुँजन से पूरे आश्रम को गुंजा देता था । आखिर बड़े होने तक यानी सन् १९४० तक रात को तो

आश्रम के किसी एकांत स्थान में सो जाता, पर सुबह जल्दी उठकर घर में आकर उसके पास आकर लेट जाता था। माँ का प्यार हृदय से जाना नहीं है और अनुभव भी नहीं किया है। एक आध्यात्मिक 'माँ' थे, परन्तु उसका प्रेमभाव होने पर भी मिला नहीं है। इसलिए कोई सच्ची माँ बने तो उसका प्रेमभाव अब भी हम पाने को छटपटाते हैं। यदि तुम ऐसी माँ हो सको तो तुम्हारे और मेरे भाग्य खुल सकते हैं।

संत, संसार के सभी संबंध रख सकता है

ज्ञानपूर्वक का 'माँ' होना तो अतिशय कठिन है। तुम्हारे वे अरमान भगवान पूरा करें ऐसी उन्हें प्रार्थना है। जिस **जीव** को चेतन की दशा प्रकट हुई है, वह तो माँ भी बन सके, पत्नी भी बन सके, बालक भी हो सकता है और ऐसे अनेक प्रकार के संसार के संबंधवाले उन उन **जीवों** के साथ एक साथ हो सकता है।

साधक के प्रेम का आदर्शः निरपेक्ष और मुक्त

यह संसारव्यवहार में अनेक प्रकार के खून के नाते का संबंध है। उसमें माता, पति-पत्नी और बालक का भी संबंध किसी अनोखे प्रकार का है। खून का रिश्ता अर्थात् उस उस **जीव** में उस उस तरह घुलना और मिलना वह कहीं खटकना या हिचकना न अनुभव हो, तब वह रिश्ता हृदय का गिना जाता है। हमें तो रिश्ते के भाव से जिस तिस के साथ जीना है। हमें दूसरों की परवाह नहीं करनी है, हमें अपनी अत्यधिक परवाह करनी है, यह जानना।

भावना का प्रमाण

इस **जीव** का स्थूल रूप से आश्रम में आना हो, उस समय में एकांत लेने का तुम्हारा दिल है तो उस प्रकार की व्यवस्था हो सके वैसा वातावरण तुम्हें स्वयं पैदा करना है। हृदय में जागी हुई उत्कट प्रकार की भावना बड़े-बड़े चमत्कार कर सकती है। नदी में भारी बाढ़ आने पर किनारा या तट भी काट डालती है। उसी तरह भावना की हृदय में बाढ़ आते ही सभी प्रकार की मर्यादाएँ और बंधनों को वह दूर फेंक सकती है और हमें मुक्त स्वरूप में प्रकट कर सकती है। भावना का ऐसा प्रमाण है और लक्षण है और उस तरह हमें भावना को पहचानना है, समझना है और उस तरह वर्तन में लाकर भावना का प्राबल्य और महत्त्व जीवन में कितना कितना है, वह ज्ञानपूर्वक अनुभव करना है।

संसारी और आध्यात्मिक सगापन

सगापन का सूक्ष्म अर्थ स्थूलरूप से भावना से करके किसी के साथ जुड़ना वह। सगापन से हम अनेक के साथ जुड़े हुए हैं, परन्तु संसारव्यवहार के सगापन के भाव से हमारे हृदय और मन भावना से सराबोर हुए नहीं होते हैं, उलटा छिन्नभिन्न हुए और बिछुड़े हुए भी जानते होते हैं, इस प्रकार का सगापन इस **जीव** को क्लेश, संताप, त्रास और अशांति का परिणाम लानेवाला है। हमें ऐसा सगापन काम का नहीं है। मिला हुआ सगापन का संबंध भावना प्रकट कर उसमें वर्तन का सुमेल जगाकर हृदय की भावना को विस्तृत करने के लिए है। सकल ब्रह्मांड में अणुअणु में खेल रहे चेतन को हमें आत्मसात्

करना है । तो पहले हमें प्राप्त हुए सगापन के संबंध में उसे उस तरह ज्ञानभक्तिपूर्वक उतारना सीखना पड़ेगा ।

संसार का हेतु

संसार वह रेगिस्तान नहीं है, परन्तु साधनामय जीवन जीने के लिए तपोमय भूमिका है । संसार में हमें वृंदावन का अनुभव करना है और इस वृंदावन का अनुभव यदि हम संसार में नहीं कर सके तो ऊपर आकाश में नहीं कर सकते हैं । इसलिए संसार में जीवित रहकर जीवनध्येय को विकसित करने के लिए और उसे अनुभव करने के लिए तथा जिसमें और तिसमें उस ध्येय का सतत भान और ज्ञान दृढ़ कर करके हमें बरतना है । संसार वह साधना के लिए प्राप्त एक भूमिका है । **हमें संसार में रहना है पर संसारी के रूप में नहीं । दूसरों को हम संसारी लगे उसमें आपत्ति नहीं है, परन्तु हमारा मानस संसारी रूप में व्यवहार न कर जाये उस बारे में हमें सदा पल-पल चौकन्ना रहना है ।**

संतान के प्रति सच्चा हेत कैसा हो ?

पुत्री के लिए दिल में खूब प्रेम रखना है और उसकी जितनी अभिलाषाएँ योग्य हो, उसे हमें संतोष के साथ पूरी करनी हैं । कोई उसे अभ्यास के बारे में उसकी अज्ञानता के बारे में कहे तो हमे खराब नहीं लगाना है । सिद्धार्थ को मैं भी कहता हूँ, 'तुम्हें यह चाहिए, वह चाहिए और फलाना चाहिए, परन्तु अभ्यास के बारे में तुम ध्यान नहीं रखते हो ।' इसलिए तुम्हें भी वैसा सुनना मिले तो उसमें कोई

हर्षशोक नहीं हो । उसे जब पत्र लिखने का मन हो, तब लिखने देना और तुम पत्र लिख लो तब उस पत्र को लिफाके में बंद करना ।

जीवन में प्रेमभाव का हेतु

बालक के जीवन में रह जाती (प्यार की) कमी उसके जीवनविकास को अवरोधित करती है। बड़ा होने पर उसे उस बारे में कम आता है। बचपन में यदि मुझे माँ का अपार प्रेम मिला होता तो मुझे भावना प्रकट करने के लिए जो परिश्रम करना पड़ा उतना मुझे न करना पड़ता । इस **जीव** को फट से हृदय से और छटपटाहट से किसी **जीव** नहीं चाह सका है। प्रेम के भाव में जो एक प्रकार की मार्दवतायुक्त आतुरता है, वह आतुरता यदि मात्र आतुरता ही रहे तो वैसी आतुरता वंध्या है, परन्तु हृदय के प्रेमभाव का संबंध जीवन में अनेक प्रकार की कला पैदा करने के लिए है ।

जीवनकला योग्य व्यवहार से खिलती है

कला के रंग और प्रकार एकसमान नहीं होते हैं । जीवन की कला वनस्पति जैसी है । वनस्पति की मूल भूमिका सभी की हरे रंग की होने पर भी उसके प्रकार अलग-अलग होते हैं। उसकी सुगंध अलग-अलग होती है और उसके फल भी अलग-अलग होते हैं । वनस्पति का सौन्दर्य आँख, मन, हृदय को कोई एक प्रकार की मुग्धता प्रेरित करता है और मन को शांति प्राप्त कराकर अगाध नीरवता में डूबकी लगवाता है । ऐसे सौंदर्य के सामने टकटकी लगा लगाकर दिल को उँड़ेलकर यह पत्र लिख रहा हूँ । लम्बे-लम्बे पत्र

लिखने का भी क्या अर्थ होगा ? हजारों मन विचार से आधी छटाँक जितना वर्तन जीवनविकास के लिए उत्तम प्रकार का है । इसलिए हमारे लिए तो वही उत्तम ।

संत को संत ही समझ सकता है

मेरा व्यवहार तो बिलकुल भरोसे बिना का है । किसी भी समय में मेरे व्यवहार की नकल न करें । नकल यह मृत्यु है । व्यवहार का हेतु और ज्ञान हृदय में हृदय से प्रकट हो और उस तरह व्यवहार को समझे ऐसा चेतन में जागा हुआ **जीव** कोई भाग्य से ही होता है । **हमें चेतन की दृष्टि से समझनेवाले अभी तक तो कोई जाने नहीं है ।** एक पूज्यश्री 'गोदडिया महाराज' करके हैं । वे मुझे सच्ची तरह से जानते हैं और पहचानते हैं । प्राप्त स्वजनों ने अभी तक हमें हृदय से पूरा पहचाना नहीं है । यह हमारा दुर्भाग्य नहीं, परन्तु जिन्होंने संग करके हृदय से संग करना जाना नहीं है उनका दुर्भाग्य है ।

जीवन कब जीया कहलाएगा

चेतन में जागे हुए *जीव* को पहचानना, समझना और अनुभव करना - यह जैसे तैसे *जीव* का काम नहीं है । हृदय की ऐसी अंतर की आँख प्रकट हो जाय तो शायद पहचान सकते हैं और समझ सकते हैं । तुम्हारे अपने वातावरण में तुम किस तरह से आदर्श को जीकर बतलाओगी उस पर सब आधार है । यदि जीवन है तो उसकी दिशा, गति और प्राण भी है । उस तरह और वे लक्षण यदि हमारे जीवन की दिशा, गति और प्राण हृदय से ठोसरूप से और वास्तविक रूप से अनुभव कर सकते हों तो जीवन जीते हैं ऐसा गिना जाएगा ।

तुम्हारा पत्र किसी को पढ़वाता नहीं, यह जानना, पर हम किसी को भी नहीं पढ़वायेंगे इस तरह बंधे भी नहीं है, यह जानना । हमारे पत्रों में ऐसा छिपा तो कुछ नहीं है और हमें ऐसा संकोच रखने का कोई कारण नहीं है ।

• • •

कुंभकोणम् ॥ हरिः ॐ ॥ ता. २६-३-१९५१

सद्‌गुरु की स्थानकाल से पार जाती दृष्टि

तुम्हारे जीवन में होती हकीकत तुम्हारे पत्र यहाँ मिले उससे पहले वहाँ तुम्हें प्राप्त होते मेरे पत्रों से हूबहू मिलती जाती है, वैसा तुम्हें अनुभव से समझ में आया है । इससे, मुझ में तुम अमुक भावना का आरोपण करती हो तो वह भले । मुझ में रहा हुआ चेतनरूप तुम स्वयं प्रत्यक्ष हूबहू अनुभव करो तभी बात सच्ची ।

विधवा की दुर्दशा के कारण हिन्दुसमाज की दुर्दशा

तुम्हें दूसरा कोई कुछ भी कहे वह हमें लक्ष में नहीं रखना है । हिन्दू समाज में विधवा का जीवन परम लाचारी के स्थान पर है और समाज की जो अवनति हुई है, उसका यदि कोई एक खास कारण हो तो वह विधवा की समाज ने अवगणना की है और उससे विकास रूंधा है । इतना ही नहीं, पर उसके जीवन को बहुत बुरा कर दिया है । उसके लिए अनेक बार दिल में एक प्रकार का ऐसा तो प्रकोप उठता है कि न पूछो बात । विधवा के हृदय की गुबार और उसकी हाय किसी के भी दिल को पिघला सके ऐसी है । तथापि

अब भी हिन्दू समाज का हृदय इस दशा में भी जीवित है । किये हुए पाप का पश्चात्ताप अवश्य करेगा और इसमें से वह जागृत होगा । लोग 'अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' कहते हैं, ऐसा तो हम सभी अनेक बार कहते हैं ।

विधवा को लाचार नहीं होना चाहिए

जीवन को ऊर्ध्व ले जाना है, उस कारण से शून्य होने की हद तक की नम्रता विकसित करनी है, परन्तु उसके साथ-साथ जीवन की तेजस्विता हमें प्रकट होनी चाहिए । हमारे व्यवहार और भावना की इतनी तो असर प्रकट होनी चाहिए कि जिससे कोई भी हमारे साथ वाचा या व्यवहार से अवांछनीय न कर सके । जीवन की भावना जब प्रकट होने लगती है और उसका व्यवहार में अमल होता है तब विचार, वाणी और कर्म का सुमेल आता है और ऐसे सुमेल की छाया कोई छिपी नहीं रह सकती है । इसलिए मिलता या मिला हुआ कर्म यह तो भगवान की प्रसादी गिनकर स्वीकार करना है । इसमें दूसरे किसी के बारे में दिल दुःखी न होना और मन को तंग न होने दें, वह तो उत्तम बात है ।

काम और श्रम से लाभ

तुम्हारे शरीर का वजन बढ़ा उसके तो अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु तुम स्वयं प्रसन्नचित्त रहा करती हो, यह आनंद की बात है और शरीर से मेहनत करने में बहुत लाभ है । जिसे मन को ठिकाने रखना है और **साधनामय जीवन बिताना है, ऐसे *जीव* को जीवन में श्रम को अधिक महत्त्व देना पड़ेगा ।** जो **जीव** अकर्मण्य है ऐसा **जीव** साधना नहीं

कर सकता है, यह निश्चित बात है । कुछ वर्षों पहले एक भाई मेरे पास आथे थे । उन्हें स्वप्न में बहुत खराब विचार आया करते थे और स्वप्नदोष भी होता था । उसका उपाय उन्होंने मुझ से माँगा था । मैंने उन्हें कहा कि शरीर से इतना सारा श्रम करो कि शरीर थककर चूरचूर हो जाय । ऐसा होगा तभी तुम्हारे मन के विचार कुछ सुधरेंगे । इसलिए, इतना करके मेरे पास दूसरा साधन सीखने आना । खाली बैठा मन अत्यधिक विचार करता है और जब हम बहुत काम में लगे होते हैं, तब उतने प्रमाण में मन दौड़ता नहीं है । इससे हमें सतत काम में लगे रहना पड़ता है तो वह हमारे लिए अति लाभ की बात है और 'काम किया उसने वशीकरण किया ।' इस तरह सभी का काम करने से तुम्हारी ओर सभी का प्रेमभाव होगा और सभी को तुम प्यारी लगोगी और सभी की तुम्हारे लिए शुभ भावना होगी, यह कोई साधारण बात नहीं है ।

तुम्हारे अंतिम पत्र में कुछ निरंकुश के अक्षर होंगे, वे समझ में आये थे सही ? बाकी तो जब से... भाई मौन में गये हैं, तब से... भाई कलम के रूप में काम करते हैं, यह जानना ।

ग्लानि अर्थात् प्रभु का विस्मरण

जब जब मन उलझन में पड़े, निराश हो, अशक्त होता लगे या दुविधा हो या कोई कठिनाई लगे तो समझना कि हमारा मन हमारे प्रिय प्रभु के स्मरण में नहीं है । जिसे जीवन का मार्गदर्शक जानते हैं, उसकी स्मृति हृदय में रहती नहीं है ।

मन को नाथने के दो उपाय

मन उलटासीधा हुआ हो या मिथ्या प्रयत्न करता हो,

मन में किसी के लिए अशुभ और अन्यथापन के विचार आया करते हो, परन्तु हम दो वस्तुओं का यदि भरोसा रख सके तो मन अवश्य ठिकाने रहता है । **मैंने साधना आरंभ की १९२१ के आखिर में और १९२७ के मार्च में *इस* शरीर को सांप ने काटा । उसके बाद ही नामस्मरण अखंड जागृत होने लगा ।** वहाँ तक मन के साथ काम करना था और साधना में उसे लगाने के लिए कई कई उग्र प्रकार साधने भी पड़े थे । मन ऐसे ही बस में नहीं आता है । मुझ में यदि मेरे गुरुमहाराज सम्बन्धी उत्कट भावना और लगनी न होती तो वैसा हो सका होता कि नहीं इस बारे में मन में शंका है । शायद न ही हो सका होता । मैं उनके चेतनास्मरण को अपने हृदय में साथ रख रखकर जहाँ जहाँ घूमता और सभी कुछ किया करता ।

जब ऐसा चेतनास्मरण अखण्ड हो जाता है अथवा तो उसकी उत्कटता की तापमानयंत्र में होता है, तब मन शांत और मदद करनेवाला होता है । जब हम अपने में नहीं होते, उस समय ही मन की युक्ति सफल होती है । मन अपने असल स्वभाव में चला जाता है, क्योंकि मन की पकड़ ढीली हो जाती है । मन को एक की एक बात में हजार बार पकड़ कर रखें ऐसा कहना तो सरल है, पर वह पकड़ कर भी पकड़ा नहीं जा सकता है । और पकड़ने के लिए जो योग्य ज्ञानपूर्वक के बल की आवश्यकता रहती है, उसके लिए तो साधना की परम आवश्यकता है । मन को बार-बार समेट समेटकर, सरका सरकाकर हमें टोका करना पड़ता है । हमें पलपल जागृत रहना

पड़ता है और ऐसी जागृति तुम रखोगी तभी तुम्हारे में मेरे जीने की बारी आयेगी, यह निश्चित जानना ।

सद्‌गुरु लिखित बात के अतिरिक्त भी जानते हैं

मुझे पत्र में तुम लिखती हो उतने पर से ही सब मानता हूँ या समझता हूँ ऐसा तो कुछ भी नहीं है । तुम कितनी ही बार हो जाती भूल के लिए या दोष के लिए मन में मन से जो क्षमाप्रार्थना करती हो तो वैसी भाषा पत्र में नहीं लिख सकती यह समझ में आये ऐसा सत्य है ।

गुरु के साथ का चेतनासंबंध सर्वशक्तिमान है

परन्तु वैसी क्षमाप्रार्थना भी तुम्हारे अपने लिए ही है । उसमें मेरा कोई लेनादेना नहीं है । प्रभुकृपा से **इस जीव** में जो कुछ यदि चेतन का शऊर हो और उसके भाव को यदि तुम हृदय में कंजूस के धन की तरह सँभाल सँभालकर पलपल संग्रह कर रखो और जीता रखा करो तो तुम्हें मन तो क्या, पर कोई भी हरा सके नहीं यह निश्चित जानना । सगेसंबंधी के कोई बोल की **जीव**प्रकार की कुछ भी असर पैदा नहीं हो सके और संसार में होने पर भी संसार पर तैरती तुम रह सको वह भी निश्चित ।

भगवान का नामस्मरण सतत निरन्तर हुआ करे इसकी तुम बहुत सावधानी रखना और हृदय में खूब भक्ति प्रकट करते हुए एकाग्र भाव से उनका नाम जोर से लिया करना । इससे किसी को अच्छा लगे या खराब लगे इसका बहुत विचार नहीं करना है । कोई पूछे तो कहना कि मन विचार करते हुए रुके इसके लिए ऐसा करती हूँ ।

लाचार या उद्धत न हों

तुम्हारा विधवापन वह मेरा विधवापन है । इसमें तुम्हें लाचारी भोगने की थोड़ी भी जरूरत नहीं है । इससे तड़ाक और फड़ाक कह देना भी योग्य नहीं है, परन्तु किसी प्रकार से तुम मानसिक लाचारी भोगो तो मुझे मरने जैसा लगेगा । साधक अपने आप ही कोई भी एक बार हताश होता है, परन्तु कोई दूसरों से वह हताश नहीं होना चाहिए ।

विधवा-आदर्श और व्यवहार में

विधवा होने से सभी उसे टोकें, यह तो हमारे समाज की अवनति का कारण और लक्षण है । **विधवा यह तो सच्चे अर्थ या सच्चे रूप में—यदि भावना के आदर्श अनुसार देखने जायें तो—शुद्ध आचारविचार और पवित्रता की जीतीजागती त्यागमूर्ति है, परन्तु आज ऐसी कोई विधवा नजर नहीं आती है ।** अनेक प्रकार की विधवाएँ हैं । विधवा स्त्रिओं के भी अनाचार हैं । सधवा स्त्रिओं को अनाचार में ले जानेवाली भी विधवा होती हैं, ऐसा जाना है । कोई भी एक तो किसी को बदती भी नहीं होती । कोई भी एक ठिकाने बहुत सहन करती और अपमान सहती ऐसी विधवाएँ भी हैं । फिर, विधवाएँ अक्खड़ भी होती हैं, ऐसा देखा है और हमारी भावना बहुत ऊँचे प्रकार की नहीं होती है । इसलिए वाणी, वर्तन और व्यवहार तथा हृदय का मेल सभी के साथ होना चाहिए ऐसा तो कौन समझते होंगे ?

प्रेम के बिना दिव्य चेतना के अनुभव नहीं होते

तुम्हारे (बिन बोले हुए) विचार के आंदोलन **यह जीव** पकड़ लेता है ऐसा तुम मानती हो। यह हस्ताक्षर लिखनेवाले... भाई भी अनेक बार ऐसा ही कहते हैं। गिन न सकें उतनी बार उनके मन के विचारों को अपनेआप कहने का हुआ है और ऐसा दूसरों के बारे में भी, ऐसा यह हस्ताक्षर लिखनेवाले... भाई स्वयं मेरे विषय में कहते हैं। इससे, मेरा तुम्हें प्रश्न है कि यदि तुम्हें मेरे बारे में ऐसा ठोस सच्चा अनुभव हो तो तुम्हारा मन संपूर्ण अभी **इस जीव** में यदि चेतना जागी हुई हो तो उसमें क्यों पिघल नहीं गया या पिघल नहीं जाता ? अथवा जिस **जीव** के ऐसे चेतनरूप के बारे में हमें बहुत ही अनुभव हुए हों, तब भी उसे अन्याय हो ऐसा सोचें या मन से ऐसा सोचा जाय तो उस चेतनरूप के हुए अनुभव वे अनुभव नहीं हैं अथवा अनुभव हों तो उसे हम योग्य रूप से अनुभव पकड़ नहीं सके हैं या स्वीकार नहीं कर सके हैं।

जब हमारा मन संपूर्ण उसमें घुल जाये, उसके मय हो जाये तभी तुम लिखती हो वह सही गिन सके। तुम्हें यदि मेरे दुःख के बारे में कुछ भी दर्द होता हो और तुम्हें यदि मेरे प्रति सच्ची प्रेमभावना प्रकट हुई हो, तो प्रेम का तो स्वभाव यह है कि जिस कारण से अपने **प्रेम** के हृदय को दुःख हो वैसा मन होते मृत्यु आये तो विशेष, परन्तु मन को वैसा न होने देना। यदि ऐसा हृदय का सच्चा प्रेमभाव हो तो तो मन अपने आप उसमें पिघला करेगा और मुड़ा करेगा। प्रभुकृपा से मैं अवश्य ऐसा चाहता हूँ कि तुम्हारे हृदय का प्रेमभाव **इस जीव** के जागे

हुए चेतनरूप में सदा ही जागृत और जीवित हो जाय । **प्रेम** को दुःख होगा । **प्रेम** के हृदय को आघात पहुँचेगा, ऐसा भान यदि हमें रहे तो हमारा मन सरल ही रहेगा । हृदय में चेतना सम्बन्धी ऐसा भाव आये बिना एकात्मभाव कभी नहीं आ सकता है ।

हम तो बहुत बहुत याद करते हैं और याद करते ही रहते हैं । हमें भी मिलने का बहुत-बहुत मन है, पर 'मिलना' अर्थात् क्या, वह तो तुम्हें समझाया है ।

गुरु अर्थात् शरीर नहीं पर 'भाव'

त्राटक के समय प्रभुशक्ति-अवतरण के लिए तुम खूब प्रार्थना करती थी, उस समये तुम्हें जो कुछ सत्य जानने को मिला है, वह बिलकुल सत्य है - 'उसके साथ प्रेमसंबंध बांधो ।' उस संबंध बाँधने के लिए क्या क्या करना ? और तुरन्त ही तुम्हें ऐसा हृदय में हुआ कि 'मोटा' के साथ कौन-सा सगापन नहीं है ? **घर के नौकर से लेकर घर के बुजुर्ग सभी में 'मोटा' ही है ऐसा जो तुम्हें सूझा है, वह बिलकुल योग्य है ।** फिर, नीचे अनुसार तुम लिखती हो -

'जो कोई कहता है, वह आप ही कहते हो ऐसा लगना चाहिए । मेरे द्वारा किसी को दुःख हो वह मैंने आपको ही दुःख दिया समान है । मुझे दूसरों के लिए अन्यथा विचार आयें, वह भी आपके लिए ही वह विचार किया है ऐसा मानूँगी । आपके किस स्वरूप को दुःख दूँगी वह आपको लिख दूँगी ।

ऐसी भावदृष्टि का परिणाम

इस अनुसार हृदय से वर्तन करती रहोगी तो पूरानी..... में से तुम नयी.... जन्मोगी, यह निश्चित जानना । तुम्हारा स्थान

अपने कुटुंब में गौरवभरा बने, यह देखने की अभिलाषा हमें तो अत्यधिक है । तुम्हारे सम्बन्ध में मात्र मान से नहीं, परन्तु प्रेम और आदर से भी सभी बरते ऐसा हो तब हमारा हृदय आनंद से छलकेगा ।

सद्‌गुरु का ताप सहन करना कठिन है

प्रिय बहन ! तुम्हें धमकाने, मारने और कान पकड़ने तक का तुम ने मुझे अधिकार दिया है । ऐसा करके तुमने अपने हाथ काटकर दे दिये हैं । अब, तुझे मारने का कभी हो तो तुम मेरा दोष नहीं निकाल सकती । यदि **यह शरीर** से अधिक जीना हुआ तो मारने का पागलपन जरूर मुझ में आयेगा, यह निश्चित सत्य है । ऐसे समय में उसका वैसा सब सहना यह अति कठिन हो जायेगा यह भी निश्चित सत्य है । क्योंकि सभी को खाली खाली मुझ से लगे रहना है । किसी को अभी जीवन के बारे में तमन्ना प्रकट होती होली होकर भभकना हो ऐसा अनुभव करता नहीं ।

साधक से गुरु को सहना पड़ता है

साधना में चेतना के लिए जो प्रेमभक्ति और ज्ञान की समझ चाहिए वह संपूर्ण अभी प्रकट नहीं हुए हैं और मानसिक चोट तो बहुत लगती रहती है । **कितने ही स्वजन प्रतिदिन कितनी ही बार मेरा खून करते होंगे !** यह ठोस सत्य है । विचार करने के लिए यह तुम्हें लिख रहा हूँ ।

साधक अर्थात् हिंमत की मूर्ति

मुझे किसी का कोई भार लगता नहीं है, परन्तु जीवन को धूल में रगड़ना छोड़कर अनचीता जागकर पलपल जीवन को जीवन की भावना में प्रकट करना है । ऐसा जीवन तुम जीओ तो मेरे भाग्य खुल जायें । हजारों व्यक्तिओं की भीड़ में तुम्हें आवाज दे देकर पुकारने और पास लेने में मुझे थोड़ा भी संकोच नहीं हो और मुझे तो ऐसे भी नहीं होता है । तुम्हें मेरी माँ होना है न ? तो पहले तो अपने शरीर और मन को पवित्र से पवित्र करना और रखना । हजारों व्यक्तियों के बीच माँ बालक को गोदी में उठाती है, चूम लेती है और हृदय में आनंद आनंद से मुस्कराती है । यदि तुम्हारे में वैसी ताकत हो और भावना हो तो मेरे तुम्हें हृदय से अभिनंदन हैं और तुम्हारी वैसी प्रेमज्ञानभक्तियुक्त हिंमत के लिए धन्यवाद भी हैं । यदि वैसा न हो तो माँ होने की वह बात गलत है । तुम लिखती हो –

'मेरे जीवन के भोग पर भी आपको खुश करना है, वह निश्चित । इसके लिए बहुत सहन करना पड़ेगा यह मुझे समझ आता है, पर मुझे तो तुम्हारे संतप्त हृदय को शांति देनी है यह निश्चित है ।'

भावना और हकीकत में बहुत फर्क है

सचमुच में यदि तुम वैसा कर सकोगी तो हम दोनों परस्पर परम भाग्यशाली हैं ऐसा अनुभव होगा । जगत को मैं उँगली के संकेत से बता सकूँगा कि यहाँ हृदय का प्रेम कर जाननेवाला कोई भी एक **जीव** पड़ा है सही । भावना के आवेश से ऊपर अनुसार लिख देना बिलकुल सरल है, परन्तु यथार्थ में ऐसा होना और बनना यह तो करें तब पता चले ।

कसौटी में गुरु चेतनाभान रहना चाहिए

तुम्हारे में जो भावना है, मेरे लिए जो भावना है, वह तुम्हारे पत्रों में दिखती होती है, परन्तु हृदय की परीक्षा हुए बिना मेरे गले में कुछ उतरता नहीं है । जीवन को कसौटी पर चढाये बिना सही जाँच होती नहीं है, सही अँकाई भी होती नहीं और सही मूल्यांकन भी नहीं होता है । संसारव्यवहार में प्राप्त होते प्रसंग वे कसौटी है । उन प्रसंगों में यदि तुम तैरती रहो, जीवित रहो और पलपल चेतनापूर्वक का प्रेमभक्ति से स्मरण हुआ करे और तुम्हारा मन, हृदय, चित्त, प्राण और अहम् **इस जीव** की चेतना में लगा रहे ऐसा तुम्हें जीताजागता प्रत्यक्ष अनुभव हो, तब तुम संतप्त **जीव** को शांति दे सकती हो, इसके बिना नहीं । इसलिए, कृपा करके यदि सच्चा प्रेमभाव हो तो इतना काम करना । तो जगत को तुम उत्तम दृष्टांतरूप सिद्ध हो सकोगी । प्राप्त स्वजनों को प्रेरणारूप बन सको । तुम्हारा स्थान मेरे हृदय में अनोखा है । तुम्हारे मन मैं जैसे सकल हूँ वैसे मेरे मन तुम सकल हो, ऐसा मैं नहीं कह दूँ । तुम क्या हो, वह मेरे हृदय में है ।

गुरु के स्थूल संपर्क का लाभ

मिलने की बात के बारे का पत्र तुम्हें अच्छा लगा, यह आनंद की बात है । हृदय की भावना की उत्कटता से जीतीजागती हो और उसका उपयोग हुआ करता हो, उस समय स्थूल मिलना यह भी साधक के लिए विकासात्मक हो सकता है । रोम रोम से एक प्रकार का सूक्ष्म प्रवाह बहता

होता है । उस प्रवाह का वातावरण, संपर्क और स्पर्श और उसका अनुभव लेने की हृदय की कला आज हमारे इस काल में कोई भाग्य से ही जानता है । पहले हमारे में गले मिलने की परम्परा थी और अभी कितने ही लोग ऐसा करते हैं । उसके पीछे गंभीर अर्थ ओर समझ रहे हुए हैं । हृदय को एक करने की साधना का वह सूक्ष्म ढंग है । हृदय में निकट से निकट आने के लिए भावना से प्रेरित प्रेमभक्ति से सराबोर होकर मिलने के हेतु के ज्ञान को प्रकट कर मिलने का हृदय-हृदय से हो तो वह योग्य भी है ।

सर्वत्र गुरुदर्शन अनुभव करो

तुम लिखती हो कि 'सुबह से रात तक आपका काम करूँ, पर अब वहाँ आपके देह के पास काम करने से अच्छा घर में आपके स्वरूपों के पास ही काम करना ऐसा मुझे लगता है और समझ आता है ।' त्राटक से तुम्हें ऐसा जो समझ आया है उस अनुसार ज्ञानभक्तिपूर्वक यदि तुम वर्तन किया करोगी तो उसमें कुछ गलत नहीं है । इतना ही नही, परन्तु वह उत्तमोत्तम है ।

सद्‌गुरु की आतुरता

चूल्हा सुलगाने की हकीकत जानी, पढ़कर बहुत आनंद हुआ । काम करते करते तुम्हारे हृदय में रोम रोम आनंद प्रकट हो तो मुझे वहाँ अंतर में चारों तरफ से चैन होगी । तेरे द्वारा मुझे शोभना है और तुम से जीना भी है । तुम मेरा मुकुट बनो और मेरा हृदय बनो ऐसा तुम जीकर बतलाओ तो इस सृष्टि

पर भगवान की जो आनंदलीला है, उसमें यह भी एक लीला है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिले हुए स्वजनों को भी हो । साधकों साधकों में भी सूक्ष्म प्रकार की ईर्ष्या, डाह और स्पर्धा रहा करती है । कोई एकदूसरे से बढ़कर हो या गिना जाये कि मैं कैसे किसी को वैसा मानुँ तब साधकों के मन में कुछ क्या होता है, वैसा भी अनुभव होता है, परंतु हमें तो सभी को एकसमान भाव से चाहना है । हमारे लिए तो कोई बड़ा नहीं है और कोई छोटा नहीं है । एक ही चेतन के हम सब खिलौने हैं । यज्ञभावना से प्रेरित होकर जीवनविकास के हेतु के ज्ञानभान के साथ मुझ पर तुम अत्यधिक भाव प्रकट करना । रात्रि में कोई कोई समय भड़ककर भी तुम्हें देखता हूँ । हृदय की आतुरता तुम सच्ची करना ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २७-३-१९५१

संयुक्त कुटुंब के लाभ कैसे मिले ?

सभी बातों में लाभ और हानि साथ साथ ही होते हैं । एकदूसरे को अलग नहीं कर सकते हैं । उस तरह संयुक्त कुटुंब में सहनशीलता, धीरज, शांति, उदारता, मतसहिष्णुता, सहानुभूति आदि गुण विकासित करने के बहुत बहुत मौके मिलते हैं । जैसी दृष्टि, वृत्ति और भाव वैसा वैसा सार हमारा मन निकाला करेगा । जिसका मन कुछ सहन न कर सके ऐसा हो, अधीरतावाला हो, चंचल हो, ईर्ष्यालु हो, चिड़चिड़ा हो, अभिमानी हो और ऐसे नकारात्मक स्वभाववाला हो उसे संसारव्यवहार से दर्शन और अनुभव होंगे, परन्तु संसारव्यवहार

से स्वयं जैसा सीखना है, वैसा सीखने का उस उस समय उसका दिल हुआ करता होगा और उस उस पल में वैसे प्रमाण में और उस तरह ज्ञानयुक्त जागृत हुआ होगा तो ऐसे **जीव** को उस प्रकार की शिक्षा और भावना मिला करेगी । जैसा मन वैसी सृष्टि । इससे बड़ा आधार मन के ऊपर है । मन जिस तरह शिक्षित हुआ होगा अथवा विकसित होगा उस अनुसार हमें संसारव्यवहार के प्रसंगों में और जीवित व्यक्तिओं के संपर्क और संबंध में मन को वैसा वैसा स्पर्श हुआ करेगा । मन को किस तरह के स्पर्श की हवा लगती है, उसका आधार हमारी अपनी ही मन की स्थिति पर रहा हुआ है, इस सत्य को पुनः पुनः हमें चिंतन करना है, उसका आधार हमारी अपनी ही मन की स्थिति पर है । इस सत्य को पुनः पुनः हमें चिंतन करना है और मन में गहरे उतारना है । मन को उस उस तरह से जीता किया करना है ।

साधना किसलिए ?

जिसमें प्रवेश करना हो, उसमें मन तो देहली के स्थान पर है, किन्तु वह देहली न लाँघकर यदि **जीव**दशा में रहना हो और उसमें सड़ना हो और भटकना हो तो कुछ लगता नहीं है । उसमें तो बस लुढ़कते ही जा सकते हैं । पानी को नीचे जाने में कोई दिक्कत नहीं, परन्तु पानी को ऊँचे स्थान पर ले जाना हो तो बिजली या भाप के यंत्र की शक्ति काम में लगानी पड़ती है । उस तरह मन को यदि ऊँचे मार्ग पर ले जाना हो तो वह ऐसे के ऐसे नहीं जायेगा । उसे वैसा करने के लिए शक्ति काम में लगानी पड़ेगी ।

साधना के प्रकार

वह शक्ति लाये कहाँ से ? ऐसी शक्ति प्राप्त करने के लिए साधना के अनेक प्रकार हैं। एक तो प्रथम ऊँचे जाने की हमारी हृदय की सचमुच उत्कट से उत्कट इच्छा और तैयारी हो, दूसरा, मन को ऊँचे मार्ग पर ले जाने उस सम्बन्ध के मनन, चिंतन और निदिध्यासन में रख सकने का प्रामाणिक संपूर्ण प्रयत्न हो और तीसरा मार्ग यदि हृदय में लगनी और रस लगे हुए हों, हिंमत और साहस हो और वैसी हृदय की उत्साहभरी नैसर्गिक उमंग चेतनवान हो तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता ?

अंतर की *शक्ति* मन को साधन बनाये

यदि चाहें तो अंतर में ऐसी अथाह शक्ति पड़ी हुई है। उसे यदि उच्च मार्ग के उपयोग में ज्ञानपूर्वक लिया करें तो कुछ भी असंभव नहीं है। पानी हो वह अपना भाग निभाता है। पानी का स्वभाव नीचे बहने का और नमी उत्पन्न करने का है, परंतु पानी को भापरूप और उसमें से भी वायुरूप बना दें तो पानी, पानी नहीं रहता है और पानी के जो प्राकृतिक गुण है, वे भी अदृश्य हो जाते हैं। उस तरह मन के बारे में समझना है। मन तो ऐसे भी जा सकता है और वैसे भी जा सकता है। इसलिए, यदि हम जीवन के ध्येय में संपूर्ण सावधान जाग पड़े हुए होकर रहा करेंगे तो अमुक काल के बाद मन जितनी मदद देता है, उतनी मदद दूसरा कोई नहीं देता। **इस** मार्ग में मन को शिक्षित करने में समता और तटस्थतापूर्वक की बुद्धि का अत्यधिक उपयोग किया करना है। समतायुक्त जो बुद्धि हुई है, उसके द्वारा करके

आ पड़ते प्रसंग, उलझन, कठिनाइयाँ, अशांति आदि का हल खोजने का प्रयत्न करना है । जो जीता है, वह मरता नहीं है अथवा तो जो जागता है, वह मरता नहीं है और जो सोता है, वह मरता है । **यहाँ 'सोता है', यानी जिसका मन अपने जीवन के ध्येय में संपूर्ण डूबा हुआ और जागृत नहीं है उस अर्थ में है ।**

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २८-३-१९५१

पृथ्वी के रस की तरह व्याप्त हुआ चेतन

पृथ्वी के गर्भ में अनेक प्रकार के रस हैं । उसमें से अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ बनते हैं । पृथ्वी में जो रस है और वनस्पति जो रस चूसती है, वह रस तो एक ही प्रकार का है, पर नीम में उसका वह रस कड़वा होगा, आँवले में कसेला, इमली में खट्टा, केले में मीठा और मिर्च में तीखा और समुद्री वनस्पति में (मोरस* में) खारा होगा । ऐसे अनेक वनस्पतियों में एक का एक रस अनेक प्रकार का होता है और उनके फल भी अलग अलग, उसका स्वाद भी अलग अलग । प्रत्येक वनस्पति का हरापन सा रंग यानी प्रत्येक का व्यक्त होनापन एक रंग का है, परन्तु उसके साथ प्रत्येक का आकार और प्रकार अलग अलग रहता है । इसलिए असली जो रस है, वह तो उसके बीज के अनुसार आकार, प्रकार, स्वाद, फल आदि उपज करता है । वैसी ही तरह सभी में रहा हुआ चेतन एक प्रकार का है, परन्तु सभी के बीज अलग अलग

* समुद्र किनारे होती एक प्रकार की भाजी

हैं । इससे उनके आकार, प्रकार, संस्कार, संस्कृति, भावना आदि भी अलग अलग प्रकार के हैं । हमें मूल रस को पकड़ना है, वह निश्चित कर लेना चाहिए ।

निश्चित करना यानी क्या ?

निश्चित उसका नाम किया कहलाय कि जिसमें फिर से कुछ विचार करने जैसा ही न हो । घर को ठीक से ताला मारा हो तो दरवाजा खुल जाने का संभव नहीं है । उस तरह हमने यदि निश्चित किया हो तो उस ओर हमारी दृष्टि, वृत्ति और भाव मुड़ने चाहिए । उसका नाम निश्चित किया कहलायेगा । बोले हुए शब्द में भी बहुत अर्थ हैं । अनेक लोग एकदम कह देते हैं कि निश्चित किया है, पर निश्चित किया है अर्थात् क्या ? इसका अर्थ, भाव विस्तार, उनके हृदय में जागा हुआ नहीं होता । यदि हम निश्चित करें तो उसके बाद मरणांत उसे पाले और ऐसा करना हो तो ही कृपा करके हमारा संग करना । नहीं तो हमें नाहक का त्रास होगा ।

गंभीर चेतावनी

हम तुम्हें सच कहते है कि हमें अनेक ओर से बहुत त्रास होता है और तुम्हारी ओर से त्रास बढ़े ऐसा नहीं चाहते । जो कुछ करें, बोलें, सोचें उसका संपूर्ण अर्थ समझकर बोलें या लिखें तो वह योग्य होगा । नहीं तो फिर गधे को सोंटें पड़े ऐसे सोंटें पड़ेंगे । वह सहने की ताकत न हो और फिर मन में कुछ कुछ हो तो यह सब हम को भारी पड़ जायेगा । इसलिए, यहा तो बहुत समझकर बरतना है । कोई ठिकाना नहीं है । कैसा भी बोलें, चलें और बरतें ऐसों का संग क्या

उपयोग का ? पहले से ही सच बात कर दें ऐसा हम तो जानते हैं। हम में कोई विश्वसनीय आचरण नहीं है। हम महान नहीं हैं। महान तो एक भगवान ही है, वही सच्चा है।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २९-३-१९५१

लिपटने का अर्थ

'हमारा प्राण अनेक स्थानों में अरे ! स्थानों में क्यों ? कुछ कुछ **जीव** में राग, मोह, ममता, आसक्ति में लिपटने की तैयारी में पड़ते हैं। स्थूल रूप से नहीं तो सूक्ष्म रूप से कभी लिपट भी जाते हैं।' तो सूक्ष्म रूप से **जीव** कहाँ लिपटा है और वह परखने का तरीका क्या है, ऐसा तुमने पूछाया है। एक की एक बात में जिस जिसके विचार बारबार आया करे, उस उसमें **जीव** लिपटा हुआ है, ऐसा समझना।

संत के प्रति प्रेम आसक्ति नहीं है

'किसी संतात्मा में जीवनविकास के लिए उसके ज्ञानभान के साथ यदि खूब भावना पैदा होती हो तो उसे आसक्ति गिने ?' यदि सचमुच वह संतात्मा हो और उसके बारे में जीवनविकास के हेतु के ज्ञानभानवाली खूब भावना जन्मती हो तो वह **जीव**स्वभाव की आसक्ति नहीं है। जिस प्रकार के विषय में मन चिपकता है, उस प्रकार का मन बनता है। इसलिए मन का चिपकने का विषय या वस्तु जो कोई आत्मा हो और वह उच्च, ऊर्ध्व प्रकार के हो और उसमें अनेक भाव जन्म लेते हों तो वह आसक्ति नहीं है। जिस प्रकार का राग उस प्रकार का मननचिंतन।

यदि हमारा मननचिंतन ऊर्ध्व प्रकार का होता रहता हम अनुभव करें तो उस प्रकार का राग जीवन को ऊँचे ले जाय। मन को उस प्रकार की भावना उच्च गति में ले जानेवाली सिद्ध होती है। अनेक संतभक्तों ने भगवान को उसके चरणकमल में, हृदय में हृदय से हृदय को आसक्त बनाने के लिए प्रार्थना की हुई है। 'चरणकमल की आसक्ति' यह तो वैष्णव संप्रदाय की एक लाक्षणिक साधना है। ऐसे उच्च प्रकार की 'आसक्ति' यह तो वहाँ आसक्ति शब्द है इतना ही मात्र। बाकी, आसक्ति का जो प्रचलित अर्थ है, वह अर्थ वहाँ नहीं गिनना है। मूल अर्थ तो आसक्त अर्थात् चिपक गया हुआ। इसलिए मन, मनोभाव, वृत्ति भावना आदि या तो **जीव**स्वभाव के विषय में चिपक जाये या आत्मा के विषय में चिपक जाये। अब यदि संतात्मा में जीतीजागती ज्ञानपूर्वक की भावना और मनोभाव अत्यधिक पैदा हो और उसमें आसक्ति पाये तो हमारा मन भी उस प्रकार का बने।

योग्य आसक्ति कैसे परखें

हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार उसमें सचमुच ढंग से संपूर्ण आसक्ति प्राप्त हैं कि नहीं वह हमें समता और तटस्थतापूर्वक संपूर्ण समझना है। नहीं तो हम अज्ञान और भ्रम में पड़ जायेंगे। दूसरा इसमें यह समझना है कि जिसमें मन, वृत्ति, मनोभाव, भावना आदि आसक्ति पाये हैं, वे सचमुच संतात्मा हैं कि नहीं वह भी हृदय से जानना रहता है।

संत की परख

संतात्मा की हमें क्या परख हो ? परंतु जिसके बारे में हमें मन में संपूर्ण विश्वास और भरोसा हो और जिसके बारे

में श्रद्धाविश्वास पूर्ण पक्के हुए हो और जिसके बारे में मन कुछ डगमग न अनुभव करता हो और उसके द्वारा हम सतत ऊर्ध्वगामी हुआ करते हों और रहा करते हों और हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् जीवन के ध्येय के चिंतन में सतत रचनात्मक रूप से बहा करते हों तो वेसी जीवात्मा जगत के इतर जनों के ख्याल में भले न हो, ख्याति में न हो या दूसरे कोई उसे संतात्मा न गिन सकते हो, पर हमारे मन तो वह जरूर संतात्मा है ।

प्रतिदिन रात को सोने से पहले एक एक पत्र पढ़ने का जो रखा है, वह योग्य है । प्रत्येक महीने को दूसरी तारीख को ढाई बजे से साढ़े चार बजे तक मौन रखकर नामस्मरण करने में वह समय बिताना ऐसा निश्चित किया है, वह भी बिलकुल योग्य है । रात को भी जागती हो वहाँ तक भगवान का नामस्मरण ही किया करना ।

सुमेल के साथ साधना में एकत्र रहें

दूसरे किसी के साथ आवश्यक काम प्रसंग में गये हों और वह आवश्यक काम पूरा हो जाय और वह **जीव** बिनजरूरी काम में लगा रहे तो उसे खराब न लगे उस तरह से हम उसे बतला दें, परन्तु यदि कोई बुजुर्ग हो तो धीरज रखनी पड़े । स्पष्ट रूप से उन्हें नहीं कह सकते हैं । इससे लाचार होकर ही यदि जाना रख सके तो वह सर्वश्रेष्ठ हकीकत है । हमारे आगे-पीछेवाले को लग जाना चाहिए कि यह लड़की तो एक पल भी व्यर्थ नहीं बिता सकेगी । इसलिए अपने साथ उसे लेना व्यर्थ है । हमारी जीवन बिताने की रीति और उसकी भावना वह सभी का पता आगे-पीछेवाले को चले बिना नहीं रहेगा ।

लेखक ने सुमेल किस तरह सँभाला

नडियाद में मार्ग पर आतेजाते खूब जोर से मैं तो मस्त होकर भजन गाया करता । रास्ते में रिश्तेदारों के भी घर आते थे । मासी, मामा दूसरे अनेक संबंधी भी मिले, परन्तु मुझे कोई रोककर बुलाते नहीं । उन्हें मैं देखता तो भजन की मस्ती में भी अपने दो हाथ जोड़कर सिर नमाकर प्रणाम करूँ परन्तु कभी खड़ा न रहता था ।

सरलता मिलने की शर्त

इससे हमारी भावना की उत्कटता और व्यर्थ समय न खोने की तमन्ना और हमारे व्यवहार की सरलता और नम्रता और सभी के प्रति सद्‌भाव वह यदि सचमुच में जाग गये हों तो हमें अधिक कुछ यत्न नहीं करना पड़ता और हो तो हम तो जीवित बैठे हैं न ? यदि जागते रहते हों तो हमारे जीवन की भावना के विषय में मन को जीवित रखने हम प्रयत्नपूर्वक संघर्ष करेंगे और ऐसे श्रीभगवान की कृपा से सब कुछ ठीक हुआ करेगा । तेजस्वी **जीव** को कोई फड़फड़ा नहीं सकता । डरपोक को ही जो भी कोई डरा सकते हैं । यदि हमें जीना है तो हमें कौन मार सकता है ? इसलिए, जीवित रहने का जीताजागता प्रामाणिक प्रयत्न किया करने में मनहृदय का सब पुरुषार्थ हमें लगा देना है, यह जानना ।

ध्येयसिद्धि के लिए आवश्यक गुण

स्त्री शरीरवाला तुम्हारा **जीव** होने पर भी तुम मर्द बन सकती हो । तुम्हें मर्द हुई देखने की हृदय की अभिलाषा को

तुम सफल करोगी ऐसी हृदय में आशा रख रखकर मैं जी रहा हूँ। तुम में मनोभाव की बाढ़ है। भावना का जोश है, पर अभी एक के एक विषय में चिपके रहने की पूरी होशियारी, सावधानी तनदिही, उत्साह, हिम्मत, साहस, धीरज, शांति आदि सब गुण बहुत बड़े प्रमाण में हमें विकसित करने हैं। जीवन के ध्येय बिना दूसरा कोई भी विचार न दृष्टिगत हो, ऐसा हमें होना है। तभी हमारा काम दृढ़ हो सकेगा, इसका तुम ध्यान रखना।

गुरु की मदद कैसे मिले ?

'यह कोई मिट्टी का पुतला नहीं है, परन्तु चेतन का लाक्षणिक अंग है' ऐसी भावना ज्ञानपूर्वक की दृढ़ कर करके उसका मनन, चिंतन यदि हुआ करे और उस शक्ति यदि उपयोग में लिया करें तो उसकी मदद मिलनेवाली ही है, ऐसा निश्चित जानना। ऐसे चारपाँच बार तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव हो तो उसमें यदि चेतनशक्ति हो तो उसकी मदद लेने की कला की खबर तुम्हें हृदय में अपनेआप होती जायेगी, यह निश्चित जानना।

'त्राटक समय दौरान परमात्मा' के चरणकमल का ध्यान कर सकते हैं सही ?'

त्राटक हो जाने के बाद में अवश्य ऐसा ध्यान कर सकते हैं। ता. २१-३-१९५१ के पत्र में जो पंक्ति तुम्हें उकली नहीं वह निम्न प्रकार से है -

गुरु को साधक को सहायरूप बनना

'हम में उस समय एक प्रकार की हाय भी निकलती है। उस हाय को तुम सुनना और जीवित होते रहना यही तुम्हें प्रार्थना

है ।' वह असली पत्र तुम्हें वापिस भेजा है । तुम पलपल जीवन के ध्येय में जीवित रहो और तुम्हें हम प्रत्यक्ष हों ऐसे अनुभव हो ऐसी हमारे हृदय की उत्कट अभिलाषा है । ता. २-२-१९५१ के दिन से तुम जीवनविकास के हेतु के लिए हमारे साथ जुड़ी हो, यह बात सत्य है । प्रभुकृपा से **इस जीव** के साथ जुड़े स्वजनों का दिल वे साधना में डूब गये हुए न होने पर भी **इस जीव** में रहते हैं, इसका कारण भी कोई सूक्ष्म प्रकार की विधि है । इसलिए इस बात को मन हृदयपूर्वक का जितना प्राणवान पुरुषार्थ उसमें हुआ करे उतना उसमें वृद्धि होती रहेगी यह जानना ।

साधना का अर्थ

जैसे होना है, उस अनुसार की, हमारे हृदय की धारणा और मन की भावना सतत निरन्तर रहा करनी चाहिए और वह व्यावहारिक कर्म में प्रकट होनी चाहिए । किसी भी **जीव** के लिए उत्तम प्रकार की भावना रखना यह रचनात्मक कदम है । मन को कोई टेढ़ा लगे, खड़ा लगे, हितकर्ता लगे या दूसरे प्रकार का लगे फिर भी सँभल सँभलकर रोक रोककर मन को उनके बारे में सद्‌भावनावाला वैसा करते करते साथ में भगवान का नामस्मरण और उसके साथ साथ प्रेमभक्ति विकसित करने को हमें सतत जागते रहना है । **कैसा होना है और उसके लिए योग्य होने में क्या कमियाँ हैं, उसे ख्याल में रखकर उन कामियों को टालते रहना उसका नाम साधना । जीव** अपने आप **शिव** नहीं हो सकता है । यद्यपि **जीव** स्वयं असली स्वरूप में **शिव** है, किन्तु **जीव**रूप में आ पड़ा है ।

इससे हमें मन को वैसा बनाना है । जिसने मन जीता उसने जगत जीता । हजारों लड़ाइयों जीतें और महान बड़े से बड़ा खिलाड़ी और महा पराक्रमी योद्धा हो, फिर भी उसने मन न जीता हो ऐसा बने । वैसे पराक्रमी नरवीर **जीव** से जिसने मन जीता उसके जैसा दूसरा कोई पराक्रमी नहीं हैं ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २०-३-१९५१

गुरुस्मरण से भावना बढ़े

हृदय में यदि उत्कटता से भावना प्रकट हुई रहा करती है तो जीवन के ध्येय के मननचिंतन में निरन्तर रह सकते हैं। इससे, भावना का थरमामीटर को सदा ही चढ़ा हुआ रखा करें। भावना में उत्कटता और मुग्धता प्रेरित है उसके लिए जिसमें हमें हृदय की भक्ति और श्रद्धा है, उसका बारंबार हृदय से स्मरण किया करना ! मन, प्राण और बुद्धि को हम उसके पास बारंबार ले जाएँ और उसके साथ एक करना । ऐसा करने से हमारी भावना पुनः अधिक कोमल और तेजस्वी बनती है । उसका संग पल-पल हमारे मन में, प्राण में और बुद्धि में जीवित रहे तो उसकी प्रेरणा हमें कैसी कैसी मिला करती है, वह समझ में आये और हमारे साथ ही वह है, वह प्रत्यक्ष अनुभव होगा । उसमें एकाग्र, केन्द्रित और एकांगी हमारी दृष्टि, वृत्ति और भाव यदि हो जाय तो उसका अनुभव हमें हुआ करे । उसे छुट्टा रखना नहीं । उसे यदि साथ रखा हो और शायद भटकना हो जाय तो भी वह कोख में उँगली भोंककर हमें जगाता है । जीवित संग हुए बिना और उस संग में प्रेमज्ञानभक्ति का बल जुड़े बिना उसका सच्चा भान और

सच्चा स्वरूप हमें जानने नहीं मिलता । बाकी तो जो है वह है । हृदय के अनुभव से जब जिसमें हमें दृढ़ भरोसा होता है तब उसमें से पीछे हटना नहीं होता ।

गुरुभक्तिः सर्वोत्तम साधना

स्मरण, प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक का स्मरण, मनुष्य को नया जीवन प्रकट करता है और ऐसे जीवन की प्रेरणा ऐसी तो वेग और गतिवाली होती है कि हमें वह सदा ही आनंद में मग्न रखा करती है । हम मानो हों फिर भी न हों, हम काम करते हों फिर भी मानो काम न कर रहे हों, हम संसार में सबके साथ हों फ्रि भी सब के साथ न हों, ऐसा लगा ही करता है। जीवन का आनंद, उसकी मस्ती, उसकी धुन और उसकी लगनी ऐसा जीवित संग होते उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ३१-३-१९५१

संपर्क कम होने चाहिए

संसार में **जीवों** के प्रति संबंध और संपर्क हो सके उतने कम होते जाय और उसके बदले प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक नामस्मरण उतने समय में होता जाय तो वह अच्छी बात है । इसमें कुछ गलत नहीं है ।

सुमेलभरी अलगता कैसे साधे ?

'हम से विरुद्ध मत की व्यक्ति के साथ ही रातदिन रहकर मन को ऊँचे ले जाना, यह आप मानते हो उतना मेरे लिए सरल नहीं है ' ऐसा तुम लिखती हो । जीवन में जो

करके दिखाया नहीं या कर सका हुआ नहीं, वैसा मैं कभी किसी को कहता नहीं । अनेक व्यक्तिओं के साथ काम करने में आया था । फिर, निचले स्तर के पद पर हमेशा काम करना रहता । दूसरों के मत में समता और तटस्थता का अथवा तो जिस तरह काम में सरलता प्रकट हो और हम में भी सरलता रहे और शांति मिला करे वैसा मध्यम मार्ग लेता । गुजरात हरिजन सेवक संघ में श्री परीक्षितलाल के साथ कितने ही वर्ष रहा । अधिकार की दृष्टि से सब समान था, परन्तु जिसे काम ही करना है और अपने मन की शांति बनाये रखनी है, उसका वर्तन ही अलग प्रकार का होता है । उसे किसी के बारे में ममत्व नहीं रहता, मेरा क्यों न सुनेंगे या मेरा क्यों न चले या कोई मेरा क्यों नहीं सुनते या मुझे क्यों कोई गिनती में नहीं लेता ऐसे विचार उठें तो जानना कि हम निठल्ले हैं । मेरी तो अनेक मजाक भी करते । यदि हम काम ही किया करें और फिर कम से कम बोलना रखें या कम संपर्क रखें तो वह चल सकेगा ।

प्रेम पूर्ण शुद्धि चाहता है

तुम भगवान के प्रेम की बात करती हो, पर वह प्रेम ऐसा कोई निकम्मा नहीं पड़ा है । सर्व प्रकार की शुद्धि प्रकट हुऐ बिना ऐसा प्रेम उद्‌भव होना असंभव है । फिर, तुम लिखती हो कि 'जहाँ सृष्टि में देह का, उम्र का अस्तित्व ही न दिखे ऐसी सृष्टि में हम बसते हों, पहले तो ऐसे प्रेम की सर्वोत्कृष्ट और उदात्त भावना हो ओर रोमरोम में प्रकट हुई हो तो देह का भान भी नहीं रहता है ।

साधना में शरीर बाधक नहीं है

और देह की अवगणना क्यों, देह हो तो क्या हो गया ? देह न हो ऐसी सृष्टि यदि हो तो फिर हम मनुष्य नहीं रह सकेंगे । मेरे शरीर की उम्र ५३ वर्ष है । मैंने तो अपनी ओर से एकमात्र प्रभु की कृपा के बल द्वारा करके यदि कोई चेतन हो तो उस चेतनरूप का भरोसा प्राप्त स्वजनों को अनेक बार करवाये हैं और वे बुद्धि से भी नकार सके ऐसा नहीं है । प्रभुकृपा का हुक्म मिलेगा तो तुम्हें भी ऐसा अनुभव होगा । शरीर बाधकरूप नहीं है । शरीर की अवगणना की जरूरत नही है । तुम्हारा शरीर स्त्री का हो ओर मेरा शरीर पुरुष का हो, इससे भड़कने की भी जरूरत नहीं है । दुनियादारी की तरह और समाज में हमें जैसा योग्य व्यवहार करना चाहिए वैसा भले बरतें, परन्तु हृदय के भाव का उन्माद प्रकट होते वह किसी मर्यादाओं से थोड़े ही बंध सकता है ?

जीवनध्येय अनुसार जीना कठिन है

तुम जो आनंद की हकीकत लिखती हो, वह बात भले सही हो, परन्तु तुम सांसारिक जीवन की लोलुपताओं से पर हो अथवा पर रह सकती हो, यह बात ठीक नहीं हैं । हृदय के प्रेमभाव को, सर्वस्वभाव से और समर्पणभाव से किसी एक के चरण में उँड़ेलना ऐसा दिल है, वह भाषा की दृष्टि से कहना वह योग्य है, परन्तु वैसा उसका वास्तविक ज्ञानपूर्वक की समझ में करना और वैसा बनना वह तो बहुत ही दूर दूर की बात है ।

गुरु गोविन्द नहीं है फिर भी साधक के लिए है

कोई वैसा नहीं कर सकता ऐसा कहना नहीं है, अवश्य कर सकता है । प्रभुकृपा से मैंने वैसा किया था । मैं अपने गुरुमहाराज को सर्वस्व मानता । चेतनपन का प्रत्यक्ष भान प्रेरित करता । तथापि गुरु और गोविन्द एक होने पर भी भिन्न भी है । गुरु वह गोविन्द ही है ऐसा कभी नहीं है, परन्तु गुरु की हृदय की प्रेमभक्ति द्वारा करके कुछ सूझबूझ जागे तो साधक के लिए गुरु सर्वोत्कृष्ट है, क्योंकि उसे गोविन्द की समझ नहीं है, गुरु की कुछ समझ पड़ी हुई है । जिसे कुछ समझ पड़ी हुई हो, उसका आधार लेकर गोविन्द को पा सकते हैं । गुरु में किस तरह भावना रखकर मदद प्राप्त कर सकते हैं, उसके बारे में पहले लिख चुका हूँ । इसलिए विशेष लिखता नहीं हूँ ।

दूसरों की ऊँची बातें सह लेनी

कोई ऊँची ऊँची बातें करे तो मन का छोटे से छोटा पत्ता हिले बिना वह सहानुभूतिपूर्वक सुनता हूँ । हाल में ही आश्रम से मेरे पुराने समय के कोलेज के एक स्नेही यहाँ चौबीस घण्टे के लिए आये थे । वे ही सुबह से शाम तक बहुत ऊँची ऊँची बातें अपने बारे में बोल रहे थे और मेरे बारे में..... भाई को बतलाया कि 'भगत की तीन पैसे की कीमत है, परन्तु मेरी तीन पैसे की कीमत और सामान्य व्यक्ति की तीन पैसे की कीमत में आसमान जमीन का अंतर है ।' इस तरह की अनेक बातें करे तो मुझे किसी प्रकार की बाधा आती नहीं, और मैं प्रेम से सुना करता हूँ ।

भावनामय जीवन तो और ही है

किन्तु कोई स्वजन वैसी बातें करे तो उसे 'सुनाने' का काम भी प्रभुकृपा से होता है । तुम जिस भावना की बात करती हो, वह भावना मात्र बौद्धिक कल्पना की है । जिस भावना में शरीर का अस्तित्व भी नहीं है, वह भावना यदि हम में प्रकट हो जाय या जीवित रहा करे तो हमारे सभी प्रसंगों में हमारा मानस किसी अलग ही प्रकार का रहा करे । मन में प्रकट होते विचार, भाव और भावना वे हमारी अपनी स्थिति कैसी कैसी है, वह अपने आप बता देते हैं । किसी क्षण में आकाश में उड़ते हों तो उस पर से वास्तविकरूप से वैसे हैं ऐसा मानना वह केवल भ्रम है । हाँ, हमारा मार्ग वैसा है, वह बात भी निश्चित है, परन्तु उसके साथ साथ सदा ही हमें अपना निर्दयता से पृथक्करण किया करना है और जहाँ जिसकी योग्य कीमत हो और जैसा मूल्यांकन हो वैसा ही आँकना है । कुछ विशेष भी नहीं और कुछ कम भी नहीं । तुम स्वयं अच्छी तरह समझो, उस तरह संसारव्यवहार में प्रेरित रहो और वैसी तुम्हारी दृढ़ भावना हो जाय तो तुम बहुत कर सको ।

तुम प्रभुकृपा से मौनएकांत ले सकोगी और उसमें कोई बाधा नहीं आये ऐसा मन में आत्मविश्वास दृढ़ करना ।

नामस्मरण खूब प्रेमभक्तिवाला किया करना और हमारे व्यवहार की असर और छाप सब पर ऐसी पड़े तो हमारा काम अवश्य हो ।

माँ' बनने का पहला कदम

तुम माँ की बात लिखती हो और माँ के भाव और प्रेम की हकीकत लिखती हो तो पहले तो तुम्हारा वैसा प्रेमभाव और तुम्हारा 'माँ' रूप तुम्हारे बालकों के सामने प्रत्यक्ष करवाना है। बालकों के दिल को तुम जीत सको और वे तुम्हें खूब खूब हृदय के प्यार से चाहें वह पहली कसौटी है। उसमें पास हो बाद आगे 'माँ' रूप की बात करना। **कम बोलना, किन्तु अधिक करके बतलाना, वह आध्यात्मिक मार्ग की पहली शर्त है।**

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २-४-१९५१

सेवा से सभी को जीत सकते हैं

पूज्य माँ के पैर में लगा है, यह हकीकत जानी है। हृदय की भक्ति से उनकी अत्यधिक देखभाल करना। बीमारी के समय में की हुई सेवा वह मन को पिघलाती है और हमारे बारे में अधिक अच्छा भाव पैदा कारती है। इसलिए उस बात में किसी भी प्रकार की कमी ना आये उस तरह से हमें सेवा करनी है। मेरे बदले उनकी बहुत बहुत खबर पूछना और उनका कोई काम करते संकोच रखना ना पड़े उसका ध्यान रखना।

सतत प्रसन्नचित्तता रहे तो ही मन एकाग्र और भक्तिवाला रह सके। और मन प्रसन्नचित्त हो तभी मन में शांति रह सके।

प्रसन्नचित्त का सभी सुगम सुगम बहे।

ऐसा एक कवि ने लिखा है, यह बिलकुल सत्य हकीकत है। इसलिए जैसे हो सके वैसे प्रयत्न कर करके हृदय की उमंग प्रकट करके प्रसन्नचित्त रह सके वैसा करना।

एकसाथ अनेक को शिक्षण

मैं अनेक को से पत्र लिखवाता हूँ। उसमें दूसरों को लक्ष्य में रखकर भी कुछ होता है, वह तुम्हारी हकीकत सच्ची है, वह कबूल मंजूर है, परन्तु वह तुम्हारे लिए नहीं है ऐसा वह फिर नहीं है, यह जानना। तुम टुकड़ो टुकड़ो में पत्र लिखो उसकी बिलकुल बाधा नहीं है।

सच्चा सौभाग्य प्राप्त करो

तुम्हारा विधवापन वह मेरे मन तो विधवापन नहीं है, पर तुम्हारा विधवापन दिव्य सौभाग्यवाला बने या हो ऐसी ही मेरी अभिलाषा है। तुम तो सदा ही मेरे मन तो लाड़ली रहनेवाली हो। जीवन में स्वच्छंदी को कहीं भी स्थान नहीं है। संसारव्यवहार में भी कोई **जीव** चाहे तब भी मन में आये वैसा स्वच्छंदी नहीं हो सकता, क्योंकि स्वच्छंदी **जीव** को संसारव्यवहार अधिक देर तक सहन कर सकता भी नहीं और टिकने भी नहीं देता। भगवान ने जो शक्तियाँ दी हैं, वो सभी शक्तिओं का उपयोग प्रभु के लिए होना चाहिए और हमारा मालिक चला कहाँ गया है ?

सद्‌गुरु, साधक की सिद्ध दशा से ही शोभित है

हमारा तो हजार हाथवाला मालिक जीताजागता बैठा हुआ है। उस मालिक को हम अपने में जीवित करें तो हमारा सौभाग्य तो ऐसा सिद्ध हो और पके कि जगत में जिसकी जोड़ न मिले। मैं भी एक समय जीवन में विधवा था, परन्तु अब सधवा हुआ हूँ। संसारव्यवहार में सधवापन का जिसे सौभाग्य

है, वैसे अधिक नहीं तो एक दो पुत्रादिक प्राप्त करे, तब उसका संसार में कुछ ठीक गिनने जैसा होता है । इसलिए हमारा सधवापन का सौभाग्य है, किन्तु अभी वह चमक उठा नहीं है ।

गुरु सद्‌भाग्यशाली कैसे होगा ?

श्रीभगवान का अनुभव होने के लिए जो जो **जीव** मिले हुए हैं, वह वह **जीव** यदि अपने हृदय, मन, चित्त, प्राण, बुद्धि और अहम् एकमात्र उसी विषय में मनन, चिंतन और निदिध्यासन प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक किया करे और **इस जीव** में रहती चेतनाशक्ति के साथ श्रीप्रभुकृपा के बल से सतत हृदय के तार का संपर्क यदि जीवित रखा करे तो सद्‌भाग्य प्रत्यक्ष होते देर न लगे । यहाँ 'प्रत्यक्ष' अर्थात् ख्याति में आना ऐसा अर्थ नहीं है या किर्ती हो ऐसा नहीं है, किन्तु प्रत्यक्ष हो यानी प्रकट हो ऐसा अर्थ है । जिसे विधवापन का सचमुच का हृदय में भान है, वह तो सच्चे मालिक का संबंध विकसित करने के लिए मनहृदय से यत्न करता है । विधवापन का भान होना इससे तो जीवन का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के बारे में प्रथम चरण प्राप्त हुआ ऐसा गिन सके इसलिए हमारा विधवापन वह तो आशीर्वाद समान है, शापरूप बिलकुल नहीं है ।

मन में मुठभेड़ अर्थात् कच्चापन गिन सके

किसी के साथ मुठभेड़ हो, इसका अर्थ यह है कि हमारा मन अभी मुठभेड़ को स्पर्श कर सकता है । ऐसा मानसशास्त्र का कानून है । हमारे मन के अनेक प्रकार के पसंद और नापसंद होते हैं और उसके कारण तथा अनेक प्रकार की पूर्वग्रंथियाँ मन में भरी होती हैं । ऐसे सब कारणों के बारे में मन में मुठभेड़

होती है । इसलिए हमें तो कहीं किसी से मन में मुठमेड़ न हो, उस प्रकार मन को विकसित करना है और इस तरह सदा ही जागृत रहा करना है । खूब नामस्मरण करती रहना ।

प्रेमभक्ति का चमत्कार

जीवन की भावना मिथ्या भावना नहीं है । उसके जैसी ठोस वास्तविकता दूसरे किसी प्रकार के जीवन में नहीं है । साधनामय जीवन अर्थात् कल्पनामय जीवन नहीं या ऊष्मामय जीवन भी नहीं है । भक्ति यानी खोखलापन भी नहीं । भक्ति की बुनियाद तो ज्ञान की ठोस नींव पर बनी हुई होती है । **भक्ति अर्थात् तो मन को सतत निरन्तर उसके प्रिय चिंतन में गोंद या सरेस की तरह चिपका के रखवाये तब भक्ति कहलाय** ऐसी भक्ति के लिए हृदय में कोई उन्माद और उत्कटतायुक्त विशाल और अपार भाव की आवश्यकता रहती है । ऐसा प्रेमभाव जीवित प्रकट हुए बिना परस्पर के हृदय परस्पर नहीं हो सकते हैं । जहाँ प्रेमभाव पूरा प्रकट होता है, वहाँ मन पिघल जाता है । मन में दूसरे कोई विचार प्रकट नहीं हो सकते हैं । जिसके विषय में या जिसकी बाबत में ऐसा ज्ञानपूर्वक प्रेमभाव प्रकट होता है, उसमें एकरूप हो सकते हैं और जिस हेतु के लिए ऐसा प्रेमभाव प्रकट हुआ हो, उसका ज्ञान प्रत्यक्ष होते, उसका विस्तार जीवन के सर्व क्षेत्रों में होता रहता है । जैसे सूर्य का तेज अनेक दिशाओं में फैल जाता है और कोई जगह बाकी रहती नहीं है वैसे ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होते जीवन में उसका प्रकाश और तेज हम अनुभव कर सकते हैं । तब हमारे सकल कार्य उस स्थूल रूप से कर्म लगते होने पर भी वे कर्म चेतना से होते रहते हैं ।

आत्मनिष्ठ भक्ति से पहचाना जाय

ज्ञानी, भक्त या योगी आत्माओं के मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार नष्ट हो गये होते हैं, ऐसा नहीं होता है । उनके शरीर से कोई क्रिया या कर्म नहीं होते ऐसा नहीं होता है । वे सब हमारी मुआफिक ही बोलते, चलते, और बरतते होते हैं, परन्तु उनकी चेतना का प्रदेश किसी अनोखे प्रकार का होता है और रहता है । उनके मनादि और शरीर के कर्म तो हमारे मुआफिक ही होते हैं, परन्तु उसे परखना या अनुभव कर सकना यह सरल हकीकत नहीं है । किसी को भी समझना हो, अनुभव करना हो या परखना हो तो उसके संबंधी हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् संपूर्ण प्रेमभक्तिवाले बन जाय तो ही उसका हार्द हम पा सकें ।

भागवत का रहस्य सही रूप से समझना हो तो जो भागवत का सचमुच का भक्त हो और भागवत अनुसार जिसका जीवन है और जिसे उस अनुसार का ज्ञानपूर्वक का अनुभव है वैसे के पास से भागवत का सच्चा रहस्य पा सके और किसी का जो संपूर्ण सच्चा भक्त हो वैसा भक्त वैसा उसके भक्ति के विषय को सच्ची तरह समझ सके, परख सके और अनुभव कर सके । **जो भक्त है, वह ज्ञानी भी हो सकता है और योगी भी । योगी अर्थात् एक होकर जुड़ना और जुड़कर एकरूप में हो रहना वह । ज्ञानी अर्थात् हृदय में हृदय से जिसमें प्रवेश पाया है, उसे पलपल अनुभव करना । वह जो भी किया करते हो, वह उसके चेतन द्वारा है ऐसा जानना वह । स्मरण से मस्त रहना और हमारे हृदय को उस भाव से शांत रखना ।**

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ३-४-१९५१

गुरु को अंतर में जीवित करो

हृदय के तार भावमग्न हो उठे 'और झनझना उठे' ऐसी प्रेमभावना के बारे में साहित्यिक भाषा में बहुत लिखा गया है। लोग ऐसा लिखते हैं, परन्तु ऐसी स्थिति हो तब जो एक प्रकार का एकात्मभाव प्रकट होता है और इससे करके हृदय में हृदय के चिंतन का विषय हृदय से प्रत्यक्ष होता है, उस समय पर स्थलकाल की मर्यादा टूट जाती है। ऐसा हो तब हृदय का आध्यात्मिक कक्षा का सच्चा प्रेमभाव कह सकते हैं। ऐसी स्थिति प्रकट होने के बाद और वह कायमी करके हमारे आधार के एक एक करणों की शुद्धि करने के लिए वैसी चेतना का आधार लेना रहता है।

आध्यात्मिक मार्ग में जिसकी मदद लेकर हमें काम करना है और जिसे हम गुरु मानते हों, उस गुरु की भावना को क्षणमात्र भी दूर रखने पर हमें सुझ न पड़े ऐसी मानसिक स्थिति हो, उसके बाद उसे हम में जीवित प्रकट करके जहाँ जहाँ जो जो प्रकार की अशुद्धियाँ हैं और दूसरा बहुत सारा हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् में छिपा पड़ा हुआ है और जो हमें **जीव**मय दशा में रखा करती है, उन सबको उसकी चेतना द्वारा हम संपूर्ण शुद्ध कर करके, उसके प्राकृतिक धर्म छुड़ा छुड़ाकर आधार के एक एक करण में शरणभाव प्रकट करना है। ऐसा शरणभाव प्रकट हो, उसके बाद ही सच्चे आध्यात्मिक मार्ग की चेतना का प्रवाह हमारे आधार में आरंभ होता है।

हमें वाणी की कीमत नहीं है

इसे देखने पर अभी तक हम उस दिशा में कीड़ी के पैर जितने भी आगे बढ़े नहीं उसका हमें सच्चा भान होगा। इसलिए, कृपा करके समय पर चेतने में सार है। सिर पर मृत्यु नाच रही है। सभी मनुष्य कहते हैं कि मृत्यु निश्चित है, परन्तु शय्या में साप पड़ा रहा हो तो उसमें कोई सो सकता है सही ? इस तरह लोग 'मृत्यु निश्चित है, निश्चित है' ऐसा कहते हैं सही, किन्तु उसमें सच्ची समझ नहीं है। मात्र, श्मशान-वैराग्य जैसा वह कहना होता है। बाकी, मरना है ऐसा निश्चित लगे वह व्यक्ति चैन से नहीं रहेगी। जागती रहना और भगवान के नामस्मरण में तल्लीन रहोगी तो ही उपयोगी है।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ४-४-१९५१

दिव्य चेतना के प्रसंग

तुम्हारी ता. ३०-३-१९५१ से लेकर ता. २-०४-१९५१ तक की नोंध मिली है। '**मोटा**, आज तक के मेरे सारे प्रयत्न क्या बेकार गये हैं ? मैंने क्या पीसपीसकर कुल्हिया में ही डाला है ?' उसका उत्तर कल के पोस्टकार्ड में दे भी दिया है। '**मोटा,** यहाँ कोई प्रसंग बनता है या बननेवाला होता है, उससे पहले आप मुझे चौकन्ना कर देते हो ऐसा तुम लिखती हो। उसके समर्थन में कल एक बना हुआ प्रसंग लिखूँ। खाली जागते हुए पड़ा था वहाँ शरीर को अचानक धक्का लगा। सोने की जगह से चार सौ फूट दूर यहाँ आश्रम का दरवाजा चुना जा रहा था,

वहाँ एक राज काम कर रहा था । एक छोटी बेंच उस पर देवदार का खोखा और उस पर वह खड़ा खड़ा सिमेन्ट का प्लास्टर कर रहा था । उसके शरीर के वजन से देवदार का बक्सा थोड़ा झुका और शरीर धड़ाम से नीचे गिर गया । उसके बाद मैं उठकर वहाँ गया और..... भाई को बुलाया । ..... भाई राज काम करते थे वहीं पर बैठे थे । .....भाई को पूछा 'उसे बहुत लगा तो नहीं है न' ? प्रभुकृपा से उसे कोई गहरी चोट नहीं आयी थी और काम भी कर सकता था ।

थोड़े दिन पहले एक वृक्ष का बड़ा तना चार मजदूर आश्रम में उठा रहे थे । उसमें तना लड़खड़ाया । वह एक जन के कंधे पर पड़ा । कंधे से जाँघ पर जाँघ से घुटना पर, घुटना से नला पर और नला पर से एड़ी के नीचे के भाग पर पड़ा । डेढ़ घण्टे उसे शेक आदि करना पड़ा, पर प्रभुकृपा से बीस मन से अधिक का वजन पड़ने पर भी उसे कोई चोट नहीं लगी । यहाँ आश्रम में काम चलता था, उस समय अमुक घटनाएँ बनी हुई जिस में स्वयं सहन करके भी दूसरे **जीवों** को इस काम निमित्त से बिलकुल नुकसान न हो उस तरह प्रभुकृपा से हुआ था । ऐसे तो कितने ही प्रसंग होंगे और हैं कि जो बनते हो अथवा बनने के हो उसका पता लगा करे, परंतु उसमें खूबी कुछ हमारी नहीं है । वह सब करामात हो तो वह श्रीभगवान की कृपा की है ।

तटस्थता से स्वयं को देखने पर बहुत समझ आता है

हमें त्रास होता है ऐसा जो लिखा था, वह तो इसलिए कि हम प्रत्येक की प्रकृति कोई एकदम चेतनामय नहीं बन जाती, और हम सब **जीव**स्वभाव में हों, वहाँ तक हमारी

बुद्धि, प्राण और मन उचित तरह से ही व्यवहार करे ऐसा कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकते । और भगवान के मार्ग पर जाने के लिए एकत्र मिले हुए स्वजनों अपनी प्रकृति के रूप से बरते तब त्रास न हो तो दूसरा क्या होगा ? तुम्हें तो मात्र मैंने ऐसे ही लिखा था कि तुम्हारी ओर से त्रास हो ऐसा हम नहीं चाहते । ऐसा या ऐसे किसी प्रकार का हमारा लेख आये तो स्वयं अपना संपूर्ण तटस्थतापूर्वक निरीक्षण करके पृथक्करण करना और अपने आपको खोजना । ऐसा सही रूप में करने में आयेगा तो स्वयं कहाँ उलझ गये हैं और किस किस व्यवहार और विचार से ऐसा लिखने में आया होगा, वह समझ में आये बिना रहनेवाला नहीं है । हमारे लेख को पकड़े रखने से कोई अर्थ नहीं निकलेगा, परन्तु हमारे लेख पर से जो **जीव** स्वयं को उस तरह से खोजने का यत्न करेगा उसे दीपक जैसा साफ दिखेगा ।

दु:ख साधना करवाता है

मन-हृदय आनंद और उल्लास में रहा करे तो लाखों मन काम करने पर भी शरीर थकेगा नहीं । इसके बारे में तुम्हें लिख भी गया हूँ । भगवान के नाम की मस्ती और उसकी धुन तथा उसका नशा वह कुछ और प्रकार का होता है । मीरां भक्त हो गई, उसकी विडम्बना के आगे हमारी बिडम्बनाओं की कोई गणना नहीं है । अनेक संतभक्तों ने अत्यन्त कठिनाई में अपना जीवन बिताया है, परन्तु उन्होंने उस बारे में किसी को शिकायत तक नहीं की । उलटा, कुन्तीमाता राजमाता होने पर भी उन्होंने जंगलों में अनेक प्रकार की वेदनाएँ और कष्ट

सहन करने पर भी, श्रीभगवान के पास दुःख ही माँगा कि जिससे करके उसका प्रिय नामस्मरण जीवित रह सके ।

धन्य है ऐसी आत्माओं को ! ऐसी आत्माओं के आगे हम सभी तो खाली मिथ्या हैं । हमें कोई विडम्बनाओं नहीं हैं, उलझन भी नहीं है, त्रास भी नहीं है और कठिनाई भी नहीं है तो फिर दुःख तो हो ही क्या ? 'जीवनकदम' पुस्तक की दुःख पर की सभी कविताएँ पढ़ जाने बिनती है । पुनः पुनः उसका मनन करने जैसी वे हैं । ऐसे दुःखों की परम्पराओं में से **इस जीव** का जीवन बिता हुआ है । उस दुःख को किस स्वरूप में **इस जीव** ने स्वीकार किया था और उठाया था, उसका हूबहू हकीकतभरा वर्णन उसमें हैं । 'दुःख की साधना' नाम की एक अलग पुस्तक भी प्रकाशित हुई है । उसे पढ़कर अनेक **जीवों** को आश्वासन, हिंमत और धीरज मिलें हैं ऐसे पत्र .....भाई के पास हैं ।

कड़वे वर्तन की ओर साधक की दृष्टि

जगत या व्यवहार के संबंधी स्वयं जैसे होते हैं वैसे हम कल्पेगें और मानेंगे । तुम बहुत काम करती हो इससे दूसरे कुछ भी बोले उसके सामने हमें नहीं देखना है । हमें तो कोई कुछ बोले तो उस पर से उनकी प्रकृति का दर्शन होता है, ऐसा अनुभव करके उनकी प्रकृति हमे फँसा न दे ऐसा चौकन्ना होने के लिए श्रीभगवान की परमकृपा हमें उनके बारे में ऐसा अनुभव करवाते हैं, यह जानना ।

नामस्मरण भले शुष्कता से होता लगे, तब भी लिया करना । संतोषकारक न होता तब हमारा मन दूसरी किसी बाबत में फँस पड़ा है, ऐसा समझना ।

जिसको सही रूप में लगता है, वह तो भड़-भड़ जलता है, वह बुझ नहीं जा सकता। **हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार के वन में यदि समझरूपी आग लगे तो वे कुछ सीधे रहे सही।** हमें चौकन्ना रहना है, अधिक सावधान रहना है और अधिक जागृति रखनी है, यह सब बात सच्ची, परन्तु खाली खाली ऊपर की बौद्धिक ऐसी समझ **इस** मार्ग में अधिक काम नहीं आ सकती। सचमुच अंदर की सावधानी जब प्रकट होती है, तब ही हमारा काम होता रहता है।

भगवान ही देता है

मैंने तो अनेक बार कहा है कि देनेवाले पर लेनेवाला परम उपकार करता है, इसका रहस्य समझने जैसा है। हम में तो कुछ देने की ताकत नहीं है। श्रीभगवान की कृपा से जो कुछ समझ है, वह कहते हैं।

सद्‌गुरु की अभिलाषा

विवाह के दिन कब हैं, वह मुझे लिखकर बतलाना कि जिससे उन दिनों में तुम्हें पत्र न मिले इस तरह से बरतुं अथवा तो यदि तुम्हें पत्र मिले ऐसा दिल हो तो हरिः ॐ, हरिः ॐ, हरिः ॐ ऐसा तीन बार लिखकर पोस्टकार्ड डाल दूँगा और वे तुम्हें किस पते पर लिखना वह भी लिखकर बतलाना। यहाँ आश्रम में मिस्त्री राज का काम चलता है। यद्यपि मुझे कुछ करना नहीं होता है। भाई हसमुखभाई बहुत मेहनत करते हैं और वही सब करते हैं और करवाते हैं। हम से कुछ बने ऐसा नहीं है। तुम्हारे जीवन विषय की जिज्ञासा बहुत बहुत तेजस्वी बने और **इस** मार्ग में तुम्हें सरलता मिले, शांति प्राप्त हो ऐसी हमारी अभिलाषा है।

साधनामार्ग महाविकट है

इस मार्ग के चढ़ाव-उतार अत्यधिक कठिन होते हैं । **मेरे जीवन की साधना-अवधि का इतिहास मुझे लिखना तो है, परन्तु किसी एक *जीव* में चेतन प्रकट हो उसके बाद में ।** साधना में और आध्यात्मिक मार्ग की पगड़ंडी में अनेक प्रकार की गलीकूचियाँ भी होती हैं और वन-जंगल भी होता है । सूर्य की किरण भी न घुस सके ऐसा भयंकर अंधेरा भी वहाँ होता है । स्वयं बिलकुल खोया, भटका, उलझा हो ऐसा भी अनुभव होता है । ऐसे समय में ही हम कसौटी में से पार उतरते हैं और वह ज्ञान यदि प्रकट होता है तो अपार धीरज, हिंमत और साहस हमारे में अपनेआप प्रकट हो उठते हैं और फिर पुनः हम सजीवन होते हैं ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ६-४-१९५१

हृदयपूर्वक दोषों का स्वीकार करो

'मुझ में अनेक दुर्गुण भरे हुए हैं, उसे ढूँढ़ढूँढ़कर निकालना है । वे दुर्गुण दिखते हैं सही, किन्तु यह मेरा दुर्गुण है, ऐसा मन स्वीकार करने नहीं देता है । इसलिए बड़े दुर्गुण दबे हुए रहते हैं और बिलकुल सामान्य सद्गुण एकदम ऊपर निकल आता है । ऐसा तुम अपने पत्र में लिखती हो । हमारे में दुर्गुण हो वह निःसंकोचरूप से जाहिर में स्वीकार करने की ताकत प्रकट होनी चाहिए । स्वीकार करने से कुछ अंश में हम उस दुर्गुण से अलग हैं और उसके संदर्भ में हमें नफरत

है, विशेष कुछ नहीं तो उसके सम्बन्ध में अभिरूचि तो नहीं है, इतने तक तो हमारा मन उस प्रकार की उस बाबत में विकसित होता है। जो भी कुछ हो, उसे स्वीकार करने की रीति से और वह सहृदयतापूर्वक सरलता से, स्पष्टरूप से स्वीकार करके साफसाफ कहना वह आत्मनिवेदन का एक प्रकार है।

साधना की जो अनेक शर्त हैं, उनमें से वह भी एक अनिवार्य शर्त है, परन्तु केवल मात्र स्वीकार कर देना, इतने से ही नहीं चलता है। जो जो कुछ नकारात्मक हो, वह वह अपना स्पष्ट दर्शन होने के लिए साधना करनेवाले **जीव** में ऊपर तैर आता है कि जिससे वह उसे देख सके, अपने दुर्गुण पता लगें, समझ में आयें और अनुभव हों, वह तो भगवान की एक बड़ी कृपा है, परन्तु जहाँ तक अपने दुर्गुण स्वयं को नहीं सालते और चुभते नहीं और ऐसा उसे जहाँ तक संपूर्ण भान प्रकट हुआ नहीं है, वहाँ तक हम में से वे दुर्गुण नहीं हट सकते हैं। इसलिए हमारे में रहे हुए दुर्गुणों का हमें भान होना और आत्मनिवेदनभाव से प्रार्थनापूर्वक वे हट सकें उस कारण के भाव से आत्मनिवेदनरूप से हृदयपूर्वक का स्वीकार हम से हो वह अति आवश्यक है।

दोष दूर करने का दृढ़ निर्धारण चाहिए

पाप या दुर्गुणों का स्वीकार करने से हमारा हृदय हलका होता है, मन शांति का अनुभव करता है और प्रसन्नचित्त होता है, परन्तु उसके साथ साथ हमारी अपूर्णताओं का हमें जितना स्पष्ट दर्शन हो, उतना स्पष्ट दर्शन उसे हटाने के हमारे

दृढ़ निर्धारण के सम्बन्ध में हमें जाग जाना चाहिए । एक तरफ के नकारात्मक बल को हमें रचनात्मक शक्ति से नाश करना है । ऐसी रचनात्मक शक्ति से यदि संपूर्ण सच्चा भान हमें हमारे हृदय में प्रकट हुआ न हो तो दुर्गुण का होता भान हमें निराशा के भँवर में डुबो देगा और हम हताश हो जायेंगे । इससे हमें दुर्गुणों में बसना नहीं है और जीना नहीं है, ऐसा दृढ़ मरजिया निश्चय जो हुआ हो, उसके बल और भान क्या थोड़े ही भाग जानेवाले हैं ? जो कुछ मनहृदय से करके निश्चय होता है, वह निश्चय कभी भी पड़ा नहीं रह सकता, वह तो हमें जगाता है और उठाता है और जिंदा रखा करता है । ऐसा होता अनुभव हो तभी जानना कि सच्चा निश्चय हुआ है । निश्चय का वह लक्षण है ।

ऐसा दृढ़ अटल निश्चय होने पर भी हम कभी कभी हार पाते हमारी जात को अनुभव करते हैं तो उस समय ऐसा होने का कारण हमें मिलना चाहिए । जितना दुर्गुणों का बल है, उसके सामने होने की ताकत हमें कहीं से भी खड़ी करनी चाहिए । कोई **जीव** अपने बल पर संघर्ष करता है, ऐसे युद्ध करते करते हार पाता है और ऐसे हार पाते पाते अपने को यदि अत्यन्त न सहन हो सके ऐसा मानसिक संताप होता है तो ऐसे समय में वह अपने अंतर के आर्द्र और आर्त पुकार से जो **जीव** अपने को मदद करने के लिए श्रीभगवान की कृपामदद प्रार्थनाभाव से झुक झुककर याचना करता है, वैसे **जीव** को श्रीभगवान की कृपामदद मिलती होती है । हमें ड़रने का कोई कारण नहीं है, सिर पर समर्थ

मालिक गर्जता है ऐसा यदि हृदय में सचमुच का संपूर्ण भान हो तो उसे डर किसका ?

करोड़ाधिपति की पीढ़ी का मुनीम लाखों रुपयों का सौदा करता है और लाखों रुपए खोता है, पर वह सब अपने सेठ को बतलाकर निश्चिंतता अनुभव करता है । प्रमाणिक, वफादार और काम करनेवाला मुनीम हो और जिस पर सेठ का बहुत प्रेमभाव हो और श्रद्धाविश्वास हुए हों तो वैसे की लापरवाही के कारण हुई भूल भी सेठ माफ कर देता है, उसी अनुसार हम अपना जो भी सभी श्रीभगवान के चरणकमल में आत्मनिवेदन किया करें और कुछ भी वैसा करने में बाकी न रखा करें । यानी कि जमा और उधार दोनों पक्ष उन्हें बताते रहें तो वह हमारे जीवन की किताब सँभाल लेगा ।

प्रार्थना

भगवान को हम अपने दैनिक व्यवहार में ऐसी अनेक बार प्रार्थनाएँ हृदय में हृदय से किया करनी होती है । प्रार्थना का कोई अमुक निश्चित समय हो ऐसा कुछ भी प्रार्थना में नहीं है । जहाँ जहाँ कहने जैसा लगे वहाँ प्रार्थनाभाव से हृदय में हृदय से कहा करें और ऐसी प्रार्थना की परंपरा यदि हमें हुए अत्यन्त उत्कट मानसिक संताप से प्रकट हुई होगी तो प्रार्थना करने में हमारा हृदय भी शामिल हुआ होगा । गजेन्द्रमोक्ष का दृष्टान्त तो तुम्हें पता होगा । एक तरफ मगर उसके पैर को पकड़कर पानी में ले जाता है और दूसरी तरफ सर्व स्वबल उपयोग करके स्वयं पानी में खिंच न जाय उसके लिए

वह दुष्कर युद्ध लड़ता है । यों, युद्ध करते करते जब उसकी हार होती है, तब वह भगवान को पुकारता है । श्रीभगवान कृपा कर उसे मगर की पकड़ से छुड़वाते हैं ।

कृपा के अनुभव से बल बहुत बढ़ता है

हमारे जीवन में हमें वैसा अनुभव अनेक बार—यदि हम सच्चे अर्थ में साधना करते हों तो—हुआ करना चाहिए तभी हमें अनुभव हो कि श्रीभगवान की कृपामदद साधक को ऐसे समय में मिला करती है । ऐसे समय में श्रीभगवान की कृपामदद का अनुभव साधक को जब होता है, तब सिर पर समर्थ का हाथ होता है, उसका उसे पक्का भान हो जाता है । बाद में अपने में रहे हुए दुर्गुणों से वह डरता नहीं है । उलटा, वह तो ऐसे दुर्गुणों को आह्वान दे देकर ऊपर लाता है और उसे चुनौती देता है और उसे हराकर ही संतोष लेता है, उसके बिना उसे चैन नहीं पड़ता है ।

'निगोड़ा' यह शब्द का अर्थ तो निरंकुश अर्थात् मन में जैसा आये वैसा व्यवहार करनेवाला **जीव**, स्वच्छंदी **जीव** । तुम्हें जिस शब्द या वाक्य की समझ न आये वह अवश्य पूछना, उसमें कोई आपत्ति नहीं है ।

साधक को तत्काल सूझ प्रकट होनी चाहिए

दैनिक व्यवहार में जो जो प्रसंग बने, उसकी सूझ अपने आप हमें प्रकट होनी चाहिए । प्रसंग बने और तत्काल उसके संदर्भ की योग्य रचनात्मक सूझ प्रकट हो, वह भी जीवन की अनेक कलाओं में से एक कला है ।

यदि हम में शांति, समता, तटस्थता, सद्‌भाव, प्रसन्नचित्तता आदि गुण विकसित किये हुए हों तो वैसी योग्य प्रकार की सूझ अपनेआप हम में प्रकट हुआ करती है और वैसी सूझ प्रकट होने से हमारे आनंद में बढ़ोती होती जाती है । किसी नये प्रकार का आह्‌लाद हृदय में प्रकट होता है । श्रीभगवान पर इससे करके हमारा हृदय बलि बलि जाता है और 'वे हमारी कितनी सारी देखभाल करते हैं ! ऐसा हमें लगा करता है ।

• • •

कुंभकोणम्‌ हरिः ॐ ता. ९-४-१९५१

साधक निडर ही होगा

मुरब्बी... वहाँ आनेवाले हैं और वे पूछे तो बेधड़क होकर उत्तर देना । तुम्हारे जीवनविकास का योग्य मार्गदर्शन यदि यह पामर की ओर से मिलता हो और वह तुम्हें सच लगता हो तो फिर आम रूप से उन्हें कहने में—बेधड़कता से आपत्ति क्या हो ? इसलिए वे पूछें तो अवश्य कहना... भी पोल के तुम्हारे पते पर मेरे पत्र सार्वजनिक रूप से वहाँ आते हैं, यह तुम्हारे सास-ससुर जानते हैं और उसमें कोई चोरी नहीं है । मुरब्बी.... चाचा को मेरे बारे में कोई सच्ची समझ न हो, आध्यात्मिक जीवन क्या उसकी सुझबूझ न हो और मेरा विश्वसनीय आचरण भी ऐसे ही । यहाँ भरे बाजार में कंधे पर बैठाकर हरिःऊँ को ले जाऊँ, रास्ते में उसे लेकर नाचूंकूदुं, कपड़े का ठिकाना नहीं, सिर पर बड़ा साफा हो, इसलिए उन्हें मेरे बारे

में कोई सूझ न पड़े । और तुम्हें वे चौकन्ना रहने के लिए कहे तो हमें प्रेम से सुनना । तुम्हें उसमें आपत्ति क्या हो ?

इसलिए पूछें तो बेधड़क होकर कहना कि 'में उन्हें जो कुछ पूछाती हूँ उसके उनके उत्तर आते हैं । मेरे सास-ससुर को मिलने दोचार बार आ गये थे और साबरमती आश्रम में मेरी माँ को लेकर उन्हें मिलने भी गई थी ।' ऐसा भी स्पष्ट कह सकते हैं कि 'आपको श्रद्धा उनमें न हो वह समझ सके वैसा है, परंन्तु मुझे तो उनकी पुस्तकों और पत्रों से अत्यधिक मिला है और उनकी एक 'हृदयपुकार' नाम की प्रार्थना की पुस्तक ने मेरे जीवन में बड़ा बदलाव ला दिया है ।' किस प्रकार का परिवर्तन किया हुआ है, वह तुम्हारा और मेरा मन समझता है । 'आप जो कहते हो, वह मेरे लिए प्रेम की भावना के कारण कहते हो, वह मैं समझ सकती हूँ । ऐसे उनके कहने का आदर करना । तुम्हें **इस जीव** के बारे में पक्की नींव का भरोसा और श्रद्धाविश्वास प्रकट हुए हों और तो एक तरफ पूरा जगत और एक तरफ यह **जीव** हो और उन दोनों में से पसंदगी करनी हो तो किसकी पसंदगी करनी वह भी हमें सोच लेना रहता है ।

कुटुंबत्याग कब ?

और कौन जाने भविष्य में ऐसे प्रसंग क्यों न बने, यद्यपि मेरा अपना मत ऐसा सही कि जो **जीव** जहाँ जुड़ा हुआ हो, वहीं सुमेल से जीकर उससे कभी अलग न हो तो वह उत्तम बात; परन्तु यदि कोई ऐसा तीव्र उत्कंठावाला और धधकती तमन्नावाला साधक हो और सगे-सम्बन्धिओं साधना होने देने में मददरूप होने के बदले हमेशा बाधारूप ही बनते

हों तो वैसे साधक **जीव** को उनका त्याग करने का भी सूचित करूँ यदि उसे उस तरह रहने की संपूर्ण हिंमत और साहस हो तो । अलग रहने का होने पर भी उसे किसी की अवगणना या तिरस्कार नहीं करना है, परन्तु अपने हृदय के प्रेमभाव को अधिक विस्तृत और उदार करना रहता है ।

हमारी साधना के बारे में कोई कुछ न जाने वह उत्तम बात है । किसी को उस बारे में कोई बात न करें वह भी उत्तम बात है । मेरी तुम्हें ऐसी सलाह है कि मेरे बारे में वे कुछ भी कहे तो उसका तुम्हें उसका विरोध नहीं करना, परन्तु वह सुनकर बैठे भी न रहना । स्वयं वहाँ से स्वयं उठ जाना । यद्यपि उन्हें मेरे लिए विरुद्ध में कुछ कहना हो ऐसा मुझे लगता नहीं है और ऐसे तो वे सज्जन हैं..... की पीढ़ी के साथ उन्हें अनेक वर्षों का नाता है । पहले आर्थिक स्थिति अच्छी, परन्तु जगत में सभी का समय आता है । चढ़उतर प्रत्येक की आये ।

लेखक पर प्रभुकृपा का उदाहरण

एक पैसा भी जिसके पास नहीं है, उसे भगवान की कृपा लाख भी दे देती है, यह हकीकत में बिलकुल सच्चा है । **यह जीव** तो बिलकुल श्रम करने गया न था, तब भी श्रीभगवान ने कृपा करके लगभग एक लाख रुपए की रकम (आश्रम लिए) दी, परन्तु वह सभी वापिस कर दी । इसलिए ऐसे परिवर्तन तो आते हैं, यह तो जगत का क्रम है भाई !

किन्तु यह तो गुमराह होकर लिखा गया । हमें कहीं कुछ छिपाकर रखना नहीं है । आनेवाले दिनों में तुम साधना

में लगी रह सकी तो साधना करानेवाले के बारे का संबंध कोई छिपा न रह सकेगा । तुम में जो भावना है, उसके पूर **इस जीव** के सम्बन्ध में बहने देना, उसे केन्द्रित, एकाग्र और एकांगी करना ।

एक बालिका को पत्र

.... का पत्र आता है, तब उसे अवश्य लिखता हूँ । निम्न लिखा हुआ उसे पढ़कर सुनाना–

'बहुत लाड़ली,

मैं तुम्हें याद करता हूँ.... अर्थात् वह क्या उसका पता है ? अर्थ पता न हो तो बहन से पूछ लेना । लता को तो कोई आधार चाहिए ही । आधार के बिना वह बड़ी नहीं होती है ! लता को अकेले रहना रास नहीं आता और अकेले रहना पसंद भी नहीं है और अकेली वह रह भी नहीं सकती । मैं तुम्हें खूब देखना चाहता हूँ और खूब प्यार करना है, पर मैं तो पूरा देहाती हूँ, देखने से तो जरा भी पसंद न आऊँ । जिसकी बहुत हजामत बढ़ गई हो, सिर पर कुरूप जैसा साफा हो ऐसे को देखकर तुम डर तो नहीं जाओगी न ? प्रतिदिन भगवान का नाम लेती रहना । बड़ी बहन भी अब विवाह करके चली जायेगी और तुम अकेली ही बहन के पास रहोगी । इसलिए, तुम बहन को बहुत प्यार करना । बहन तुम्हें डाँटेगी नहीं और शायद मानो कि डाँटे इससे खराब क्या लगाना ? मेरी माँ तो मुझे बहुत मारती भी । तब भी मैं तो माँ को बहुत प्यार करता । माँ जैसा कोई दूसरा प्यारा नहीं है । 'माँ तो

माँ दूसरे सभी जंगल के वायु' ऐसी एक कहावत है । बहन.... को मेरे बदले बुलाना । होशियार होना और समझदार बनना । पढ़ने मे बहुत चित्त रखना । यहाँ मैं लता तो बहुत ही देखता हूँ, किन्तु वह तुम नहीं हो ।

गुणविकास के लिए भी साधना

जीवन में जब सचमुच विकास होने लगता है और साधना में हमारा मन लगा रहकर चिपका रहा करता है, उस समय पर हम में जो ताकत, साहस, हिंमत, धीरज आदि गुण प्रकट होते हैं, उन गुणों को विकसित करने में तो कितने ही जन्म बित जाय ! इससे हमें ऐसे गुणों की शक्ति प्राप्त करनी हो, तब भी साधना में मन को धँसा हुआ कर देना पड़ेगा ।

किसे भजोगे, संसार को या भगवान को ?

भगवान के नामस्मरण के अलावा कहीं भी मन किसी में फरके नहीं ऐसा अभ्यास हमें विकसित करना है । जो जो कुछ किया करें वह भगवान प्रीत्यर्थ किया करते हों तो उसमें संताप, त्रास या ऊब आने की संभावना नहीं रहती । इसलिए भगवान प्रीत्यर्थ करके, वह करते करते उसे याद किया करके उसके यानी कि कर्म के आदि, मध्य और अंत में उसका स्मरण किया करके वह वह काम वापस से समपर्ण करके हमें भगवान को भजना है, नहीं कि संसार को । हमारा सच्चा वर तो भगवान है और संसार में होने पर भी संसारव्यवहार वह हमारा लक्ष्य नहीं है । इसलिए **इस** मार्ग में जाने का सोचते पहले बहुत सोच लेना रहता है ।

किसे पसंद करना है वह पहले निश्चित कर लो । यदि संसार को पसंद करना हो तो **यह** बात छोड़ दो । **यह** मार्ग

दूध और दही दोनों में पैर रखने के लिए नहीं है । यह मार्ग तो बिलकुल खुला किसे पसंद करते हो और किसका वरण करते हो उसके लिए का है । हमें भगवान के प्रति सर्व प्रकार से और सर्व भाव से खुले हुआ करना है । हम जगत को भरमा सकते हैं पर भगवान को भरमा नहीं सकते हैं । मैंने अपने गुरुमहाराज से प्रत्येक व्यक्ति के मन की अरे ! मन की तो क्या जीवन की एक एक बात कहकर बतलाते सुने हैं । मैं नडियाद में रहता तब उसकी हकीकत वे साईखेडा में बोला करते । साधना का मार्ग तो शूली का मार्ग है । उसके पर चढ़ने में जिसे आनंद आता है, ऐसे कोई विरले वीर **जीव** ही साधना में प्राण प्रकट कर सकते हैं । ऐसी मर्दानगीवाली तुम वीर बनो तो मेरी छाती गजभर फूले और तुम किसलिए न हो सको ? **इस** मार्ग की सही समझ मुझे तो देनी रही । मीठी या गुप्त मार मारने से कुछ भी उसमें छिपाया नहीं जा सकता है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ११-४-१९५१

पर्याप्त कीमत में ही प्रभु मिले

'माई, मैंने गोविन्द लीनो मोल' यह भजन आश्रम-भजनावली में से पढ़ना । हमें भगवान को मूल्य देकर मोल लेना है । मतलब कि वह ज्यों का त्यों नहीं मिल सकता है । हमें दिया करना पड़ेगा । पर्याप्त कीमत देनी पड़ेगी । जिस **जीव** को ऐसी कीमत देने का ज्ञान प्रकट होता है और वह देने में हृदय की भक्ति और अपूर्व उल्लास प्रकट होता है ऐसा

जीव ही उसे प्राप्त कर सकता है । हम जहाँ तक **जीव**स्वभाव में हैं, वहाँ तक उसे देने की अनंत हारमाला कायम रहनेवाली है । देते देते अंत ही न आये ऐसी यह देने की अनंतता है । **शिव** होने के मार्ग में जो जो **जीव**पन चुभता हो और वैसा **जीव**पन यदि हृदय से देने की यानी कि समर्पण करने की कला हमें प्राप्त हुई हो तो वैसा देने से **जीव** का दिया हुआ वैसा भाग फिर हमें कभी भी स्मृति में नहीं आता । इसलिए हमारे में रही अनेक प्रकार की वृत्तियाँ, वासनाएँ, लालसाएँ, कामनाएँ, आशाएँ ऐसा अनेकानेक जो जो पल उठे उस उस पल ज्ञानपूर्वक की जागृति रखकर प्रेमभक्तिपूर्वक श्रीभगवान के चरणकमल में हमें वह समर्पण किया करना रहता है । फिर उसे मोल लेने की कीमत इतने में ही नहीं आ जाती ।

जहाँ जहाँ हमें ममता हो, ममत्व हो, राग हो, आसक्ति हो, क्रोध हो, लोभ हो, मोह हो, वह सभी उसे सौंपा करना हैं और उसमें-वह भजन में **'लियो बजा के ढोल'** अथवा **'लीनो है आँखों खोल'** ऐसे दो पाठांतर उसमें हैं और वे दोनों उचित हैं । हमें उसके साथ जो संबंध बाँधना है, वह छुपछुपकर बाँधना नहीं है । सारा जगतजन हमारी बुराई करे या मजाक उड़ाये, तब भी हमें श्रीभगवान के चरणकमल की आसक्ति में सदा मस्त रहा करना है । जगत और जगत का अस्तित्व हमारे मन में बिलकुल गौण हो जाये ऐसा हमें होना है । फिर, भगवान को हमें **'आँखें खोलकर'** लेना है । हमारे लोग में ज्ञानप्रेरक श्रद्धा की बहुत कमी है । ओरिस्सा में कोई

एक बाबा का नाम सुनकर हजारों लोग वहाँ उमड़े थे और अच्छे होने के बदले कितने बेचारे वहाँ मर गये । श्रद्धा वह नहीं है । जीवन के विकास में से प्रकट हुई आंतरिक श्रद्धा जीवन में जो नवचेतन प्रकट करती है, उसे दूसरे किसी के साथ तुलना कर सके ऐसा नहीं है । ऐसी श्रद्धा के पंख हमें प्रकट हुए बिना हम ऊँचे उड़ नहीं सकेंगे और साथ में उसे नहीं ले सकेंगे ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १२-४-१९५१

भक्ति से ही वस्तु का हार्द मिले

'किसी में रहे हुए चेतनभाव की समझ अथवा पहचान कैसे हो' ऐसा तुम पूछाती हो और उसका तुम ही उत्तर देती हो कि 'मुझे इतनी तो समझ आती है कि आप में कोई दैवी शक्ति रही हुई है कि जिससे यहाँ होती घटना, मेरे विचार आदि सब परख सकते हो ।' किसी में रही हुई चेतनशक्ति का अनुभव या समझ या सच्ची पहचान होने के लिए उसके सम्बन्ध का ज्ञानपूर्वक का प्रेमभक्तियुक्त हृदय हमारा हो गया हुआ होना चाहिए । किसी भी वस्तु का हार्द उसके सम्बन्धी संपूर्ण भक्ति और उनके योग्य संपूर्ण हृदय में हृदय का चिंतन हुए बिना पाया नहीं जा सकता । किसी को भी जानना हो, समझना हो या अनुभव करना हो तो उसके सम्बन्धी सचमुच भक्ति हमारे हृदय में यदि प्रकट हुई हो तो ही हम उसे योग्य रूप से समझकर अनुभव कर सकें । इस जगत-संसारव्यवहार

में भी किसी **जीव** के संबंध में हम कितने भी लंबे समय से आये हों, तब भी हम उसे ठीक योग्य तरह से समझ या पहचान सकते नहीं । हम उसे जिस तरह से जानते हों, उससे भी दूसरी ही तरह से उसके दूसरे संबंधी जानते हैं, फिर, तीसरे प्रकार के संबंधी उसे तीसरी ही तरह से जानते होते हैं । इसलिए किसी भी **जीवात्मा** को समग्र रूप से समझ सकना हमारे लिए दुर्लभ है ।

प्रेम स्थान का अंतर तोड़ता है

हृदय में प्रेमभक्तियुक्त सद्भाव जिसके प्रति जागृत रहा करे उसका चिंतन स्वयं हम में हुआ करे । वह हमारे हृदय में रमा करे और हम उसके हृदय में रमें । हृदय का सद्भाव और प्रेमभाव ऐसे तो प्रचंड शक्ति स्वरूप है कि स्थूल रूप से वह **जीव** दूर होने पर भी वह सूक्ष्म स्वरूप से हमारे साथ साथ रहा करता हैं ऐसा लगता है । किसी के विषय में सद्भाव और हृदय का प्रेमभाव किस तरह जागे यह कहना कठिन है । लिखना मुनासिब नहीं है । जिस किसी को कुछ बारे में सच्ची संपूर्ण गरज जग जाती है, तब वह उसके साथ जुड़े बिना रह नहीं सकता । सचमुच की भूख लगती है, वह अपनेआप खाना खोजता है ।

'खोजता है उसे मिलता है और ढूँढ़ता है उसे मिलता है' ऐसी कहावत है । यदि खोजने और ढूँढ़ने की यथार्थ समझ हृदय में उगी हुई हो तो दूसरा उपाय यह है कि जब जब उलझन, कठिनाई, उपाधि, संताप, त्रास, बेचैनी, अशांति में हों, तब तब जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में हमें हृदय का भक्तिभाव हो, उसका मनहृदय से खूब चिंतन करें । उसकी कृपामदद के

लिए प्रार्थना किया करते रहें । ऐसे उसकी मदद यदि मिलती अनुभव कर सके तो वह **जीव** जागृत सुलगता **जीव** है, ऐसा समझ सके । ऐसे दो-पाँच बार अनुभव हो तो ऐसे अनुभव के द्वारा उनको समझ सकते हैं और चेतनभाव की पहचान होती है ।

गुरुचेतना का संपर्क कैसे परख सके ?

जो कुछ किया करें उसके आदि, मध्य और अंत में उसे हमारे मानसिक चिंतन में साथ ही साथ रखा करें और ऐसा किया किया करने से जो भी कुछ करने के बारे में सच्ची सूझ और हल हमें मिला करता लगे तो वह उसके तरफ से मिला करता है ऐसे भी अनुभव हो । कहीं अटके हुए हों तब अपनेआप अचानक कुछ शांति हो जाय, किसी समय हिंमत टूट जाय, तब अजब हिंमत मिल जाय, किसी समय बहुत अधीरता होने पर हृदय में धीरज मिल जाय, किसी समय कुछ भी कारण के बिना अपार आनंद जैसा लगे और किसी समय हमें किसी का सक्रिय साथ हो ऐसा भी अनुभव हो तो उपर की सभी हकीकतों में किसी के चेतनभाव का हमारे साथ संपर्क है, ऐसा समझना, मानना और उस उनुभव को सदा जीवित करते रहना ।

जैसे भक्ति प्रकट होती है वैसे वैसे जीवन के सर्व क्षेत्रों बारे की सच्ची समझ, सही हल और सही सूझ पैदा होती जाती है । ऐसा पैदा होने या कराने में भी उसका सूक्ष्म हाथ होता है । हमारे अनजाने में अचानक कोई ऐसी सहानुभूतिभरी ऊष्मा और प्रेरणा मिले तब भी उसकी ओर का वह अनुभव है, ऐसा समझना रहता है । जहाँ जहाँ कुछ रुकावट हो या मुठभेड़ खड़ी हो, मुश्किल या उपाधि हो या ऐसा हो और

कुछ शांति न मिले वहाँ वहाँ उसे हृदय में हृदय से पुकार कर करके, प्रार्थना कर करके पुकार करते रहना । ऐसे अपने दैनिक व्यवहार में उसे जीवित रखा करना और ऐसा अभ्यास करने करते उसे योग्य ढंग से समझने और पहचान करने की समझ और अनुभव हमें हुआ करते हैं, यह जानना ।

कर्म के सम्बन्ध में साधक की दृष्टि

जीवन में धमाल तो हो । दूसरे लोगों के मन में उस धमाल के संदर्भ का हेतु अलग हो और हमारे मन में वह अलग रहे। दूसरों के मन में तो वह काम पूरापूरा अच्छे ढंग से करें उतने समय ही उसके साथ अर्थ हो, परन्तु हमें तो वह काम करते करते वह प्रभुप्रीत्यर्थ करना है । समपर्ण किया करना है । ऐसा उस उस पल ज्ञानभक्तिपूर्वक का अभ्यास किया करना है । इसलिए कर्म करते करते हमारे करण उसमें व्यस्त होने पर भी कर्मों का चिंतन कर्मों के स्थूल चिंतन से अलग प्रकार का रहनेवाला है ।

'अनुभव' सच्चा कब गिना जाय ?

हमारे **जीव**स्वभाव का मन, जिस **जीव** में चेतना प्रकट हुई है, उसके सम्बन्ध में यदि अभिमुख हो जाय, तब भी हमें उसकी मदद के अलग अलग प्रकार के अनुभव हुए बिना रहे नहीं। फूल सूर्य की तरफ अभिमुख होता है तो वह खील सकता है। आज अनुभव की बात तो अनेक करते हैं, परंतु जो अनुभव हमें जीवनविकास के हेतु में उपयोगी होता हो और हमारे **जीव**स्वभावपन में से निकलने में उपयोगी लगता हो और वैसा प्रत्यक्ष प्रमाण में अनुभव होता हो तो वह अनुभव सच्चा है ।

घबराने की आवश्यकता नहीं

यह तो सभी तरह से तुम्हें अलग अलग तरह से समझाया है। यह सभी हमें करते रहना है। वह तो जैसे जैसे मार्ग में धँसते जायेंगे वैसे वैसे उसकी योग्य समझ आती जायेगी, यह जानना। हमें किसी से भी घबराने की जरूरत नहीं है कि हाय ! यह सब कैसे होगा ? ऐसा विचार भी रखने की आवश्यकता नहीं है। यह तो होते होते होनेवाला है। प्रेमभक्तिपूर्वक का नामस्मरण हृदय में हृदय से सतत निरन्तर लिया करे तो नाम वह भावरूप बन जाता हैं। इसलिए, नामस्मरण में **जीव** रखना।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १४-४-१९५१

मरजिया निश्चय से नीयत दृढ़ करें

जब दिल की सच्ची सचमुच पूरी वृत्ति होती है, तब असंभव भी संभव बनता है। जब हमारी मनोवृत्ति भगवान के मार्ग पर जाने की दृढ़ होती है, तब मन के साथ लड़ना नहीं पड़ता ऐसा नहीं है, परन्तु उस समय हमारे निश्चयबल के आगे मन का बल हार जाता है। जीवन को ऊर्ध्व मार्ग पर ले जाना है तो मनोवृत्ति जाग गई होनी ही चाहिए। यदि बारबार हार होती अनुभव करें तो जानना कि अभी मनोवृत्ति दृढ़ नहीं है तो इससे निराश न हों। हमारे निश्चयबल को अधिक से अधिक दृढ़ करें। शरीर टूट पड़े तो भले, परन्तु मन के अधोगामी भावों को कभी अधीन नहीं होना है, ऐसा दृढ़ मरजिया निश्चय करके सतत जागृति रखा करें।

मन मददरूप कब होगा ?

चिढ़, बेचैनी, संताप, त्रास, क्लेश, कलह, दुविधा उलझन, कठिनाई, उपाधि, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, और दूसरे ऐसे अनेक संसारव्यवहार के प्रसंगों में हुआ ही करेंगे । मन की तरंग अनेक प्रकार की होती हैं और मन की पसंद और नापसंद भी अनेक प्रकार की होती हैं । इससे मन को अच्छा लगे या न लगे या रुचे ऐसी घटना से मन की गति इधरउधर न हो यह देखने का काम हमें करना है । हमें मन का प्राणवान चौकीदार बनना होगा । हार हो उसमें कोई बाधा नहीं, परन्तु हार से जो सीखता है और जो हार से जीतने की चाबी पाता है, वह सच्चा सेनापति है । युद्ध शुरू करे तो हारना भी पड़े । युद्ध करे तो जीत ही हो ऐसा कुछ नहीं है । जन्म से ही जो भक्ति लेकर अवतरित होता है, उसे भी मन को तो जीत लेना पड़ेगा । कितने ही प्रसंगों से उसकी कसौटी होते होते वह मन के पार हो जाता है ।

मन को प्रेमभक्ति में बार बार रस लेता करके उसमें सराबोर करके सच्चे मन को हमें जागृत करना है । ऐसा ऊर्ध्वगामी मन होने पर उस समय के मन की ताकत अपरंपार है । यह तो अनेक के अनुभव की हकीकत है, **जीव**स्वभाव का मन वह अविद्या का मन है । उसमें भी शक्ति रही हुई है । वह शक्ति की मदद यदि हमें सचमुच की तमन्ना जागे तो मिल सकती है, ऐसा संतभक्तों का अनुभव है । मन की शक्ति का ज्ञानभान यदि प्रकट हो जाय तो मन अत्यधिक मदद

कर सकता है, ऐसे अनेक अनुभव हो । मन शत्रु भी है और मित्र भी है। हमें उसे मित्र बना देना पड़ेगा । एक बार वह पूरापूरा सच्चा मित्र बन जाय, उसके बाद वह हमें धोखा नहीं देगा और उसका संपूर्ण विश्वास रख सकेंगे। तब भी वहाँ भी हमें सावधानी, जागृति, तटस्थता जीवित रखा ही करनी हैं। मन वैसा हो उससे पहले तो भगवान की भक्ति में एकरस हो जाना पड़ेगा ।

इस मार्ग के लिए वृत्ति प्रेरित करें

जैसे हमें संसारव्यवहार में मन में अमुक प्रकार की वृत्ति हुई मानो की अमुक स्थान पर जाना है तो वहाँ ले जाने की हमारी गति होगी । **वृत्ति अर्थात् गति** । यदि भगवान के मार्ग पर जाना है ऐसी सच्ची पूरी वृत्ति हुई हो तो उसमें गति होगी । यदि हम ऊर्ध्व दिशा में मन की गति होती न अनुभव कर सकें तो जानना कि हमें सचमुच की वृत्ति अभी तक हुई नहीं है तो वैसी वृत्ति जगाने में हमें प्रयत्नशील रहा करना । यह मार्ग सच्ची मर्दानगी बतलाने का है । सिर अलग रखकर भगवान का नाम लेने को कहा है, वह कोई खाली नहीं कहा है। भगवान के मार्ग पर जाना यह कठिन मार्ग है, परन्तु वृत्ति उस ओर की संपूर्ण जाग जाय तो उसके जितनी कोई सरल बात नहीं है । इसलिए अन्य सभी मन और बुद्धि के प्रश्न छोड़कर वृत्ति को श्रीभगवान के ही चरणकमलों में बारबार सौंपा करनी उसमें सच्चा पुरुषार्थ रहा हुआ है। मन की और दूसरी अनेक कठिनाइयों, उलझनों, बेचैनी, चिढ़ गुस्से में चेतना की कृपामदद कैसे प्राप्त करें वह पहले लिख चुका हूँ। वैसा होने पर प्रेमभक्तिपूर्वक के प्रयोग किया करें और उसमें

से बल प्राप्त करना । उसकी चेतना में भी हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् संपूर्ण पिघल जाय और एकरस हो जाय, तब भी उसकी चेतनाशक्ति मदद किया करती है, ऐसे अनेक को अनुभव हुए करते हैं । ये अनुभव काल्पनिक नहीं या मान लिए हुए नहीं हैं पर वास्तविक हैं ।

गुरु के प्रति प्रेम के लक्षण

'सर्व किसी के साथ होते रहते मेरी ओर के संबंध के बारे में मेरे मन में लेशमात्र भी इस प्रकार या उस प्रकार नहीं है ।' इसका अर्थ क्या ऐसा तुमने पूछाया है । तो उसका अर्थ तो ऐसा है कि प्रकृति और **जीव**स्वभाव से वे कोई भी हो या कैसे भी हो फिर भी मैं तो उन्हें अपने हृदय से चाहता हूँ, परन्तु मेरे चाहने का तरीका और उनके चाहने का तरीका वह एक प्रकार का नहीं है, उसमें आसमान जमीन का अंतर है । यदि हमें किसी के प्रति हृदय का सचमुच प्रेमभाव प्रकट हो जाय तो उसके कहे अनुसार बरत सके ही । हृदय का प्रेमभाव जिसके सम्बन्ध का है, वह तो उसका सतत मनन चिंतन हमें कराया करता है । **मेरे गुरुमहाराज का मुझे ज्ञानभान है । उनको मैं एक पल भी छोड़ता न था और सन् १९२२-२३ की अवधि में भी जब साधना के प्रारंभ की अवधि थी, उस समय उसे बारबार भूल जाने का होता, तब जो अपार वेदना होती उसका मुझे अभी भी पूरा ख्याल है ।** उस वेदना ने मुझे जगाया है । तब मन और **जीव**स्वभाव के अनेक भाव **इस जीव** को उठते न थे ऐसा तो नहीं और वे उठते थे इससे तो उसने 'हृदय की पुकार' किये हैं ।

लगनी लगाओ

प्रेमभक्तियुक्त यदि हृदय की पुकार आर्त और आर्द्रभाव से हुआ करे तो चेतना की मदद साक्षात् है, ऐसे अनुभव भी साधक को होते हैं । तुम्हें ऐसी चेतना की कृपामदद मिला करे ऐसे उपाय बतलाये हैं । उन उपायों किया करने में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् को लगाया करोगी तो सब कुछ सरल सरल होता जायेगा । इसलिए निश्चित होकर लगनी लगाने में **जीव** लगा देना । लगनी लगाये बिना कोई अंत आने का नहीं है । संसार के आरपार निकल जाना हो तो लगनी लगे तो ही बेड़ा पार होगा, उसके बिना बेड़ा पार होना कभी संभव नहीं है, उसे जान लें ।

साधक का एक ही दृष्टिबिन्दु

जगत है, परन्तु जैसे जैसे प्रकार का मन और जैसे जैसे प्रकार की वृत्ति वैसे वैसे उसके आकार और प्रकार हमेशा रहा करते हैं । इसलिए हमें बाहर के जगत के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु अंतर के जगत को ही बदलना है । वह यदि बदलाया करेगा तो फिर बाधा नहीं है । मन को कोई प्रश्न उठने पर ऐसा सोचे 'तुम्हें हरि में लगनी लगानी है कि नहीं ? यदि लगानी हो तो उसमें ही उसमें रहा कर ।' मन को अनेक बार हट जाते अनुभव करेंगे और अनेक बार बदलते अनुभव करेंगे, परन्तु हमें तो सदा ही जाग्रत रहना पड़ेगा । जो जागता रहेगा वह जीतेगा और **यह** मार्ग जागते रहने का है । जागते रहे बिना कुछ काम होनेवाला नहीं है । जो जागता है, वह जान सकता है, देख सकता है और अनुभव कर

सकता है । इसलिए, जागते रहने में सार है । जो जागते रहता है, उसके सारे प्रश्न अपनेआप हल होते हैं । खूब आनंद में रहना और प्रेमभक्ति से भगवान का नामस्मरण किया करना ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १६-४-१९५१

हेतुभेद से एक ही कर्म के अलग परिणाम

तुम्हारी सासजी का पत्र मिला है और मैंने उनको उत्तर दिया है । मु.....की हकीकत जानी । व्यक्ति जो कुछ भी कर सकता है, वह अपने जोश द्वारा कर सकता है । दूसरों में बहुत सा हो पर एक तो वह लेने की हमारी एकाग्र, केन्द्रित और एकांगी दृष्टि, वृत्ति और भाव हुए हों और वैसी प्रेमभक्तिवाली हेतु के ज्ञानवाली पूरी दानत प्रकट हुई हो तब वह हो सके । दानत के बिना किसी में बरकत नहीं आती है । काम एक का एक हो, वह ऊब से किया हो, त्रास से किया हो, बलपूर्वक किया हो, करना पड़े और किया हो, उत्साह से किया हो, प्रेमभक्ति से किया हो, समर्पणयज्ञ की ज्ञानपूर्वक की समझ से किया हो तो वैसे प्रत्येक कर्म का परिणाम अलग अलग आता है । कर्म एक का एक होने पर भी ।

'मानना' अर्थात् क्या ?

इसलिए, हमें जो कर्म करना है उसके आदि, मध्य और अंत में हृदय का ज्ञानभक्तियुक्त सद्भाव कैसा रहता है, उसे देखते रहना । मेरे द्वारा तो कुछ होता नहीं । ऐसे के ऐसे कुछ

मानना नहीं और जो मानें वह कभी हमारी समझ से कैसे भी करके हट न जाय तो वह मानना सच । इस तरह का जो माननापन वही हमें तो कहना, कथना और लिखना । कल्पना, बुद्धि या समझ से माना हुआ बहुत देर तक टिकता नहीं है । इसलिए, मेरे द्वारा होता है ऐसे भ्रम में न पड़ें और यदि सच में ही तुम्हें ऐसा लगता हो कि मेरे द्वारा ही होता है और जैसा तुम लिखती हो वैसे यदि मदद मिलती है तो दूसरी मानसिक बाबतों में तुम यदि मदद ढूँढ़ती रहो तो क्यों न मिल सके ? पूज्य...बा जितना भगवान का नाम ले उतना उत्तम है ।

गुरु की मदद मिलने की शर्तें

मैं तो किसी का गुरु नहीं भाई ! गुरु के रूप में स्वीकार कर सके ऐसी स्थिति के या मानसिक दशा के या ऐसी प्रेमभक्ति की एकाग्र और केन्द्रित भावनावाले कोई नहीं है । गुरु के पास से सीखने की जो अनिवार्य दशा होती है वह न हो तो वह विकसित करनी चाहिए । उस तरफ के निरन्तर एकाग्र और केन्द्रित दृष्टि, वृत्ति और भाव होने चाहिए । और ऐसा लक्ष होना चाहिए । ऐसा हो तो गुरु कुछ काम कर सके । 'कर्मगाथा' में पृ. ७८ से प्रारंभ कर 'जीवनसाधना' उस काव्य में पृ. ८२ पन्ने पर

'बारी भोगनी आये, इससे तो गुरु को अधिक'

आदि आदि लिखा हुआ है, वह पढ़ जाना । इससे गुरु को दिखावटी रूप से मानने में कुछ सार नहीं है । हमारी तैयारी कुछ न हो तो गुरु कोई मदद नहीं कर सकता है ।

प्रेमभक्तियुक्त और ज्ञानपूर्वक की हमारी तैयारी हो तो गुरु की मदद मिल सकती है । उसकी चेतना की कृपामदद पाने के लिए हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् संपूर्ण और सचमुच रंग में रंगे हुए होने चाहिए । उस तरह मनन, चिंतन करके प्रेमभक्तिपूर्वक यदि हृदय की दुहाई उसके चरण में रखें तो मदद मिले ऐसा निश्चित अनुभव है, उसमें बिलकुल भी फर्क नहीं है ।

गुरु की बाबत में लालसा न रखें

तुम्हारे परिवार के साथ मेरा परिचय हो ऐसा तुम कहती हो, यह अच्छी बात है, पर वह तुम्हारे व्यवहार से ही होगा । किसी जगह मुझे ले जाने करने की आशा इच्छा नहीं रखना । मन में उत्साह होगा तो तो लाख बार आने में भी थकान नहीं होगी । यदि तुम आशा रखो तो वह योग्य नहीं है ।

.....में बौद्धिक समझ अच्छी है और उसे विकसित करें तो विकसित करते करते गूँधा हुआ आटा तैयार होता है ।

केवल भगवान के लिए ही कर्म करना

जगतव्यवहार में निन्नानवे काम एक बराबर हों और एक काम बराबर न हो तो निन्नानवे काम बरबाद हो जाते हैं, वह तेरी कही हुई बात सच है, परंतु हमें तो निन्नानवे या सौ, कोई भी काम हो, वह संसार को खुश रखने के लिए नहीं करने हैं, परन्तु भगवान के लिए करने हैं और भगवान को खुश रखने के लिए करने हैं और वैसी सच्ची भावना यदि हृदय में हृदय से पैदा हुई हो तो वे अच्छे भी हो । इस कारण

से कोई खुश या नाराज हो इसमें हमें **जीव** पिरोना नहीं है । यदि प्राप्त होते सकल कर्म भगवान प्रीत्यर्थ करने हो तो हमारे मन में सदा ही प्रेमभक्तियुक्त उमंग रहनी चाहिए । घर में मौन लेने की बात करती नहीं हो, वह उच्छी बात है । हमें तो भगवान के स्मरण का यज्ञ करना है, वह ठीक है ।

नामस्मरण

नामस्मरण छिप छिपकर करना नहीं होता । प्रेमभक्ति की मस्ती से नामस्मरण करना हो । बाकी की जिंदगी कहाँ बितानी है, वह अभी से क्या निश्चित कर सकें ? हृदय हृदय में चेतनापूर्वक का संबंध हो जाय, उसके बाद जो हो वह उत्तम । इसलिए तुम्हें मदद मिले ऐसे अनुभव हो तो मुझे शांति मिले । 'जीवनसंग्राम' पढ़ी और अभी पुनः पढ़ने की है, वह हकीकत जानी । 'जीवनसंग्राम' पढ़े तो नास्तिक से आस्तिक हो जाय ऐसा तेरा अभिप्राय पढ़ा है, परन्तु यह तो वैसी भूमिका हो तो । वह लिखने में मैने अपना हृदय उँड़ेला है । एक बुजुर्ग जन के दुःखी हृदय को शांत करने के लिए और उनकी पुत्री के जीवन के बारे में समझ का नया भाव देने के लिए वह लिखा था ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १८-४-१९५१

हो सके उतना नामस्मरण करना, वह जितनी प्रेमभक्ति से और मुक्त हृदय से होगा उतना मन प्रफुल्लित रहेगा ।

पैर में दर्द क्यों हो रहा है ? क्या हुआ है, इसके बारे में ब्योरेबार लिखना । किसी भाई के पास मालिश करवाने

का तुमने लिखा है तो वह करवाया हो तो भले, परन्तु वह योग्य नहीं लगता है, नहीं कि मैं संकुचित वृत्ति का हूँ। तुम विस्तारपूर्वक क्या हो रहा है, वह लिखे तो उसका उपाय जो सूझेगा वह तुम्हें लिख कर बतलाऊँगा ।

'जीवनसंदेश' फिर से तुमने पढ़ना प्रारंभ किया है, वह आनंद की बात है । उसमें बहुत सा मनन और चिंतन करने लायक है । **साधक के लिए यदि वह चाहे और उसे सच्ची भूख लगी हो तो उसमें से उसे बहुत प्राप्त हो ऐसा है ।**

लगनी लग जानी चाहिए

यदि तुम मेरे कारण जहाँ तहाँ सभी और सभी के साथ सुमेल बनाये रख सको और तुम्हारे सद्‌गुण तथा सद्‌व्यवहार से चमक उठो तो उसमें अवश्य विजय है, परन्तु ऐसे विजय से मुझे संतोष नहीं होता है । लगनी लगे बिना **इस** मार्ग में टिक सकना यह बहुत कठिन बात है । प्रभुकृपा से प्राप्त स्वजनों में अभी किसी को ऐसी लगनी लगी हो ऐसा मुझे अनुभव नहीं है । इससे, जीवनविकास के हेतु के ज्ञान और अनुभव के लिए जो जो स्वजन मिले हैं, उन स्वजनों को मैंने अपने हृदय के साथ किसी न किसी ढंग से बाँध लिए हैं । **इस** आधार में जो जो कुछ अलग अलग है, उस प्रत्येक का उपयोग उन उन **जीवात्मा**ओं को मुझ में बाँध लेने के लिए भगवान की कृपाशक्ति से किया करता हूँ ।

सद्‌गुरु में भी संपूर्ण लगनी लगी हो वैसा स्वजनों में से कोई *जीवात्मा* नहीं है । इससे, तुम्हें अत्यधिक सोचना है, परन्तु मेरे मन से एक बात निश्चित है कि जुड़े हुए *जीव*

के प्राण को मेरे हृदय के साथ तो प्रभुकृपा से बाँध लेने का हूँ, जिससे करके जन्मोजन्म साथ ही रह सकें और हो सकें । चेतन के अनुभव के लिए या तो ज्वालामुखी के जैसी धधकती तमन्ना होनी चाहिए अथवा तो उस मार्ग के सम्बन्ध में निरन्तर लगातार मननचिंतनशील, पुरुषार्थयुक्त, प्राणवान, मानसिक रूख होना चाहिए । सद्गुरु पर कोई संपूर्ण आधार नहीं रख सकता है, कोई संपूर्ण रख सकता है ऐसा मानना वह हकीकत मिथ्या है । कोई वैसा कहे तो मानने को तैयार नहीं हो सकता । क्योंकि मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् का संपूर्ण प्रेमभक्तिज्ञानयुक्त शरणभाव संपूर्ण प्रकट हो जाय, उसके बाद ही चेतन के प्रदेश में हम पहला कदम रखने का प्रारंभ करते हैं ।

उपरोक्त शरणभाव विकसते विकसते यदि सचमुच तमन्ना प्रकट हुई होती है तो तो गिरते, ठोकरें खाते भी आनंद और उल्लास टिके रहते हैं । बाकी के तो वापस ही हटना पड़ता है, या तो निराश होकर मार्ग से हट जाते हैं, या तो नास्तिक बन जाते हैं या ता सब ढोंग है ऐसा मानते हो जाते हैं । न तो इस तरफ के या न तो उनके ऐसे अपरिपक्व और अधबीच वे रहा करते हैं । उनकी मानसिक दशा बुरी होती है । इससे, मेरी तो तुम्हें बिनती है कि अपरिपक्व या अधबीच में कदापि न रहना, या तो इस पार या उस पार ऐसा दृढ़ मरजिया निर्धार और निश्चय करना है ।

लगनी से सब सानुकूल होता है

संसारव्यवहार साधना के लिए सानुकुल नहीं होता ऐसा अनेक कहते हैं, परन्तु 'न नाचनेवाली को आँगन टेढ़ा' उस न्याय से तो जिसकी दानत प्रकट होती है, उसके लिए तो

उपाधि नहीं रहती, परन्तु उपाधि तो गुरुरूप बन जाती है । जीवन में उत्कटता से प्रकट हुआ प्रश्न कुछ कुछ सिखा जाता है, कुछ कुछ बतला जाता है और कुछ कुछ नई समझ देता जाता है । मात्र, हमारी दृष्टि, वृत्ति और भाव निरन्तर लगातार चेतन के संदर्भ में या गुरु के संदर्भ में, हमारे सभी करणों में अभिमुख हो गये होने चाहिए । लगनी लगे बिना किसी में भी मीठास नहीं आती है । संसार की मीठास भी लगनी के द्वारा है । जहाँ जहाँ मीठास, सुख, आनंद, माधुर्य आदि हैं, वहाँ उसका कारण उसके पीछे की लगनी की भूमिका है । लगनी बिना का बिलकुल फिका लगता है । यदि लगनी न प्रकट हो तो 'अंधअंधे की ठेलम ठेल' उसके जैसा होनेवाला है ।

जिस **जीव** को लगनी लगे या लगी हो उसे कुछ सूझबूझ पड़ेगी । बाकी तो हम भी अंधे गिनायेंगे । इसलिए, तुम्हें मेरे लिए सचमुच का सद्‌भाव और हृदय का प्रेमभाव हो और इस **जीव** का चेतन तुम अनुभव करो तो हम अंध गिनाते बच सकेंगे । हमें तो किसी के साथ तुलना नहीं करनी है । लगनी लगाई तो फिर चेतन के अनुभव संदर्भ का हमारा रास्ता सरल हो सके । लगनी लग जाय यह एक बात है लगनी लगानी वह दूसरी बात है । लगनी में एक प्रकार का सहज आकर्षण रहता है । देखो न ! तुम्हारी और मेरी कोई भी पहचान नहीं थी, एकदूसरे को देखने या नाम से नहीं पहचानते थे, पर कर्मसंयोग से मिलना हुआ है । तब अभी सच्ची तरह मिलने का करें तो मिलने का अर्थ है ।

मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार – उसमें हमें एकाग्रता या केन्द्रितता से और एकांगीपन से मिलें तो ही मिलें

कहलायेंगे । हृदय हृदय को समझे, पहचाने और अनुभव करे उसका ही नाम मिले । ऐसी स्थिति में कहीं भी खटका नहीं रहता, भेद नहीं रहता, जुदाई नहीं रहती । उसमें शरीरपन होने पर भी शरीरपन नहीं है । इसलिए लगनी लगाने में प्रेमभक्ति की विशेष आवश्यकता है और वह तो भावना का प्रदेश है । भावना तो हृदय और मन में कहाँ नहीं है ? इसलिए, इन सबका ज्ञानपूर्वक उपयोग पलपल तुम इसमें ही करो और अब आँख बंद करके, बस तुम इसमें कूद पड़ो, पर देखना पैरबैर टूटे नहीं । नहीं तो नाम डूबेगा 'आँखे बंद करके' उसका अर्थ तो समझ आया न ? 'आंखें बंद करना' का अर्थ कहीं कुछ किसी के सम्बन्ध में सोचना ही नहीं ऐसा नहीं समझना । कूदना हो वह भी समझ के साथ और हेतु के ज्ञान से । उसका अर्थ अंधा साहस भी नहीं परन्तु जिसमें गिरना है, उसका अर्थ सभी तरह से समझ समझकर उसका अनुमान निकालकर उसमें गिरना है । संपूर्ण साहस, हिंमत, धीरज, शांति, समता, तटस्थता आदि गुणों की पूरी मदद लेकर उसमें कूद पड़ना है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १९-४-१९५१

सच्चा वैराग्य उदय होना सरल नहीं है

सचमुच और बिलकुल संसार का ताप जिस **जीव** को लगता है, उस **जीव** को संसार से मन पीछे हटा लेने में देर नहीं लगती है । संसार का ताप अच्छे से अच्छे ताप से बहुत कठिन है । उसमें से हमने तो तिलमात्र जितना सहन नहीं किया

है । उस संसार के ताप में तपकर लाल तांबे जैसा जो **जीव** हुआ हो और उसमें से वापस आये हो और अंतर्मुख हुए हो वे **जीव** अति पुखता होते हैं । वैसे **जीव** संसार में किसी समय पर लुभाते नहीं । ऐसा भी होता है कि ऐसे **जीव** माया में कभी कभी लिपट जाते हैं । नारायण से लक्ष्मी का जोर, प्रभाव और प्रताप संसार में सौ के सौ प्रतिशत है । मूर्ख और बिलकुल नादान हो पर यदि खूब धनाढ्य हो तो सभी उसे 'सेठ साहब' कहकर मान देंगे पर यदि सद्गुणवाला और सद्भावयुक्त एक बिलकुल गरीब भिखारी हो, उसे तिरस्कार करते संसारी लोगों को देर नहीं लगती है । इसलिए हमारे मन तो संसार का मूल्यांकन बिलकुल भिन्न ढंग से होना चाहिए ।

'जो सरक जाता है वह संसार ।'जो चले जानेवाला है और रहनेवाला नहीं है, उसके विषय में वह फिर इतना सारा यत्न किसलिए ? उसके साथ यह मन उसमें ही पड़ा रहता है और मन उसके विचार में सराबोर रहा करता है उसकी तो क्या बात करनी ! **मन द्वारा ही बंधन और मोक्ष है । मन में जैसा भाव, भावना, मनोभाव या वृत्ति रहेगी वैसा वैसा संसार लगनेवाला है ।** इसलिए, हमें तो सबके मूलरूप मन को बदलना है । इसलिए ही वहाँ सदा ही भक्ति का ताल रहा करे तो मन सरलता से सीधा रहे । यह तो सीधा ही नहीं रहता वहाँ इसकी क्या बात करनी ? और उसे ठिकाने लगाये बिना कुछ काम होगा भी नहीं । इसलिए मन को बहुत बहुत प्रयत्न संघर्ष किया कराना है, बारबार थोड़ी थोड़ी देर में उसे रोकना है, सरकाये करना है, समेटना करना है । जागे बिना

जागा नहीं जा सकता है । इसलिए कमर कसकर, बैठे होकर सतत युद्ध शुरू करके संसार में निभेंगे तो निबाह होगा । बाकी तो संसार हमें निगल जायेगा । इसलिए, हम तो बस जागो जागो और जागो ही । सदा ही मन को जागृत रखना । मन यदि जागृत रहकर श्रीप्रभु के मनन, चिंतन और निदिध्यासन में जी सके तो कुछ साधन कर सकेंगे । **जागृत मन जो साधना कर सकता है, वही साधना फलित हो सकती है ।**

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २१-४-१९५१

यहाँ भजन की रेकार्ड बजाते हैं, उसमें एक भजन में ऐसा कहता है कि :

'पूर्ण संत हो वहाँ मिल जाएँ हो जी'

'मिलना' यानी क्या ?

इसमें दो शब्द समझने हैं । एक तो 'पूर्ण संत' और 'मिलना' । 'पूर्ण संत' को समझने और पहचानने की कोई समझ नहीं पड़ती है और उसे खोजने भी कहाँ जाना ? परन्तु 'मिलना' शब्द की समझ पड़े ऐसी है । यानी मिश्री में दूध मिल जाय वैसे एकाकार हो जाएँ । उसका नाम मिलना । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् और हृदय ये सभी एकरस हो जाकर जैसे हाथपैर को हम चाहे वैसे कर सकते हैं वैसे आधार के सभी करण ज्ञानपूर्वक के सद्व्यवहार और सद्भाव के योग्य व्यवहार करे और काम किया करे और उसमें वृत्ति का कहीं भी खटका न अनुभव हो और सभी जगह सभी में सरलता, सानुकूलता और प्रसन्नचित्तता अनुभव हो तब मिलना हुआ गिन सके ।

साधनारस जमते जमते जमेगा

जिस व्यक्ति को जिस रास्ते से जाना पड़ता है, उस रास्ते जाते उलटा-सीधा होते एकदम समझ आती है अथवा तो स्वयं रास्ते पर जा रहा हो और भूला पड़ा है ऐसा भान होने पर सही रास्ते की पूछताछ करे तो रास्ता मिल आता है। जिसे सही ठिकाने पहुँचना है और स्वयं बारबार रास्ता भूल जाता है और भूलने पर चेतकर सही रास्ते पर आ जाता है, वह किसी समय तो सही रास्ते पर आ ही जायेगा इतनी बात तो निश्चित। रात भी जमते जमते जमती है, दूध भी जमते जमते दही हो जाता है, उस तरह यदि हम सचमुच ढंग से और सच्चे हृदय से जमनपन अंतर में प्रकट करने का सहृदयता से किया करेंगे तो दूध जमने पर जैसे दही होता है वैसे हमारा भी होगा, यह बात निश्चित है।

साधना का परिणाम प्रकृति और स्वभाव का रूपान्तर है। उसके लिए हमें प्रखर पुरुषार्थ करना पड़ेगा, इसके बिना कोई अर्थ नहीं है। जिसकी कृपामदद से चढ़ने का करते हैं उसमें ऐसी शक्ति है या क्यों उसका पक्का दृढ़ निश्चय का अनुभव हुए बिना उसमें मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार भी ठहरनेवाले नहीं हैं, प्रभुकृपा से प्राप्त हुए स्वजनों को ऐसे कुछ अनुभव हुए हैं, परंतु उनकी भूमिका सच्ची प्रेमभक्तिज्ञान के रंग से पूरी रंगी हुई न होने से, जीवनविकास के कदम में जैसा उठाव होना चाहिए वैसा नहीं हो सका है।

अनुभव कब तत्काल लाभ दे

परन्तु अनुभव का स्मरण तो अवश्य उनमें रहा हुआ है। इसलिए अनुभव जीवनविकास को मदद करे उसके लिए

प्रथम तो उसकी ज्ञानपूर्वक की योग्य भूमिका और वैसा रंग लगा हुआ होना चाहिए। जैसे मैले कपड़े पर रंग लगता नहीं है, दीप्त होता नहीं और शोभित भी नहीं होता और की हुई मेहनत, खर्च किये पैसे मानो बेकार जा रहे हो वैसा होता है, मन खट्टा हो जाता है, ऐसे इस बारे में समग्र सोचना है।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २३-४-१९५१

संतों के पास जाने पर कैसा भाव रखना

पूज्य श्रीनानचन्द्रजी का पत्र मिला। सब धार्मिक पुरुषों का कहना एक का ही एक होता है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। श्री... भाई ने जो प्रश्न पूछे हैं, उनके उत्तर तुम्हें लिखना हो तो अवश्य लिखना। उसमें मेरी नाखुशी नहीं है। श्री ..... वर्यजी को मिलने जाना हो तो भी अवश्य जाना। वे एकदो बार मुझे मिल गये हैं ऐसा याद है। दिल और मन हो तो जाना। वे स्वयं सत्संगी आत्मा हैं और धर्म के पथ पर चलनेवाले हैं। **मधुमक्खी की तरह हमें आचरण करना है। जहाँ जहाँ से जीवनविकास के लिए खुराक मिले वहाँ से लेने में अड़चन नहीं होनी चाहिए ऐसी भावना दृढ़ करें।** मैं तो बहुत संतमहात्मा के पास जाता और प्रेमभक्तिज्ञानभाव से हृदय में श्रीगुरुमहाराज का ध्यान रखता। जो भी सभी एक ही है, एक से अनंत हुआ है और अनंत में एक है। यह कोई मात्र बौद्धिक कल्पना नहीं है, पर सत्य है। ऐसी भावना रखकर एक को ही मन में निश्चित करके जहाँ से जीवन की खुराक मिले वहाँ से लें उसमे कुछ गलत नहीं है।

आत्मा के लिए सब कुछ करो

पूज्य श्रीनानचंद्रजी महाराज ने जो लिखा है, वह बिलकुल यथायोग्य है । हृदय का प्रेमभाव प्रकट हुए बिना अन्य के अंतर में हम वास नहीं कर सकते । हृदय का सच्चा प्रेमभाव तो माँग लेता है बलिदान, त्याग और समर्पण । और वे भी करने हैं, अपने ही जीवनविकास के लिए जैसे जीना है अपने स्वयं के लिए । वैसे बलिदान, त्याग और समर्पण करते करते हृदय का आनंद, उल्लास प्रत्यक्षरूप से यदि बढ़ता जाता अनुभव कर सकें तो वह योग्य ढंग से हुआ है ऐसा मानना । जहाँ जहाँ कचवाट, दुःख, क्लेश, संताप, त्रास, चिढ़, उपाधि, नापसंदगी, गुस्सा या ऐसा सब लगे वहाँ वहाँ जो जो कुछ होता हो उसमें बोझ है वैसा समझना ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २४-४-१९५१

साधना की चाबी तटस्थतावाला सद्‌भाव

नदी में बाढ़ आने पर नदी के पाट का सारा कचरा बह जाने पर स्वच्छ बनता है और तट पर की जमीन को जमा हुआ कीचड़ से अधिक उपजाऊ बनाता है । वैसा ही हृदय में सद्‌भाव प्रकट होते हुए होता है । जो जो भाव, भावना, मनोभाव, वृत्ति और विचार मन में प्रकट होते हैं, उसकी छाया हमारे बनते रहते कर्म में पड़े बिना नहीं रह सकती और कर्म के जो संस्कार चित्त में पड़ा करते हैं, वे भी उसके जैसे पड़ा करते हैं । जैसे नमक बिना का भोजन, वैसे सद्‌भाव बिना

की साधना । जहाँ हृदय का मिलाप हो, बहुत बहुत प्रेमभाव हो, वहाँ कोरी रोटी भी मिष्टान्न से बढ़ जाती है । जहाँ हृदय नहीं है, दिल नहीं और हृदय का मेल नहीं है, वहाँ छप्पन पकवान हो वे भी रूखे लगते हैं । वैसा ही सद्‌भाव हो और उसके द्वारा साधना होती है उसमें सार प्रकट होगा । **सद्‌भाव यह तो साधना का हृदय, प्राण और चेतन है ।** उसमें भी समता और तटस्थता का भाव जाग गया हुआ होना चाहिए । नहीं तो उसमें भी फँस जायेंगे । जिसमें हृदय का सद्‌भाव जागा हुआ होता है, उसमें सरलता से अपनेआप मन लग जाता है ।

इसलिए, साधना लिये का सद्‌भाव–भक्ति–हदय का राग प्रकट हो तो साधना उत्तम हुआ करे । जिसका जेसा लगता है वैसा लगता है । लगे बिना कुछ लग नहीं सकता । जैसे उठे बिना उठा नहीं जाता और जागे बिना जागा नहीं जाता है वैसे । इसलिए, हमें तो लगाना है । हमारे प्रत्येक करण में कुछ कुछ भरा हुआ है, उसमें दव लगानी है । सब भस्म किये बिना वहाँ नया कुछ उग नहीं सकता । खेती करते पहले खेत में से झाडियाँ झंखाड़ सभी जगह से निकालकर उसे उसी खेत में जलाते हैं तो उससे जमीन अधिक उपज दे ऐसी बनती है, ऐसा ही साधना के बारे में है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २५–४–१९५१

साधना कोई खाने का खेल नहीं है

लगनी लग जाय तो तो फिर कुछ बाकी नहीं रहता है, अपने आप सभी चला करता है । मैंने तो तुम्हें लिखा हुआ

था कि अभी चेतन का अनुभव हो, उस हेतु की सिद्धि के लिए जो जो **जीव** प्रभुकृपा से मिले हैं, उन्हें अभी श्रीभगवान की लगनी लगी नहीं है । उसका अर्थ तो यह है कि वे इतने वर्षों से साथ हैं और कुछ प्रभुकृपा से प्रयत्न करते हैं, तथापि जैसी लगनी लग जानी चाहिए वैसी लगी नहीं है । वैसी लगनी लग जानी, यह कोई सरल बात भी नहीं है । वह तो सहृदय प्रयत्न और वह भी दीर्घकाल का प्रयत्न और वह भी निरन्तर और संपूर्ण जागृत बना तो 'मनजीभाई' भीगे और ऐसा उसका महत्त्व और गंभीरता समझ समझकर तुम स्वयं जो भी करने प्रेरित हो, उसके लिए लिखा हुआ था । **इस** मार्ग में कोई लड्डू खाना नहीं है । **यह** मार्ग तो अति तप का है और कठिन है । मन को मनाने के लिए है । जीवन को कसने के साथ योग्य समझ प्रकट करने के लिए है ।

अपनी ही प्रकृति दूसरे के स्वरूप से विरोध करती है

हमारी अपनी प्रकृति साधना में स्थिर होना होते कैसे कैसे विरोध दूसरे दूसरे व्यक्तिओं में जगाकर उसके निमित्त बनाती है । इसका ज्ञान तो जो चेता हुआ होता है उसे होता है । उस समय पर ही हमारे पुरुषार्थ को चुनौती होती है । उसका सामना होते समय पर दूसरे **जीवों** में जो अपने हृदय का सद्भाव जीवित रखकर व्यवहार करता है और अपने में अटल रहता है वैसा **जीव** मर्द है । ऐसे मर्द का इसमें काम है ।

इस मार्ग में तो लाभ ही है

अंधेरे में कूदना है और ऐसे तो जगतव्यवहार में भी सर्व कोई अंधेरे में ही कूदान लगाते हैं । किसी को भी आगे का

पता तो होता नहीं । इससे, अंधेरे में तथा अज्ञान में सर्व कोई कदम भरते होते हैं । तथापि **इस** मार्ग में कुछ खोने जैसा नहीं है, जब कि संसारव्यवहार में तो **जीव** का **जीव**पन अधिक से अधिक जड़ होता जाता है और मन की शांति, प्रसन्नचित्तता, समता, तटस्थता, विवेक आदि से मूल्यांकन करना हो तो **इस** प्रदेश को जोतने के साहस भरपाई हो सके ऐसा है। संसारव्यवहार की अवगणना तो करनी नहीं है पर सँभालने का है । प्रभुकृपा से उसने मेरे पास से तो वैसा ही करवाया है । अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ, मुश्किलें और भारी गरीबी में जीवन बिताया है, किन्तु कहीं भी उसके संदर्भ के दुःख, संताप या असंतोष लगते न थे । उसके जीतेजागते साक्षी **इस जीव** के अमुक मित्र हैं । **इस** मार्ग में आगे चला जाता न था, उसका तो बड़ा प्रचंड असंतोष रहा करता था, पर उसका इतिहास फिर अलग है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ३०-४-१९५१

अनुभव' का लाभ कब उठायें ?

'**अनुभव** होने के बाद प्रेमभक्ति प्रकट हो ? ऐसा तुम पूछाती हो । ज्ञानपूर्वक की प्रेमभक्ति प्रकट हुई हो और समता तथा तटस्थतापूर्वक का विवेक जागा हो तो ही जो कुछ अनुभव हो, उसमें से योग्य प्रकार का सार निकालने का अपने आप हृदय में उदय हो सकता है और उसकी गहरे से गहरी छाप पड़ती है। असर होती है । वैसा हुए बिना अनुभव हो, तब भी पता नहीं चले ।

प्रेमभक्ति की अचूक असर

भगवान अपने भक्त की पूरी सँभाल लेता है, ऐसा अनेक भक्तों को अनुभव हुआ करता है । और उस अनुभव

उस प्रकार से लगने का कारण उसके हृदय में प्रेमभक्ति की बाढ़ बहती होती है वह । जिसमें सद्‌गुण और सद्‌भाव भरे हुए हैं, वैसे **जीव** ही दूसरों के गुण और प्रेम की कदर कर सकते हैं । हृदय में प्रेम की भावना या लगनी प्रकट हो, तब अपनेआप जो बाबत की लगनी या रस जगा हो, उस विषय में मन जीया करता है । संसारव्यवहार में ऐसा होता है कि अनेकों ने कहा हो पर हमने न किया हो, परन्तु हमारा सचमुच अंतर के भरोसेवाला कोई प्रिय व्यक्ति हो और उसके बारे में हमें हृदय में बहुत बहुत प्यार हो तो उसके कहने से करते हैं, ऐसा हमारा अनुभव है । इस पर से समझना तो यह है कि उस दूसरे **जीव** के संदर्भ की हमारे हृदय की जो प्रेमभावना है, वह उसके वचनों का हमारे में स्वीकार कराती है । उस प्रकार उच्च **जीवात्मा** की हृदय की भावना हमारे में प्रवेश करने के लिए ऐसा हमारे हृदय का प्रेमभाव जागा हुआ हो तो ही वैसी प्रवेशयोग्य भूमिका हम में बनी हुई होती है ।

साधना की दो शर्तें

साधना के लिए या तो अपनेआप पुरुषार्थ करने की तमन्ना लगी होनी चाहिए अथवा जीवनविकास के लिए की साधनारूप से गुरु में ज्ञानपूर्वक की प्रेमभावना प्रकट हुई होनी चाहिए । इन दोनों में से जिसमें एक हो अथवा दोनों हो तो उसकी साधना का काम होने लगता है, उसके बिना साधना का काम नहीं होता ।

दानत प्रकट होनी चाहिए

जिस बाबत में जिसकी दानत हो या जागी हुई हो या जागती हो, उसके संदर्भ का भान जागृत रहता है । दानत जागने लगे तब या उससे पहले की दशा में भान तो आता है और जाता है ऐसा होता है सही । इसलिए हम स्वयं अपने बारे में हमारे स्वयं के न्यायाधीश हो सकते हैं । यदि मन में भान प्रकट रहता हो और ऐसे भान का आना-जाना हुआ करता हो तो दानत दृढ़ होने की शुरूआत हुई है ऐसा समझना । यदि दानत में हृदय की उत्कटता नहीं होती तो इतने उत्कट प्रकार का भान नहीं जागता, यह बात सच है, पर तब ऐसी दानत वह सच्ची दानत नहीं कहलाती है ।

दानत कैसे प्रकट हो ?

तो प्रश्न यह उठता है कि क्या दानत प्रकट हो, तब तक हाथ जोड़कर बैठे रहना ? जीवनविकास का ध्येय यदि हमारी बुद्धि में पक्का प्रकट हुआ हो तो दानत प्रकट हुए बिना क्यों रहे ? जिस बाबत में मन को पिरोना है, उस बाबत में मन की गति होना वह आवश्यक है । बुद्धि से जीवन के बारे में यदि सच्चा विचार किया करा हो और जिस लीक में जीवन घिसटता रहता है, उस जीवन के संदर्भ की हमारी दशा हमें सालती हो, जैसे जी रहे हैं वैसा जीना योग्य नहीं लगता हो और हमारे संसारव्यवहार के आचरण में वह करते करते शांति, समता, तटस्थता, प्रसन्नचित्तता, सहानुभूति, मानसिक उदारता आदि गुण न रहते हों, उन कर्मो के संपर्क की अलग

अलग व्यक्तिओं के सम्बन्ध में मानसिक संघर्ष, अशांति, क्लेश, संताप आदि आदि अनुभव होता हो और ऐसी स्थिति में रहना यदि सचमुच पसंद न हो तो उससे जीने की उच्च दशा की जो रीति हो, उसमें जाने का मन करे, उस तरह के अभ्यास और मननचिंतन से दानत न हो, तब भी दानत प्रकट हो ।

सद्‌भाव के प्रकार

गुरु के सम्बन्ध में ज्ञानयुक्त प्रेमभावना सद्‌भाव से प्रेरित हो और उसके साथ साथ समता और तटस्थतायुक्त विवेक जागा हुआ हो वह एक प्रकार । प्रेमभावना सद्‌भावयुक्त हो, पर तामस प्रकार की हो तो वह बेकार और तीसरा वह सद्‌भाव से प्रेरित हो पर रजस प्रकार की हो तब भी बेकार । तामसयुक्त सद्‌भाव वह साधक के लिए बिलकुल बेकार है । उसे सद्‌भाव की कोटि में रख भी नहीं सकते हैं । जब किसी वस्तु का पृथक्करण करने बैठें और समझने बैठें, तब तो उसकी जितनी कक्षा हो, उन सबका विवरण करना चाहिए । तामस में तो बिलकुल मूढ़ता और जड़ता रही हुई है । इसलिए उसमें स्थितिस्थापकता है, यानी कि जैसे हों और जहाँ हों वहीं के वहीं और वैसा का वैसा रखवायेगा । उलटे नीचे भी गिरायेगा ।

सद्‌भाव हो वह सच्चा है, पर तीन गुणों की भूमिका यदि तामस की हो तो सद्‌भाव कुछ काम नहीं कर सकता है या कर या करवा नहीं सकता है । सद्‌भाव हो और वह तामस और राजसमिश्रित हो तो वह गति कराये और मंदता ला दे । मंदता में रखवाकर गति हो ऐसा दिखावा कराये, शंका-संदेह खड़े हों, पर उसका निवारण न हो, यानी कि वह

स्वयं तामस के कारण योग्य ढंग से नहीं कर पाता, परन्तु तामस रजस पर जोर करता होने से उसकी शंका-संदेह खड़े होकर वापस दब जाते हैं। यदि सद्भाव हो और वह रजस-तामस-मिश्रित हो यानी कि रजस अधिक प्रमाण में और तामस कम प्रमाण में हो तब भी वह बेकार है।

रजस के कारण गति कराये पर वह गति डोलायमान हो और उसमें निश्चितता और चैन न हो, आवेग के उफान हो, पर उसके साथ तामस होने से कुछ भी ठोस काम न कराये और उफान शांत हो जाय। भावना भी जागे और फिर फिकी पड़े, चलने और दौड़ने का यानी कि मार्ग में बढ़ने का ऊपर ऊपर से अत्यधिक मन हुआ करे पर तामस के कारण वापस जहाँ थे वहाँ। **इसलिए सद्भाव हो पर वह शांत प्रकृति का सात्त्विक भाव की भूमिकावाला, निश्चल दशा का और ज्ञानप्रेमभक्तियुक्त हो और उसके अंदर जीवनविकास के हेतु के ज्ञान से उत्कटता की आतुरता प्राणवान हो, वैसा सद्भाव इस मार्ग में उपयोग में लग सके ऐसा है। बाकी, स्वरूप का ध्यान करने से कुछ नहीं हो सकता या वैसे किसी उच्चात्मा के पास रहने से भी कुछ नहीं हो सकेगा यह निश्चित जानना।**

संत के संस्कार तो पड़ेंगे ही

हाँ, ऐसे पुरुषों के पास रहने से जो संस्कार चित्त में पड़ते हैं, वे संस्कार दूसरे संस्कारों की तरह फलेंगे तो सही, परन्तु उसका भी आधार प्रत्येक **जीव** की अलग उलग प्रकार की भूमिका पर रहा हुआ है। सूर्य की किरणें जमीन पर पड़े, काँच

पर भी पड़े और लकड़ी पर भी पड़े । उन प्रत्येक के ऊपर उसके ताप की असर अनेकविध होती है । जमीन-लकड़ी गर्म हो, परन्तु काँच में उसका जो प्रकाश पड़े वह और प्रकार का होता है ।

एकाश्रय सर्वश्रेष्ठ है

श्री... वर्यजी के पास जाने का विचार बंद रखा है तो वह भी भले । मनहृदय से एक को चिमटे रहते सही ढंग से आ गया हो तो उत्तम है पर हम से ऐसा न कहा जायेगा कि हम से अकेले को चिमटे रहो । यदि किसी को ऐसी उलझन हो या कैसी भी उच्चात्मा हो तो भी जाना ही नहीं तो वैसी मजबूत गाँठ तुड़वाने को किसी को भेजने का हो, ऐसा भी बने । खूब आनंद में रहना और भगवान का नाम लिया जाय उतना लेना । उसमें ही सार है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ३-५-१९५१

तुम्हारे शरीर के बारे में चिंता होती है । हम दूसरों को चिंता न करने को कहनेवाले अमुक बार चिंता भी करते हैं ।

चिंता से चतुराई घटे, घटे रूप और रंग ।

सद्‌गुरु के दो आधार

इसकी दूसरी पंक्ति याद नहीं आ रही है, परन्तु चिंता से हमारे तो रूपरंग घटते नहीं हैं । हृदय का सद्‌भावयुक्त प्रेमभाव स्वजन को यदि याद न कर सके तो वह प्रेमभाव नहीं है । हमें तो स्वजन अत्यधिक प्यारे हैं । हमारे जीवन का नूर उनके जीवन द्वारा है, परन्तु वह जब दीप्त और शोभित हो तब सही, परन्तु

जिस पर आधार हो उस आधार को कैसे छोड़ दे ? आधार को तो हृदय से लगाकर रखना है। ऊपर, नीचे आसपास सभी एक आधार है। प्रिय और प्रियजनों की चेतना (स्वजनों में) जगाने के लिए जो स्वजन मिले हुए हैं, वह दूसरा आधार है।

एक आधार ऊपर, बाहर, अंतर में है वह सूक्ष्म है। दूसरा आधार वही है, पर भूमिका अलग है। उस प्रिय में हमें ऊपर के प्रिय का स्वरूप अंतरस्थरूप से होने पर भी वैसा प्रकाशवान अनुभव होता नहीं है, यह हमारा परम दुःख है और परम संताप है, चिंता का कारण है। यह सब कौन टाले ? वह टालने की शक्ति एक प्रिय के हाथ में और दूसरे स्वजनों के हाथ में है। लड़ते झघड़ते भी हम पर का प्रेमभाव बढ़ाना। शरीर की सँभाल रखना। ता. १७ तक विवाह का काम होने से धमाल हो यह स्वाभाविक है। ता. १७ के रोज वहाँ तार करनेवाला नहीं हूँ, वह जानना। पूज्य... बा को हमारा प्रणाम कहना और पिताजी को भी।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ४-५-१९५१

प्रभुकृपा प्रार्थना से बरसती है

गत महीने का चिट्ठा देखकर तुम्हें लगा कि गत महीने का खोया है, वह 'इस महीने दुगुने लाभ से, उत्साह से भरपाई करना ही पड़ेगा।' यह पढ़कर बहुत अच्छा लगा। जिसे भगवान के रास्ते जाना है, उसे इस तरह रोज लाभ-हानि का पक्ष जाँचना ही पड़ेगा। जब जब ऐसा लगे कि हमने खोया

है तो खोया हुआ वापस पाने और अधिक कमाई करने कमर कसनी ही चाहिए । जो ऐसे पीछे हटने में भी उत्साह से फिर वापस झुकाता है, उसे एक नहीं पर अनेक अनुभव होंगे । अनुभव हुआ करेंगे कि श्रीभगवान उसे सहायता देने को साक्षात् सदा ही जागृत खड़ा ही है और दिये बिना रहता नहीं हैं । 'प्रभुकृपा के बिना प्रेरणा भी नहीं मिल सकती' ऐसा तुम लिखती हो, वह जितना सच है उतना ही सच फिर वह भी है कि जो सच्चे दिल से प्रेमभक्तिभावपूर्वक भगवान के द्वार पर हृदय से पुकारता है, उस पर प्रभुकृपा बरसती वह अनुभव करता है ।

कृपा तो प्रभु की सदा बरसती यदि,
पूरी झेलने तुम्हारी ताकत कहाँ है ?

ऐसा, 'मन को' में लिखा है और आगे लिखा है कि जैसे तेरे आधार में शुद्धि होगी वैसे प्राण, उत्साह, चेतना भी बढ़ेंगे । इसलिए हमें तो अच्छे या खराब लगते किसी भी प्रसंग में उसकी कृपा का हाथ देखना और उत्साह खोना नहीं । कैसी भी हार का प्रसंग लगे या संयोग कैसे भी विरोधी लगे या हमारी अपनी प्रकृति के नीचे के नीचे स्तर के दर्शन हो और वह हमारे में हमारे पर विजय प्राप्त करती लगे तब भी अथवा तब तो खास, श्रीभगवान के चरण में हमारा सिर सच्चे दिल से झुकाकर उसे दुहाई देकर उसकी सहाय माँगनी तथा वही हमें उठाता ऐसा अनुभव करना है ।

अदम्य आशावादी निर्धारण से सफल हो सके

इस मार्ग तो अनेक यकायक कसौटी से पार करवाता है, पर जीवन में जब जब अधिक से अधिक घोर अंधेरा लगे, तब भी जो इस अंधेरे के बाद उषा के भव्य रंग दिखनेवाले ही है, ऐसी दृढ़ श्रद्धा रखे और उस अंधेरे में भी उषा की बहुत ही धुंधली किरणें देखता है वह सफल होता है । भगवान तो निराधार का आधार हैं । इसलिए जिसने एक बार **इस** रास्ते जाने का मरजिया निर्धारण किया है, उसे वह मेरा प्रिय कैसे भी कठिन दिखते संयोगों में भी कभी नहीं छोड़ देता । सोना जैसे गले बिना यानी धधकती भट्ठी में तपे बिना शुद्ध नहीं होता है वैसे ऐसे प्रसंगों श्रीभगवान उसकी कृपा से देता है और उसके बिना **जीव** की शुद्धि होनी बहुत कठिन है ।

'मन को आघात देनेवाले के दो प्रसंग न बने होते तो मैं इतनी शीघ्र जागृत न होती' । ऐसा भी तुम्हारे लेख में है । इससे हमें तो किसी भी संयोगों में भगवान का शुभ हेतु परखना है और उस अनुसार दृष्टि, वृत्ति और भाव रखने हैं, यह जानना ।

'पुनित प्रेमगाथा' में पृ. १८१ 'वृत्तिओ में', पृ. १८१ से पृ. १८७ तक का लेख है, वह ठीक से पढ़ जाना । उसके बाद पृ. २२९ 'प्यारों के पद में' पृ. २२९ से एकदम नीचे से शुरू होकर पृ. २३१ पर का 'आतुर प्रेम' है, वह पढ़ना । बाद में पृ. १६६ में नीचे 'प्रेम की छटपटी' वह पृ. १७७ के अंत में पूरी होती है, वह भी पढ़ जाना ! बाद

में पृ. १३१ 'प्यारे को आर्तनाद' वह पढ़ जाना । पृ. ९४ 'अंतरंग प्रेम' पृ. ९८ पर पूरा होता है, वह भी पढ़ जाना ।

निराशा - जीवनपरीक्षाकाल

(शिखरिणी)

निराशा में जब जीवन में श्रद्धा दृढ़ होगी,
निराशा में जब जीवन में विश्वास बढ़ेगा,
निराशा में जब पद अधिक अनुराग बढ़ेगा,
हृदय में सच्चा तब जीवन जीने को ही मिलेगा ।
निराशा के जब पर्त पर पर्तों के थर बढ़े,
निराशा के जब नयन पर अधिक पटल रहे,
निराशा की जब हृदय पर आफत आ गिरे
जमाया हुआ तब रस की परीक्षा सही होगी ।

('कर्मगाथा' पृ. ५३)

'कर्म-महिमा' पृ. ४९ से ५१ तक है, उसे पढ़ जाना ।

पूज्य..... बा को मेरे सप्रेम प्रणाम और पिताजी को भी ..... को मेरे बदले बुलाना ।

• • •

कुंभकोणम् हरि:ॐ ता. ७-५-१९५१

कैलाशवाले पूज्य श्रीनारायणस्वामी ने To The Mind की प्रस्तावना लिखी है । भाषांतर श्री हेमंतभाई ने किया है । तुम्हारी कल्पना इस तरह सच है के वही पूज्य श्रीनारायणस्वामी यहाँ कुंभकोणम् आये थे ।

प्रेम की व्याख्या चढ़ती जायेगी ।

'**इस** मार्ग में तो प्रकृति का रूपान्तर करना होता है । इससे, **जीव**स्वभाव के अनुसार बरत जाएँ तो क्या हमें ऐसा मानना है कि हम जिसे पूज्य मानते हों उस पर सद्‌भाव नहीं है ? ऐसा तुम पूछाती हो । हम जानते हैं कि संसारव्यवहार में भी जिस पर हमारा बहुत प्रेम हो, सच्चे दिल का हो, उसकी ओर से बहुत सहन करना पड़ता हो तो भी हम ऐसा ऐसा स्वीकार कर लेते हैं, उसी तरह इसमें है ।

इसमें प्रकृति का रूपान्तर होनेवाला है, यह बात सत्य है और प्रकृति कहा हुआ स्वीकार करने में अड़चनरूप हो यह संभवित है, किन्तु यदि हम में बहुत सद्‌भाव हो अथवा सद्‌भाव बढ़ता जाता हो तो उसका एक लक्षण यह है कि मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् ऐसे हमारे पूज्य जन के सम्बन्धी के प्रेम के कारण कम से कम विरोध करते जायेंगे और उनका रूपान्तर (दिव्य) होता जायेगा । हमारे प्रेम की व्याख्या संसारी मान्यता के प्रेम की व्याख्या से उत्तरोत्तर बढ़ती और ऊँचे उठती जानी चाहिए । जो सद्‌भाव या प्रेम से हमें आज तक होता था कि नहीं, मुझ में इसके लिए सद्‌भाव है और उसका कहा करता हूँ ।' वह प्रेम हमें अधिक से अधिक अधूरा, कम लगता जायेगा और हमें अंसतोष होगा कि मुझ में अभी सच्चा सद्‌भाव प्रकट हुआ नहीं अथवा चाहिए वैसा सद्‌भाव प्रकट हुआ नहीं है, पर उसका अर्थ फिर ऐसा नहीं कि हमारे में सच्ची भक्ति या प्रेमभावना प्रकट होगी ही नहीं । तो तो साधना का पूरा उद्देश ही मारा जाय । उत्तम प्रकार का ज्ञानपूर्वक प्रेमभक्तिभाव प्रकट हो, वह तो साधक का लक्ष्य है ।

सच्चा शरणभाव हुआ यानी जग जीता

संपूर्ण प्रेमभक्ति का ज्ञानपूर्वक का शरणभाव आये बिना **जीव** का **जीव**रूप पिघलेगा नहीं । **जीव** तो शरणभाव आने के बाद ही चेतना का संपर्क हम में स्वयं को होता है । हम अभी चेतना का स्वीकार कर सके हुए नहीं हैं इससे, हम पलपल जागृति और सावधानी रख रखके मन को मठारते रहेंगे और ऐसा सज्ज होकर किया करेंगे तो किसी दिन अवश्य अंत आयेगा । चलते चलते ही पथ काटना है और **इस** पथ का तो अंत नहीं है, तथापि साधना की अमुक कक्षा तक पहुँचने के बाद, यानी कि संपूर्ण, सही, सचमुच शरणभाव प्रकट होने के बाद हमें कुछ भी कठिन नहीं लगनेवाला है । इसलिए वहाँ तक हमें प्रेम की भावना की राह देखनी रही ।

भगवान को मकोड़े की तरह चिपको

इस मार्ग की सही समझ क्या हो सके उसके बारे में लिखने का हुआ उस पर से हमें अपनी दशा समझ लेनी चाहिए । मुझे किसी को निराश नहीं करना है, परन्तु स्वयं अपने को योग्य ढंग से सचमुच ढंग पूरापूरा समझ सको तो ही **इस** मार्ग का काम सरल हो सके । जिसे उत्साह जगा हुआ है और जिसे जाना ही है, वह किसी से भी निरुत्साह नहीं हो सकता । मकोड़ा यदि सचमुच चिपकता है तो टूट जाय तो भले, किन्तु उसका अंकोड़ा तो छोड़ता ही नहीं । उस तरह हमें श्रीभगवान के चरणकमल के चिपके रहना सीखना । **इस** मार्ग में जिसे चिपके रहना नहीं आता है, वह कुछ नहीं सीख सकता है ।

अदम्य तनदिही, उत्साह आदि चाहिए

जीवन की धन्य घड़ी कब आ पहुँचेगी यह कोई कह नहीं सकता जिसे कुछ भी वस्तु का मर्म जानने की सचमुच आतुरता जागी हुई है और ऐसा उत्साह जिसे लगा हुआ है, वह निरुत्साह हो भी कैसे सकता है ? हजारों बार प्रयोग करने के बाद भी निष्फल होने पर वैज्ञानिकों अपनी पकड़ी हुई बात को छोड़ नहीं सकते और अनेक निष्फल जाते प्रयोगों से अपने प्रयोगों में सफलता मिले इस प्रकार की समझ प्राप्त करना रखते हैं तो हमें तो उससे सवाया नहीं बल्कि अनेकगुना बढ़कर होना है तो ही हमारा काम होगा ।

जीवनप्रसंग गुरुरूप है

और संसारव्यवहार के प्रत्येक प्रसंग वह तो हमें स्वयं की सच्ची दशा की समझ देनेवाले गुरुरूप से है । जैसे दर्पण में मुँह देखें और हमारा रूप दिखे वैसे प्रसंग हमें अपना रूप दिखा देता है । मन में जो विचार की लहर उठती है, उस अनुसार हम कैसे हैं वह हम जान सकते हैं । इस तरह जो सचेत हो होकर, रह रहकर स्वयं को पहचानना चाहता है और पहचानकर जो मठारना चाहता है और उस तरह जो अपने को मठार मठारकर खोजने यत्न करता है, उसे अपना अंतर समझ में आये बिना रहता नहीं है । वस्तुमात्र से अलग होने की कला यह तो साधना का एक बड़े से बड़ा अंग है । यदि वह प्राप्त न हो सका तो साधना कभी सफल नहीं हो सकती है ।

तटस्थता आदि से नींव पक्की करो

तटस्थता, शांति, समता, प्रसन्नचित्तता, क्षमा, उदार और विशाल हृदय, परम सहिष्णुता ये सब प्रथम भूमिका के रूप में साधना माँग लेते हैं । नींव की चुनाई ऊपर अनुसार की भूमिकावाली यदि न हुआ करें तो साधनारूपी मकान की नींव ही नहीं हो और नींव न हो तो मकान हो ही कैसे ? इसलिए, हमें तो पहले नींव की तैयारी की व्यवस्था करनी है । जिसकी नींव पक्की उसका मकान भी पक्का । हमने तो यहाँ आश्रम में रेत में नींव डाली है । इसलिए वह नींव ठिकाने बिना की गिन सके । जमीन की परत ही ऐसी थी कि दूसरा उपाय न था । इस लेख का भावार्थ समझने जैसा है ।

कष्ट का तो सत्कार कर लेना

दिल में जब उत्कट प्रकार की सही सचमुच की पूरी आतुरता जगती है, तभी ऐसी आतुरता में प्रसव की वेदना प्रकट होती है और ऐसी प्रसव की वेदना में जब अत्यधिक, अत्यन्त कष्ट होता अनुभव हो, तब जो जन्म होता है, वह जीवन्त है, ऐसा उसका भरोसा होता है । इसलिए, इस अनुसार जीवन में होता अनुभव करें तब तो उलटा खुश होना चाहिए कि अब जो कुछ जन्म लेगा वह जीवित जन्म लेगा, इतनी बात निश्चित है । संसारव्यवहार में पाँच पैसे पाने के लिए भी लोग कितना सारा कष्ट उठाते हैं ! मेरी माँ, रोज के आठ आना कमाने के लिए मेरी भाभी के साथ दो मन अनाज पीसती और हमारा पोषण करती थी । इसलिए, प्राणवान रहना और साधना को प्रेमभक्ति से चिमटे रहना ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १२-५-१९५१

उत्कट प्रेमभक्ति सर्वशक्तिमान है

तुम्हें मेरे पास आने का मन हो ऐसी तेरी हृदय की भावना की मैं कदर कर सकता हूँ, समझ सकता हूँ। नडियाद में एक बार श्मशान में मैं सो रहा था, तब मुझे हेमन्तभाई आदि को मिलने का मन हुआ। कहीं कुछ पहना न था। मात्र नाम की लंगोट जैसा कटि पर वस्त्र था। उसे पहनकर ऐसे का ऐसा रात्रि को बारह बजे नडियाद से बैठकर नवसारी गया था। वह पूरा प्रसंग तेरा पत्र पढ़कर याद आया। घर में किसी को कहा न था, परन्तु ऐसे प्रेम की कदर और समझ तब के मेरे कर्मसाथियों में न थी, इसका भी मुझे पता चला था। तुम मुझे मिलने मेरे पास आने का दिल करती हो, इससे हृदय में भाव उमड़ते हैं और भावना भी अत्यधिक होती है। हृदय का उत्कट प्रेमभाव यह तो खुराक है, इसके द्वारा तो जीवन थोड़ा बहुत भी निभता है, जीवन में रस उसके द्वारा ही है । इसलिए ऐसी हृदय की प्रेमभावना प्रकट हो और हमारी परिस्थिति उस भावना को संतोष पाने के लिए सानुकूल न हो, उस समय पर ऐसी उत्कट प्रेमभावना की मदद लेकर उसका मननचिंतन अधिक से अधिक उत्कट प्रेमभाव से करें तो रचनात्मक दशा में रह सकें।

जिसे हम सद्गुरु कहें, मानें और उस सद्गुरु के प्रति हृदय का उत्कट प्रेमभाव हो तो उसका मननचिंतन हमें हुआ ही करना चाहिए। हृदय की उत्कट प्रेमभक्ति द्वारा मीरा ने

साक्षात् श्रीकृष्ण को अपने साथ बातें करते अनुभव किया, यह कोई गप नहीं है, सत्य है । उत्कट प्रेमभावना का जोश अत्यधिक है । इसलिए हम अपने हृदय के साथी को, जीवन के साथी को, ऐसे सद्गुरु को मन में मन के सम्मुख रख रखकर उन्हें आगे ही आगे करके यदि सकल कर्म किया करें तो उसका साथ हमें मिला ही करेगा । तुम प्रयोग करना इससे तुम्हें अनुभव से समझ आ जायेगा । यह तो मात्र प्रयोग करने का तरीका तुम्हें लिखता हूँ ।

माँ - हृदय की भावना

यहाँ हमारे पास श्री हसमुखभाई का हरि:ॐ रहता है । वह मेरे साथ रहता है, हँसता है, खेलता है, कूदता है, अनेक बार धौलें लगा देता है, दातों से काट लेता है और पीठ में सोटी का मार भी मारता है और छाती से भी बहुत चिपकता है, हाथ से और नाखून से शरीर के किसी किसी कोमल भाग को ऐसा तो सखत दबाता कि बहुत दु:ख हो, तब भी वह बाललीला हमें बहुत पसंद है, क्योंकि वैसी माँ-हृदय की भावना हमारे दिल में है । दूसरे लोगों को यह मूर्खता लगे । छोटा बालक खेल में अपनी माँ को मारता है तो इससे माँ को बहुत हर्ष होता है, यह सत्य पुरुष के दिल में आना और उस भावना को पहचानना यह बहुत कठिन बात है ।

साधना की भावना का गुरु में प्रतिघोष

हरेक प्रकार की भावना को उसे उसे योग्य स्थान पर ठीक योग्य ढ़ंग से समझना और उसे अनुभव करना और

उसमें से तथ्यांश खोजना, यह काम सच्चे साधक का है । हमारे में भावना नहीं है पर सामने से भावना मिलते, वह हमारे में दोगुनी, तीनगुनी, चारगुनी ऐसे प्रकट हुआ करती है और उसकी प्रतिध्वनि उठती है, इससे हृदय-मन की भावना हमारे बारे में किस किस तरह किसमें कितकितनी रहती है और किस तरह प्रकट होती है, उसकी भी जानकारी होती रहती है । हम किसी पर क्रोध करते हैं तो प्रत्यक्ष रूप से वैसा होने का कोई भी कारण न हो और प्रत्यक्ष रूप से वह क्रोध बिलकुल अयोग्य लगता हो, परन्तु यदि वह व्यक्ति अपने मन में अपने बारे में सोचे और यदि कैसे कैसे विचार हुए थे, उसका पूरा भान प्रकट करे तो उस हुए क्रोध की सत्यता भी उसे लग जाय । इसलिए हम जो कुछ करते हैं, वह सब सत्य ही करते हैं ऐसा दावा नहीं है, परन्तु यदि सद्‌गुरु माने हो या किये हो तो उसका वैसा वैसा भाव किसलिए है, वह स्वयं अपने में गहरे उतरकर सोचकर यदि साधक सोचे तो उसका सही कारण अपने बारे में मिल जाय । जीवन के सद्‌गुरु के बारे में प्रेमभक्तिभरा, हृदय की भावना से छटपटाता, सतत निरन्तर, ज्ञानपूर्वक का चिंतन यदि उससे होते प्रत्येक कार्य में न हो जाय तो सद्‌गुरु की प्रेरणात्मक मदद का अनुभव वैसे साधक को कभी नहीं हो सकेगा ।

साधक को क्या क्या करना चाहिए

जीवन का विकास यदि साधना हो तो उठना पड़ेगा, चलना पड़ेगा, दौड़ना पड़ेगा, कभी कभी टकराना भी पड़ेगा और मुठभेड़ भी करनी पड़ेगी, अपने में रही हुई चंचलता को

टालनी पड़ेगी, अनेक बार भौंचक्के जागना पड़ेगा, आलस को तो रजमात्र भी रखना पुसायेगा नहीं । किसी भी प्रकार की पड़े रहने की आदत जिसे हो और यदि वह छोड़ न सकता हो तो वह साधना नहीं कर सकेगा । **सलामत स्थिति वह तो बँधा हुआ पानी है, वह तो दुर्गंध मारेगा और मैला होगा ही । इसलिए, साधक के लिए सलामत स्थिति बिलकुल भी योग्य नहीं है । पलपल जो चेतता रहता है और सलामत स्थिति होते उसमें से उठा करे, चलना करे वही साधक है ऐसा मानना और समझना । 'साधु तो चलता भला' उसका अर्थ बहुत सूक्ष्म है ।**

उलझन के हल का एक तरीका

जब जब कोई समझ न पड़े, उलझन हो या कोई प्रश्न आ पड़े तब 'जीवनसंदेश', 'जीवनकदम', 'जीवनसंग्राम', या ऐसे पुस्तक को खोलकर कुछ पढ़ने होते तुम्हें प्रश्न का हल मिल जाएगा । तुम्हें इस तरह पढ़ते पढ़ते जीवन के रोज के उद्‌भव होते प्रश्नों के बारे में हल मिल जाता है । इससे, बहुत आनंद होता है, तथापि समझ या हल प्राप्त करने का वह तरीका उत्तम और योग्य तो नहीं ही है ।

स्त्रीहृदय की साधना में योग्यता

साधना के लिए स्त्रीहृदय वह बहुत बहुत आवश्यक है । स्त्रीहृदय में रहे हुए श्रद्धा और विश्वास, भरोसे की भावना और उसके अलावा, किसी को चिपके रहने की जो नेक दानत वह पुरुषहृदय में नहीं होती है । संसार और धर्म को स्त्रीहृदय ने

जीवित रखा हुआ है । संपूर्ण विश्व में व्यक्तिओं को स्त्रीहृदय ने भावना का सिंचन किया हुआ है । दया, प्रेम, करुणा–ये स्त्रीहृदय की **जीवों** को अमूल्य भेंट हैं । स्त्रीहृदय की भावना के बिना मनुष्यजीवन कठोर बन गया होता । आज स्त्रीहृदय की योग्य कदर और योग्य समझ समाज में नहीं है । उसी तरह से पुरुषहृदय की सच्ची समझ स्त्री में भी नहीं है, क्योंकि समाज में सद्‌भावना की जीतीजागती ज्योति जलती नहीं है ।

लक्षण से सच्चा माप

जहाँ हृदय की सचमुच सद्‌भावना है, वहाँ कभी भक्ति प्रकट हुए बिना नहीं रह सकती । यानी कि मैं तो जो कुछ होते, उसके उसके लक्षण से प्रत्येक जन की उस समय पर्याप्त पहचान कर लेता हूँ । लक्षण तो मेरे मन सबसे बड़ा मापदंड है । लक्षणों से ही जो भी कुछ परख में आता है ।

भगवान का अनुभव किस तरह हो ?

भले ही अनेक प्रकार की धमाल हुआ करती हो, परन्तु धमाल के समय हमारे दिल में, हमारे अपने मन में और हृदय में सद्‌भाव यदि निरन्तर मननचिंतन चला करे तो हम स्वयं तो अवश्य स्वस्थ रह सकें । हम तो तेरे साथ ही हैं । हमारी भावना तेरी भावना द्वारा ही उत्तेजित हो सकने की है । दीपक में जितना तेल डालेंगे उतने माप में दीपक की बत्ती जला करेगी । जैसे खोजे बिना कुछ मिलनेवाला नहीं है, अपने आप कुछ भी मिलनेवाला नहीं हैं । वैसै सद्‌भावना को प्रकट करके अधिक से अधिक दिल को उत्तेजित दशा में प्रकटकर सद्‌गुरु के हृदय में यदि पिरोयेंगे और ममता, राग, मोह इत्यादि **जीव**

के प्राकृतिक लक्षण उसके चरणकमल में भेंट रूप में देंगे और जो भी कुछ किया करें उसके आदि, मध्य और अंत में जो भी सब समर्पण किया करेंगे तो वह जीताजागता है ऐसा अनुभव साधक को होगा ।

करके देखे बिना सहीगलत की जान होती नहीं है, पूरापूरा योग्य ढंग से हृदय से हृदय में करके देखना चाहिए, और करके देखते समय भी कैसी कैसी दशा रखनी चाहिए वह भी सूचित किया है । और उस अनुसार ही करने में दिल को पिरो देना और उसमें ही बस मस्ती अनुभव करना, उसमें ही जीवन का लाभ है और जीवन का आनंद है, तो ही जीवन का सही नशा वह क्या है उसका अनुभव होगा । जो **जीव** में सतत एक प्रकार की भावना निरन्तर मन में रमा करती हो तो उसकी चमक और दमक व्यवहार में प्रकाश हुए बिना नहीं रह सकती है । ऐसे का पूर्ण कायापलट हो जाता है । जो कोई करने लगेगा उसे वह समझ में आयेगा और अनुभव में प्रकट होगा, और तटस्थतापूर्वक का विवेक उसमें जाग गया होना चाहिए कि जिससे वह कोई भी परिस्थिति में या किसी आनंद की स्थिति में फँस ना पड़े ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १४-५-१९५१

लगनी लगाओ

यदि हृदय में जीवन के बारे में भाव जागा तो सभी जागा समझना । बैठे होगें वहाँ से उठ जायेगा और सोते होंगे वहाँ से जाग सकेंगे । जिसे सचमुच हृदय का उत्कट प्रेम जागा

नहीं है, वह यदि बहुत बहुत साधन करेगा तब भी उसे जीवन के बारे का प्रेम सही रूप से कामयाब हो वैसा जागनेवाला नहीं है, जागने के संस्कार मात्र पड़ेंगे और वैसा भाव यदि जागा नहीं है तो सद्गुरु का महत्त्व और रहस्य भी पूरा समझ नहीं सकेगा । इसलिए, जीवनविकास विषय में लगनी लगानी है । मनुष्यजीवन अत्यधिक अनोखा और अनमोल है । इससे, तुम चेत जाओ इतनी ही मन में बहुत बहुत आतुरता है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २७-५-१९५१

अमर आशा

आशानिराशा वह भी द्वन्द्व का एक युग्म ही है न ? जीवन का वह भी एक क्रम है । कभी आशा तो कभी निराशा । सुबहशाम, सुखदुःख वे जैसे द्वन्द्व के युग्म हैं और जीवन में रहेंगे, वैसे आशानिराशा का भी समझना, किन्तु जिसका ध्येय जीवनविकास के लिए है, ऐसे को तो हजारों और लाखों निराशाओं बीच आशा ही व्याप्त रहेगी । कितनी सारी निराशाओं में महात्मा गांधीजी ने काम किया था । तब भी उनके हृदय की आशा की डोर कभी भी ढीली न पड़ी थी । ऐसों की आशा की डोर कभी यदि ढीली पड़े तो समझना कि अब उसका जीवन टिकेगा भी नहीं । इसलिए, साधक की आशा तो ऐसी जोरदार, प्राणवंत और चेतनवंत होनी चाहिए कि वह कभी डिगे तो नहीं ही । मेरु डिगे पर मन ना डिगे ऐसा निश्चल, अटल मन को किये बिना जीवन का विकास नहीं हो सके । ऐसा साधक तो जिसमें तिसमें से आशा के तन्तु ही बुना करेगा, उसकी आशा अमर

रहा करेगी । आशा के जोर पर तो उसका जीवन निभता चला तो जाता है । 'कलम' ट्रिचि गई है और शरीर अभी नरमगरम चलता है । गर्मी बहुत पड़ती है । सभी को सप्रेम प्रणाम ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १९-५-१९५१

नामस्मरण से रोग जाय

पैर की वेदना **इस जीव** को तो कब से शुरू हो गई है । तुम्हें सँभव हो उतने उपचार करने चाहिए । शरीर को बेकार ही हैरान करके सताने में धर्म नहीं है । भगवान के नामस्मरण में जिसे पूरा विश्वास और श्रद्धा प्रकट हुए हों वैसे भी दवा कभी लेते जाने हैं । नामस्मरण से रोग मिटता है वह सच है, पर वैसी श्रद्धा पकी हुई होनी चाहिए । **सदा ही भजन के भाव में मस्त रहना कि जिससे कुछ स्पर्श ना कर सके ।** बड़ो को सप्रेम बहुत प्रणाम ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २२-५-१९५१

अपनी विपत्तिओं का स्वयं ही कारण

पैर में डोक्टर की दवा से थोड़ासा ठीक है, वह जाना है । जीवन बारे में जिसे प्रेमश्रद्धा जागते हैं, वह गिरते ठोकरें खाते घबराते तो नहीं और फिर उठता है । गिरने-ठोकरें खाने से वह अपनी प्रकृति को सच्चे ढंग से पहचानने लग जाता है और गिरने ठोकरें खाने का और टकराने का मूल कारण स्वयं में ही है और वैसे कारणों को मुख्य मूल से नाबूद करने के लिए वह कटिबद्ध होता जाता है और कभी पस्तहिंमत होने

पर प्रभु को जो पुकार करता है, उसके कृपाबल का उसे अनुभव भी होता जाता है ।

साधना जीवन में प्रकट होनी चाहिए

यों चढ़उतर का क्रम तो प्रत्यक क्षेत्र में है । आध्यात्मिक मार्ग में तो अनेकानेक शिखर चढ़ने हैं । अभी वैसे चढ़ने के मार्ग पर हमने तो पैर भी नहीं रखा, अभी तो तलहटी के मैदान के दाँव-पेच की आँख-मिचौनी के खेल में फँसे हुए हैं । दिल की आतुरता तेजस्वी होते ही सब कुछ हो सकनेवाला है, यह जाननाजी । हिंमत, साहस और फना होने की ताकत पर ही सब कुछ का आधार रहा हुआ है । जेसा जो है वैसा वह है ऐसा नहीं चलेगा । जो है वह भले हो, परन्तु अंदरुनी जो चेतन है उसमें तो सब कुछ लाँघने के लिए दिव्य, रम्य और भव्य पंख रहे होते हैं उसका बल अनंत है, उसका सहारा मिल जाने से सब संभव होता है, इससे तो साधक का आशावाद सदा ही अमर बना रहता है । साधना से समझ प्रकट होनी चाहिए । संसारव्यवहार के अनुभव से समझ प्रकट होती है । इससे साधना में से विवेकयुक्त समझ यदि न प्रकट हो तो वह साधना मिथ्या समझे । साधना में से जो समझ प्रकट हो उसका वर्तनव्यवहार में हमें उपयोग किया करना है । उपयोग में आये वह काम का और साधना भी उपयोग में आने के लिए ही है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २६-५-१९५१

जो किसी को दंशता है और जो स्थिति दंशती है वैसा **जीव** उस स्थिति में नहीं रह सकेगा, पर जिसे दंश लगता ही नहीं, उसका तो उद्धार ही नहीं है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २८-५-१९५१

आध्यात्मिक अनुभव कब काम के ?

किसी व्यक्ति ने हमारा अपमान किया और तुम एकदम गुस्से में आकर दो वाक्य बोली, वहाँ तो आप सामने दिखे ऐसा तुम लिखती हो। प्रत्येक अनुभव का उपयोग जीवन के उपयोग में आये और जीवन की समझ की कक्षा ऊँची और ऊँची होती जाय तो वह अनुभव सच्चा। अनेक लोगों को ऐसा कहते सुना है कि उन्हें अमुक महात्माओं के अनेक प्रकार के अनुभव हुए, परन्तु उनके जीवन की समझ तो बिलकुल जैसी सभी की होती है वैसी की वैसी होती है और उनकी रहनी-करनी व्यवहार में कोई अन्तर नहीं पड़ता आता है। इसलिए वे जिस अनुभव की बात करते हैं, वह अनुभव यदि जीवन में प्रेरणा देकर रहनसहन व्यवहार में ऊँचे ले जानेवाला यदि न हो तो वैसे अनुभव का कोई अर्थ नहीं है। किसी को अनुभव जागृति में हो और किसी को स्वप्न में हो इन दोनों स्थिति में अन्तर रहता है।

हृदय का मिलन सर्वश्रेष्ठ

फिर तुम्हें **इस जीव** का स्वप्न आया कि मैं आया हूँ और सब मुझे मिलने आते हैं। तुमसे अकेले से आया नहीं जायेगा और बिलकुल आखिर में तुम्हारी बारी आई। तुम्हारे मन में इस बाबत का पड़ा रहा असंतोष इस प्रकार से व्यक्त होता है। हृदय से जिस किसी को अपना जो मानें और जिसने हृदय में उसे बसा लिया है, उसे शरीर से मिलने की जरूरत भी नहीं रहती है। हृदय से एक हो जाएँ, तब हृदय का जो अनुभव है, वह अनुभव तो अमूल्य है, फिर यदि हम सच्चे

स्वजन बन गये हों तो जो कोई मिलने आया करे उसे पहले मिलने दें और अंत में हम जाएँ । दूसरे सब बातें करे और वैसा उनको मौका मिले और वैसा होने से हमें बात करने का मौका या समय न मिले, तब भी हमारे मन को हचकोला नहीं आना चाहिए । ऐसी हमारे मन की दशा होनी चाहिए ।

लाचारी से अपमान न सहना

कोई अपमान करे और ज्ञानपूर्वक पी जाएँ और मन से ऊँचेनीचे न हों तो तो वह हमें सबल बनाता है । लाचारी से भोगा हुआ अपमान अधिक निर्बल बनाता है । बंद मुँह से सहन किया अपमान और उससे होती वेदना वह हमें लाचार और पामर बनाता है । इसलिए जीवन का विकास जिसे करना है, उसे तो ज्ञानभक्तिपूर्वक जो भी सब स्वीकार करने का वैसा न हो सके तो जहाँ अन्याय और अपमान सचमुच हुए हैं, वहाँ वे कभी सहन न कर लें । उसका सामना करते समय जो सहन करना पड़े, वह प्रेम से सहन कर लें । सामना करने में दिल की संपूर्ण सच्चाई, संपूर्ण नम्रता, कहीं भी उद्धता या स्वच्छंदता न हो तो ही ऐसा किया हुआ सामना शोभे भी सही । संपूर्ण नम्र से नम्र जो है, वह सही समय आने पर योग्य सामना भी कर सकता है । सद्‌भाव जिसके दिल में है, ऐसे **जीव** ऐसे सामना करने की कदर भी कर सकते हैं ।

ज्ञानभक्ति से स्वीकार या सामना करना

इस जीव को नडियाद में ज्ञाति के प्रचलित अनिष्ट रीतिरिवाजों का प्रभुकृपा से सामना करना पड़ा था । समाजसेवा का कार्य करनेवाले स्वयं के स्नेहीजन और समाज से अलग

रहकर या अलग हो जाकर अपने समाज से दूर अलग स्थान पर काम करते देखें हैं । वैसे सेवकों को ऐसे प्रसंग प्राप्त नहीं होते हैं । जहाँ जहाँ अनिष्ट होता है, वहाँ सामने होने की वृत्ति नहीं, परन्तु हमें जो करना हो, वह उसके योग्य धर्म के पालन में कैसे करना चाहिए, ऐसा सोचकर करने का भान था । इससे ज्ञाति के अनेक प्रकार की जो लीक के रीति-रिवाज पड़े हुए हैं, उसका उस भावना से सामना करना पड़ा था । संसारव्यवहार में गरीब का किया हुआ वैसा कोई सहन नहीं कर सकता है । गरीब को तो सभी दुतकारते हैं और उसकी अवगणना भी करते हैं । इसप्रकार, अपने समाज में रहकर अपने वहाँ आते प्रसंगों के समय पर ज्ञाति के चालू अनिष्ट रिवाजों के सामने सामना करना और तब भी ज्ञाति के सभी की सद्भावना और भावना जीवित रहना ये दो एकसाथ होना वह बहुत दुर्लभ है । इसलिए हमें सचमुच में पूरी तरह नम्र रहकर अपमान का या तो ज्ञानभक्तिपूर्वक का स्वीकार करना या तो सामना करना, पर सामना करते समय पर हृदय में उन उनके प्रति सद्भाव की भावना तो बहुत बहुत जीवन्त होनी चाहिए ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. १-६-१९५१

सद्भाव रखकर शुभदर्शी बनो

जीवन में सद्भाव से निभना और निभाना यह कोई मामूली बात नहीं है । महा सद्भाग्य बिना प्राप्त हुआ अमृत भी मनुष्य को जहर के समान करके विनाश कर सकता है और समझदार, विवेकी और चतुराईवाला **जीव** प्राप्त हुए जहर

को उसकी मात्रा बनाकर खा-पचाकर उसमें से मुक्ति पा लेता है । जिसे सर्व में से उलटे-सीधे सभी प्रसंगों से, सुन्दर ही देखना-अनुभव करने की कला जीवन में मिलती है, वे **जीव** धन्य हैं और आशा, सुख, कल्याण आदि भावनाओं को अपने जीवन में उत्पन्न करके दूसरों के जीवन में वह वह भावना को प्रेरित कर सकता है । वहाँ सबको सप्रेम बहुत बहुत रामराम ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २०-६-१९५१

हमारे ही दोष से हमारे संयोगों

.....की जीवनकथनी से तुम घिर गई थी । कैसा भी करुण और दुःखी जीवन बना हो तो उसका मूल कारण अपने में ही रहा हुआ वह निश्चित समझना । **दूसरों के कारण कोई दुःखी होता है या जीवन की करुणता प्रकट होती है और जीवन असह्य बनता है ऐसा समझना, मानना या जानना यह निरा अज्ञान है ।** दूसरे इस प्रकार से जो जो निमित्त बनते हैं या होते हैं, उसकी भूमिका या वैसे संस्कार हम में हैं, इससे ही वह वैसा बनता है ।

किसी से घिर न जाना

यह समझ अनेक बार तुम्हें पत्र में लिखी हुई है । मेरे लेख में तुमने पढ़ा है । तब भी ...बहन की कथनी से तुम्हें इतना सारा आघात लगा है, यह ऐसा सूचित करता है कि तुम्हें अभी सही—समझ बुद्धि की भी—सही रूप में प्रकटी हुई नहीं है । फिर, तुम्हें आश्वासन मैं क्या दे सकता हूँ ? जिसे उठना है, चलना है और जीवनमार्ग में अनेक आँट-साँटों को

लाँघना हैं, उसे कुछ भी किसी से घिर जाना—धक्का मारमार के—छोड़ना ही होगा । तुम्हें मैं क्या आश्वासन दे सकता हूँ ? तुम्हारा पत्र अब जब जब मिलेगा, तब तुम्हें लिखने का रखूगा वह जानना । उस समय पर जैसा लिखने का लगेगा वैसा लिखा जायेगा । आज कुछ अधिक नहीं लिखता हूँ । पाँचसात दिन बाद 'कलम' अधिक आरामदायक होगी तब वैसा हुआ करेगा । **भगवान का नामस्मरण खूब किया करना, उसके बिना मेरा संपर्क बेकार है, वह मानना । भगवान बलवान हैं वैसी भावना जिसमें और उसमें रखा करना ।**

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २५-६-१९५१

साधक सद्‌गुरु के प्रति ही आसक्त बने

बहन... के लिए तुम्हारी आसक्ति बहुत अधिक है । उतनी आसक्ति यदि हमारे लिए तुम्हें हो तो कितना उत्तम ! कितने दिनों तक सतत ....बहन में ही मन गुत्थी बनाकर उलझा रहा किया ! जिसके बारे में राग, मोह, आसक्ति, प्रेम हो, उसके विचार अवश्य आया करे । जिसमें आसक्ति विशेष उसके बारे में और उसमें मन अवश्य रहा करे । इसलिए तुम्हारा प्रेम (मोह, भावना) हम से अधिक उस बहन में अनेकगुना अधिक है, वह बात सिद्ध हो गई । जिस प्रकार की आसक्ति, उस प्रकार का मन मोड़ लिया करे । इसलिए तुम्हारे मन ने जो मोड़ लिया, उसमें कुछ भी हिसाब बिना का नहीं था । गणित की गिनती अनुसार ही हुआ, उसी अनुसार होता है, परन्तु तुम्हें अभी सच्ची समझ प्रकट हुई नहीं है उतनी बात भी निश्चित ।

निश्चय करके विचार सुधारो

विचार आये पर उसके सामने हमें यदि सही समझ जाग गई हो तो उस अनुसार के सामने विचार निश्चयपूर्वक रखने चाहिए तभी दूसरे विचारों का जोर टूट पड़े । एक विचार प्रकट हुआ कि उसका समतापूर्वक विचार करके, वह रचनात्मक है या नकारात्मक वह जानकर, यदि वह नकारात्मक हो तो जीवन के बारे में योग्य प्रकार समझ के आधार पर उसका सामना करके, उस विचार की अयोग्यता को सिद्ध करके उसके सामने उसे योग्य प्रत्युत्तर मिल सके और मन उस बारे में शांत हो ऐसे विचार हमारी उदय हुई जीवन की समझ से प्रकट करने चाहिए । समुद्र की लहरों में टूटे जहाज की तरह इधरउधर टकराये यदि वैसे हम टकराया करें तो हमें किसी प्रकार का निश्चय प्रकट हुआ नहीं है, ऐसा जानना और मानना । जिसे निश्चय प्रकट होता है, उसकी दशा और दिशा और होती है । 'निश्चय के महल में बसे मेरा प्यारा' ऐसा एक भजन में गाया हुआ है । दृढ़ मरजिया निर्धारण जीवन में प्रकट हुए बिना किसी भी प्रकार का ठोस काम नहीं हो सकता है, फिर वह **जीव**दशा का हो या **आत्म**दशा का हो ।

सद्‌गुरु का प्रेम निरपेक्ष है

इतने सारे दिनों में मैंने तो मानो तुम्हें खो दिया हो ऐसा लगा था । हमारे हृदय का प्रेम तो स्वजन को सदा ही बेचैन करता रहता है । हमारी आतुरता बाँझ नहीं है उसका भरोसा है । किसी दिन किसी धन्य पल में यह सच साबित होगा,

यह बात भी निश्चित है । जीवन में जहाँ जहाँ संपर्क हुआ है, वे **इस जीव** तरफ थोड़ेबहुत या कम-बेश अनुपात में मुड़े हैं । पूज्य... से लेकर पू... कि जिनके साथ मुझे जरासा ही सम्बन्ध हुआ था और पू... को तो चारक पत्रों उनको बहुत तीखे लगे ऐसे लिखे थे, तब भी उनके संबंध से मेरे लिए तो मीठा परिणाम निकला । ऐसे जो जो कोई संपर्क में आये वे किसी किसी तरह संबंध में रहा किये हैं । खाली मिलने करने जो आया करते थे, उनकी बात अलग है, उनमें से भी अमुक **इस जीव** के प्रति ममता रखते हुए हैं । इसलिये कुछ ऐसा भगवान ने **इस जीव** में रखा है कि जिससे किसी प्रकार का आकर्षण रहा या हुआ करता है ।

जड़ता को मारकर हटाना पड़े

तुम अपने मन की दशा का स्पष्ट निखालिस निवेदन करती हो, वह तो अवश्य पसंद है, परन्तु एक ही स्थिति में मगरमच्छ की तरह पड़े रहना वह तो बिलकुल कायरता है । जीवन का झुकाव जीवन के रचनात्मक पक्ष में हमें मोड़ना चाहिए । नकारात्मक स्थिति है, ऐसी समझ पड़ने पर भी उसमें बहा करना वह तो निपट पामरता है और उस पामरता को पामरता के रूप में जानने पर भी उसमें से उठने का उद्यम यदि नहीं हुआ या नहीं किया तो फिर ऐसे **जीव** की उबरने की आशा बहुत कम है । मेरा चले तो ऐसे **जीव** को पीट पीट कर भान में ले आऊँ । मेरे गुरुदेव का डंडा जिसने देखा और अनुभव किया है, वही उसे समझ सकता है । उसे चौदहवां रतन भी कहा है और वह सचमुच ही रत्न है ।

हिस्से में आया काम करके स्व-कार्य करना

अब तुम भौंचक्के जागकर.... बहन को भगवान को सौंप देना । तुम्हें जो करना हो, उसे करने में लग जा । दूसरों का कुछ काम करने का हमारे हिस्से में आया हो तो वह करके निश्चिंत होना । हिसाब मिलाकर व्यापारी जैसे सुख का अनुभव करता है वैसे हमें किसी के लिए हिस्से में आया हुआ काम प्रभुप्रीत्यर्थ करके वह भगवान को समर्पण कर दें । जैसे किसी की परायी पूँजी हम वापिस दे रहे हों वैसे ।

भगवान पर भरोसा रखकर अंतर से प्रार्थना करनी

समर्पण उसका नाम कि जो समर्पण किया हो, उसके बारे में कोई भी आगेपीछे के विचार, समर्पण करने के बाद, हमें नहीं होने चाहिए तो वह योग्य प्रकार का उत्तम समर्पण गिन सके । जब बहुत विचारों के हमले हों, तब बहुत वेगपूर्वक और प्रेमभक्ति से भगवान का नाम लिया करना । विचारों का बल हटा देने भगवान को आर्त और आर्द्रभाव से प्रार्थन। करनी पैर के नीचे अंगारा चिपकने पर हम कैसे चीख उठते हैं ! उसी तरह हमारे हृदय से प्रार्थना का सूर आरपार निकलना चाहिए । पैर के नीचे अंगारा चँपाते उस समय मन अपनेआप एक दशा में होता है, उस तरह हमारी नकारात्मक स्थिति यदि हमें चुभे-साले तो उसका दर्द प्रकट हुए बिना रहता नहीं है और दर्द प्रकट हो, तभी आर्द्र और आर्त प्रकार की प्रार्थना होती है ।

भगवान तो हजार हाथवाला है, उसे हजारों आँखें हैं और हजारों कान हैं, वैसा उसका रूपक है, तब भी वह सच्चा

है । हमारे भगवान पर का भरोसा अभी पक्का कहाँ हुआ है ? यदि वैसा भरोसा पक्का होता तो तुम सरलता से उस बहन को उनके चरणों में सौंप सकी होती । बहन के पास जाने से तुम्हें अपना माप मिल गया कि अभी नींव ही प्रारंभ हुई नहीं है और **जीव**दशा भी अत्यधिक अपरिपक्व और बहुत कच्ची समझ से भरी है ! भगवान पर पक्का भरोसा जागे बिना उसे याद करें या प्रार्थना करें वह उसे यथार्थ रूप से पहुँचती नहीं है । यद्यपि ऐसे प्रकार का यानी कि भरोसे बिना का नामस्मरण या प्रार्थना एकदम बेकार नहीं जाते । योग्य प्रकार की भूमिका रचने में वे मददकर्ता होते हैं ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २८-६-१९५१

भगवान में एकभक्ति रखो

तुम्हारे पत्र में निखालिसता और जैसे हों वैसेपन का आरपार-दर्शकपन और उस प्रकार के निवेदन करने का तरीका बहुत सरलतावाला है और वह हृदय को अच्छा लगे वैसा है, परन्तु... बहन की जीवन की कथनी से कितने सारे दिन उसमें मन गुत्थी लगाकर पड़ा रहा ! यह देखकर हमें लगता तो सही कि अभी तुम्हें हमारे लिए..... बहन के जितनी तो आसक्ति हुई नहीं है । हम कभी ईर्ष्यालु तो नहीं हैं, परन्तु प्रेम और सद्भाव की बात में दूसरे ढंग से देखते हमारे जितना कोई इर्ष्यालु भी नहीं है । हमारे अलावा, यानी कि हमारे हृदय के अलावा दूसरे किसी विषय में भी हमारा जो स्वजन हो वह कहीं कोई भी प्रेम या भावना न रखे तो वैसी स्थिति,

उसके विकास के लिए हमें बहुत बहुत पसंद है । **जीव**दशा में सद्‌गुरु के लिए भी सर्वप्रथम तो ऐसी दृढ़ प्रेमभक्तिवाली आसक्ति ही प्रकट होगी । उसमें हमारा मन आसक्ति से करके दृढ़ अनुराग रखता हो जाय, तब उसका अनुसरण करने के लिए मन भी वैसी ही भूमिकावाला बनता है और उसका वचन भी दिल में ठहरता है ।

इस मार्ग में भारी हमले होते

बाकी... बहन के जीवन की कथनी तुम्हें इतनी अधिक आलोड़ित कर दे, नींव से झंझोड़कर कहीं पदच्युत कर दे औऱ तुम थी न थी हो जाओ, इस तरह से देखकर और सोचकर तो इससे तो अनेकगुना अधिक ऐसे हमले **इस** मार्ग में तो आयेंगे ही, तो उस समय हमारा क्या होगा वह सोचना रहा । निर्बल दशा में या निराशा की पलों में डाँवाडोल के समय अथवा तो मन शंकाशील होने के समय जो **जीव** दृढ़ अटल रहकर, धीरज रखकर अपने मार्ग में लगा रहता है और वैसे वैसे प्रकार के डाँवाडोल के जरा भी वश नहीं होता, वैसा **जीव** अंत में **इस** मार्ग में अवश्य प्रवेश पा सकता है ।

साधक के विकास के लिए सद्‌गुरु का संताप

मेरे छोड़ देने की तो बात ही नहीं, पर अनेक बार नहीं तो बार बार तुम मुझे छोड़ देती हो और विश्वासघात देती रहती है, उसका क्या ? हम तो सदा ही स्वजन की गति ऊर्ध्व होती जाय उसमें ही खुशी का अनुभव करते हैं । स्वजन की गति निम्न या विरोधवाली हो, तब हमारे त्रास की सीमा नहीं रहती,

क्योंकि स्वजन के साथ वैसा भाव यदि न रह सके तो स्वजन के साथ की हमारी सहानुभूति टूटी कहलायेगी । दुःख, त्रास, संताप यह भाव भी अंतर का भाव जगाने के लिए ही दिल में हुआ करे । सच्चा प्रेम जगे तब प्रेम का ही मननचिंतन उसे हुआ करे । प्रेम प्रेम को जगाता है, प्रेम प्रेम को चढ़ाता है और प्रेम प्रेम के स्वरूप में सराबोर करके प्रेम प्रेम में गरकाब कर देता है । अंत में प्रेमस्वरूप बना देता है और प्रेम के अंतिम स्वरूप के स्वभाव में जैसापन होना चाहिए वैसापन में उसे प्रकट करता है ऐसा प्रेम का लक्षण है और स्वभाव है । इससे इस अँकाई से देखते मुझे अपनी स्थिति देखकर दुःख, संताप होता है, वह तुम अब समझ सकती हो ।

नामस्मरण का तिनका

प्रभु के नामस्मरण के बिना हमारे भाव का उद्दीपन दूसरे किससे होनेवाला था ? इसलिए वह हो तो ही हमारा संपर्क यथार्थ है । इस भवसागर में नामस्मरण का तिनका दृढ़तापूर्वक लहरों से इधरउधर पछाड़ खाने पर भी प्रेमभक्ति द्वारा पकड़कर रख सकेंगे तो हमारे उबरने की बारी आ जायेगी ।

आर्त प्रार्थना अड़ी के समय पर बचायेगी

कहीं किसी में मन फँस जाते, उलझ जाते या भटक जाते पैर तले अंगारा आने पर और जलने से जैसे अचानक एकदम चीख उठते हैं, वैसे उस समय यदि हम भगवान को अंतर में अंतर से आर्त स्वर से पुकारें तो अवश्य हमें मदद मिलती अनुभव कर सकते हैं । दलदल में धँसता **जीव** मेहनत

करने से तो उलटा अधिक धँसता होता है । इसलिए उस समय मेहनत की वहाँ सार्थकता नहीं है, पर दूसरों की मदद के लिए, जितनी ताकत हो उतने से मदद माँगने के लिए चीखने चिल्लाने में ही उस समय सार रहा हुआ है । इसलिए ऐसे दलदल में उतर जाते और उसका भान होते, एकमात्र भगवान को आर्त और आर्द्र हृदय से पुकारना प्रारंभ करे और मात्र अकेला वही पुरुषार्थ में रत रहें तो वैसे पुरुषार्थ की युक्ति रास आये सही ।

मन पर काबू होने पर आत्मविश्वास जागेगा

जागृत रहना अथवा रहने को सतत संघर्ष करते रहना । जिसमें जिसमें मन पिरोया हो वहाँ वह स्पर्श करे सही, पर उसमें फँसे या उलझ न जाना । इस प्रकार की चतुराई साधक को रखा करनी आवश्यक रहती है । बाकी, मन तो उसके स्वभाव और लक्षण अनुसार किया ही करने का । उसमें से बचना यह हमारा धर्म है । विचार आने पर हम यदि अजागृत होंगे तो विचार की परंपरा मन आरंभ कर देगा । यदि जागृत बने होंगे तो विचार की परंपरा को रोक सकेंगे, यह अनेक साधकों का अनुभव है । ऐसा अभ्यास होते होते मन पर का काबू आने का एक दृढ़ आत्मविश्वास हम में प्रकट होता है और ऐसा आत्मविश्वास प्रकट होते उसमें एक प्रकार की हिंमत और साहस भी प्रकट होता है । यह सब तुम सोचना और आचरण करना । तो जीवन में सार है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. २९-६-१९५१

दंभ यह महादुर्गुण है

तुमने अपने अमुक दुर्गुणों के बारे में लिखा था। इनमें तुमने दंभ, क्रोध, आदि गिनवाये थे। सामान्य रूप से अनेक मनुष्यों में ये होते हैं। **जानते न हो तब भी जानने का दावा करे ऐसा रोग बहुतों को होता है। उसी तरह जैसे हों वैसे न दिखने का रोग भी बहुतों में होता है।** आध्यात्मिक मार्ग में क्रोध जैसे दूसरे दुर्गुणों की तुलना में दंभ एक ऐसा दुर्गुण है कि जो **जीव** को उस मार्ग में कभी आगे नहीं जाने देगा। दंभ का पर्दा चीरकर ही आगे जा सकते हैं। दंभ **जीव** को **जीव**पन में विशेष जकड़ कर रखता है।

जीव का **जीव**रूप अथवा स्वयं जैसे हों उस ढंग से, स्पष्टरूप से सभी तरह से खुला होने में दंभ आड़े आ जाता है। दंभ हमें ऐसे तो सूक्ष्म रूप से दूध और दही में पैर रखवाता है कि जिससे हमें कोई सूझबूझ भी न पड़े। दंभ को सच्ची तरह सोचें तो यह प्रकृति की जबरदस्त पकड़ रूप है। दंभ का सच्चा स्वरूप तो हम जब सचमुच उत्साह से इस **मार्ग** में जाने इन्तजार में हों, तब कुछ कुछ नये स्वरूप लेकर हमें पछाड़ने का करता होता है। हमारे **जीव**स्वभाव का समग्र स्वरूप पूरा खुला हुए बिना, किये बिना या उससे पर हुए बिना, प्रभु के चरण में हमें आसक्ति नहीं होनेवाली है। इसप्रकार प्रभुभक्ति के मार्ग में दंभ यह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है।

दंभ से क्रोध अच्छा

क्रोध हुआ हो उस समय दंभ टिकता नहीं है। क्रोध हुआ हो तब तो जो हो वह अंदर से बाहर वाणी द्वारा व्यक्त

हो ही जाता है । हाँ ! यदि क्रोध का प्रमाण तुच्छ हो, यानी कि उत्कटता न हो तो क्रोध को दबाकर सामनेवाले व्यक्ति को हम दूसरी तरह से कह सकते हैं सही, परन्तु क्रोध के उग्र स्वरूप में तो अंदर जो संघर्ष चलता हो, वही व्यक्त हो जाता है । इससे उस तरह उसमें दंभ का पक्ष न के समान होता है । उसी तरह दया, करुणा आदि बाबतों में भी है । यद्यपि वे दुर्गुण नहीं गिन सकते । दंभ हो वहाँ तक सरलता यानी कि साहजिकता सही रूप में प्रकट नहीं होती । जिसका स्वभाव उद्धत, स्वच्छंदी, क्रोधी, तीखा हो उस प्रकार के व्यक्ति जो भी कह देते हैं । उतने समय तक उसमें दंभ नहीं होता है । बाकी, वैसे प्रकार के **जीवों** में भी, उनके जीवन के दूसरे प्रसंगों में और दूसरी तरह व्यक्त होनेपन में भी दंभ भाग निभा रहा होता है । यह दंभ है ऐसा भान प्रत्येक **जीव** को नहीं होता । जिसे भान हो उसे भाग्यशाली समझे । इससे कौन कौन-सी बाबतों में और किन किन प्रसंग में दंभ से व्यवहार होता है, वह सच्चे साधक को खोजना रहेगा । यदि उसीके उसी क्षण दंभ के आचरण का निवारण हो सके तो वह उत्तम है ।

दंभ का उपाय – आत्मनिवेदन

अपने दोष को जानने से और स्वीकार करने से उस उस दुर्गुण का जोश कम होता है । चोर भी तुरत चोरी करते या दूसरी तरह पकड़ में आ जाये अथवा तो कोई झूठ बोलते या ऐसा करते पकड़े जाने पर वह झेंप जाता है वैसे, उस तरह दोष को ज्ञानपूर्वक, प्रेमभक्तिभाव से स्वीकार करने से और उसे कम करने के हेतु से जब स्वीकार करने का होता है,

तब उन दुर्गुणों और दोषों का बल और उसका लगाव कम होता जाता है । इसलिए ही भगवान के चरणों में अपने दोषों के निवारण के लिए आत्मनिवेदन की खोज भक्तज्ञानी पुरुषों ने अनुभव करके खोज निकाली थी । भगवान के चरणों में स्वयं को जो जो कुछ अवरोध होता हो, उसके लिए गहरे दर्द से जब हम उनकी कृपा मदद बारबार हृदय से माँगा करते हैं, तब हमारा हृदय भाव से आर्द्र रहा करता है और ऐसी भावना जब प्रकट होती है, तब हम में सरलता, खुल्लापन और हृदय की मार्दवता अपनेआप आती है । इसलिए हमें दंभ को थोड़ी भी दाद नहीं देनी है ।

पाप का भान होना अर्थात् क्या ?

उसी तरह हमारे में रहे हुए अन्य दोषों और दुर्गुणों का निवारण करते रहें । यह **जीव** अनंत दोषों का भाजन है और अत्यन्त पापी में पापी है, ऐसा सचमुच का उत्कट भान जिस **जीव** को होता है, वह **जीव** उसमें कभी पड़ा नहीं रह सकता है । दुर्गुण या दोष का सच्चा भान होना इसका लक्षण तो यह है कि वह हमें अत्यधिक चुभता और सालता हो और ऐसा हो, तभी उसमें से हमें मुक्त होने की चटपटी जागे और ऐसी चटपटी हो तभी आर्त और आर्द्र हृदय से भगवान को प्रार्थना द्वारा पुकारा जा सकता है ।

सच्ची सरलता

दंभ का वातावरण हटता जाता है, उसका प्रत्यक्ष लक्षण यह है कि कहीं से भी मिली हुई योग्य समझ हम से ग्रहण होती जाती हो और योग्य समझ के आधार पर उस अनुसार

वर्तन होने का बना करता हो । फिर, हम कुछ भी नहीं और हम में अभी कोई सच्ची समझ उगी नहीं है । अभी तो बहुत सारा सीखना है, जानना है और अनुभव करना है, वैसा ही जिसे 'सचमुच' हृदय से लगता है, वह तो छोटे बालक से भी सीखेगा । ऐसी सरलता प्राप्त होते ही मन पर का भय खिसक जाते हम अनुभव करते हैं । कहीं किसी का भार नहीं लगता है । कोई चिंताफिकर नहीं होती ।

दुर्गुण कैसे टलें ?

जीव का दंभ एक ऐसा बड़ा दुर्गुण है कि वह एक में से दूसरे में हमें मिलने या घुलने नहीं देगा । वह अपनी स्थिति में रखवाकर दूसरे में मानो कि मिलते या घुलते हों वैसा पूरी तरह बतलायेगा । वह हमें अनेक बार भूल-चूक करा देगा और कराता है भी सही, वह बड़ा उस्ताद होता है । दंभ का थोड़ा थोड़ा भाग तो सच्चे साधक के लक्षण जिसमें प्रकट होने लगे हैं, वैसे **जीव** में भी रहता होता है, परन्तु वैसी दशा में उसका जोश और बल घटते जाने से उसका कुछ चलता होता नहीं । इससे करके मेरी साधनाकाल की दशा में **इस जीव** में रहे हुए अनेक दोषों का निवारण करने के लिए भगवान को प्रार्थना की थी । अभी उनमें से की हुई प्रार्थनाओं का बहुत थोड़ासा हिस्सा प्रकाशित हुए बिना का पड़ा है । इसलिए दंभ होता हो, उसी समय जागृति रखकर रुकना और वैसी ही कोशिश करनी वह साधक के लिए प्रथम कर्तव्यरूप है ।

दुर्गुण आपनेआप कभी नहीं थमते । जो भी कुछ थामना हो या दूर करना हो तो उस विषय की, उस प्रकार

की जागृति हमे में प्रकट हुई होनी चाहिए । जागृति के बिना कुछ नहीं होगा । इसलिए यदि तुम्हें सचमुच अपने दुर्गुणों के बारे में लगता हो तो उसे कोई दाद न दो, परन्तु वे दुर्गुण या दोष जहाँ तक हमें अत्यधिक चुभते या सालते नहीं वहाँ तक ऐसा होना संभव भी नहीं है । जब **जीव** को **जीव**पन की दशा से अन्य किसी आदर्श की लगनी लग जाती है और उसे सचमुच का उत्साह प्रकट होता है, उस समय वे सब हम में होने पर भी उनका कुछ चलता नहीं है । जैसे नदी की बाढ़ में उसके पाट में रहा सभी कचरा घुल जाता है वैसे । इससे या तो **जीव** को किसी उच्च आदर्श की लगनी लगी हो तो वह थोड़े में दूर हो सके अथवा तो अपने दोष या दुर्गुण को टालने की जिसे जिज्ञासा जागी है वैसा **जीवात्मा** तनदिही से करके दृढ़ता से उनका निवारण अवश्य कर सकता है ।

क्रोध को शांत करे वह दंभी नहीं है

किसी **जीव** को दूसरे **जीव** पर बहुत ही खीज चढ़ी हो, उसके व्यवहार से बहुत क्रोध आया हो, तब उस तरह से न बोलकर अपने गुस्से या क्रोध को अंदर शांत करके उसके प्रति स्वयं शान्त वृत्ति धारण करता है और खीज और गुस्से को मन ही मन में दबाकर रखता है और उस तरह व्यक्त नहीं होता तो उसके जीवन में दंभ है वैसा नहीं गिना जाएगा, परन्तु इस तरह शांत करने का तरीका उलटा अच्छा गिना जाएगा । इससे करके वह मन ही मन में शायद अकुलायेगा सही और अमुक **जीवात्मा** में उस विषय में विचार की परम्परा बहुत चला करेगी तब भी, उसे खीज चढ़ने या गुस्सा

होने के कारण मिलने पर भी, वैसा न होने देता हो तो उस प्रकार की रीति से दंभ की रीति नहीं है । इतना तुम्हें जानने के लिए लिखा है । क्रमशः साधक को मन में होती वैसी अकुलाहट को पहचानकर उसे निर्मूल करनी रहती है और बाद में तो खीज या क्रोध बिलकुल नहीं होंगे ऐसी स्थिति वैसे शमन के प्रारंभ से ही रखनी है ।

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ३-३-१९५१

वृत्ति को जीतने न दें

कहीं किसी से हमें छेड़ जाने की जरूरत नहीं है । हमारे मन में जागती और उठती, धीरे-धीरे कदम भरते या तो कुचकदम करते अथवा तो अति आवेश से खूब खूब दौड़ती हमारी वृत्तिओं का हमें जागृतिपूर्वक सामना करना है । हमारा शरीर ऐसे सभी प्रकार से—स्थूल, सूक्ष्म और कारण ऐसे तीनों प्रकार से—निर्दोष होकर संपूर्ण पवित्र हो तो उसके संपर्क से जो जो **जीव** संपर्क में आये उसका कल्याण हो । हमारे मन में अनेक प्रकार के संकोच और उस प्रकार की समझ पड़ी हुई है और वैसे वैसे प्रकार की समझ का उदय वर्तमान वैसे वैसे प्रकार के संपर्क के निमित्त से मन में जागते हैं । इसलिए कोई वैसा प्रसंग बनते चेतनापूर्वक की जागृति रखकर मन में ऐसे या वैसे कुछ आरोपण किसी के विषय में न होने देना । यानी कि संकोच होना वह भी योग्य नहीं है, वैसे उस संदर्भ का विस्तार होना वह भी योग्य नहीं है । कहीं किसी के लिए भय हो या कहीं किसी से तुम घिर जाओ ऐसी तुम ना हो या ना रहो ऐसी हृदय की बहुत बहुत अभिलाषा है ।

सद्‌गुरु की अभिलाषा

प्रभुकृपा से जिसे **यह जीव** स्वजन गिनता है, उसका यश कोई न्यारा हो, हृदय अत्यन्त मृदु होने पर भी पत्थर से भी अधिक कठोर बन सके और ऐसे स्वजन का 'अलख' प्रकार का पलपल नूतन दर्शन और अनुभव हुआ करे ऐसी हृदय में अभिलाषा रखता रखता उस **जीव** का रटन करता हूँ । तुम किसी से संकोच करके चौंको तो वह बेइज्जती तुम्हारी नहीं पर मेरी है । इसलिए, **इस जीव** को लांछन न लगे ऐसा तुम चाहती हो तो तुम्हें सदा ही विवेक की भावना विकसित करके चेतनरूप से जागृत रहना है । अरे, भाई ! आक्रमण की तो क्या बातें करें ? आक्रमण अनेक प्रकार के बहुत बहुत बार उठते हैं और जब से आक्रमण बाहर से आने की शुरूआत होती है, तब ऐसे आक्रमणों की तो क्या कथनी लिखूँ ? इसलिए ऐसे किसी एक प्रकार का जो आक्रमण हो उसे मन से कुछ रूप देना नहीं और उलझ न जाएँ उसकी तो संपूर्ण सँभाल और देखभाल रखनी ।

बाहर का कोई हमें सताता नहीं है

फिर मेरी समझ के अनुसार तो सर्व किसी की भूमिका हमारे अपने में ही पड़ी हुई है । हमारी निराधार और लाचार स्थिति का कोई दुरुपयोग करने आये, परन्तु हम वश में हों तो न ? जगत में कुछ भी अकेले नहीं होता है । स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप से संचालन में परस्पर निमित्त रूप हो, तब भी सभी किसी की स्पर्श भूमिका हमारे अंतर में रही हुई है, सभी का मूल बीज अपनी प्रकृति में है । इसलिए हम स्वयं

ही विशेष जागृत रहने का प्रयत्न करें । हमें स्वयं को ही दोष देना है । अन्य किसी को दोष देना यह हमारी कायरता और निर्बलता है । इससे हम अंतर से जितने विवेकयुक्त विशेष जागृत और जीवन के ध्येय की बाबत में जितने लगातार और एकाग्ररूप से केन्द्रित हुआ करेंगे वैसे वैसे हम पूरा आराम अनुभव कर सकेंगे । पूज्य श्रीआनंदमयी माताजी के पास क्या कम व्यक्ति जाते हैं ? क्या उनसे व्यक्ति आकर्षित नहीं होते ? इसलिए आकर्षण यह तो **जीव** की कोई भी स्थिति में रहा करेगा । इससे हमें स्वयं सर्व प्रकार की भड़क से मुक्त हो जाना है । तुम सभी प्रकार से साहसिक और हिंमतवान बनो और सभी प्रकार के आक्रमणों को वापस मोड़ने चेतनापूर्वक जीती-जागती हो तो बहुत शांति प्राप्त होगी । तुम खुले दिल से लिखती हो । इससे, वैसी निखालिसता से तो गौरव होता है, जबकि दूसरी ओर से हमें संताप भी होता है ।

जगत यानी हम ही

'आये उसे आने दो' ऐसी वृत्ति भी नहीं रखनी है । स्थूल या सूक्ष्मरूप से जो जो नकारात्मक हो, **जीव**स्वभाववाला हो और आवेशयुक्त हो, उसका सामना आंतरिकरूप से बहुत बहुत शांति और प्रेमभक्ति से हमें करना है । जगत में हमारा कोई दुश्मन या मित्र नहीं है । जो भी कुछ हैं वह हम स्वयं ही हैं । हमारा अपना ही संकोच और विस्तार जीवन में अनेक रूप से व्यक्त हुआ करता है । इसलिए, शरीर की भड़क हमें तोड़ने की है । शरीर तो साधन के लिए है ।

ज्ञानपूर्वक सहन करना यानी प्रेम

सर्व किसी के रहने, जीने और रहनसहन की अपनी अपनी रीति होती है । हमें यदि किसी कुटुंब में मिलना-जुलना हुआ तो उनके उनके ढंग से बरतना पड़े । यदि हमें सुमेल से बरतना हो तो जो सहन करना पड़े वह ज्ञानपूर्वक सहन करने में आनंद है । कठिनाई से सहन करने से जीवन कुचल जाता है और मन ही मन में कुढ़न, संताप, चिढ़, नापसंदगी ऐसा सब प्रकट होता रहता है । **हमारे माने अनुसार या चाहे अनुसार हमारा व्यक्ति व्यवहार करे ऐसा कभी होता नहीं है ।** हम में कहाँ कहाँ दोष रहे हुए हैं और किस तरह की मनस्वीता है, वह न जानते हमारी जो समझ है, वही सब प्रकार से योग्यतावाली है ऐसा मानने में दोष रहा है और उसमें हमारा अज्ञान भी होता है । **हमारे ही माने अनुसार और हमारी समझ अनुसार सब हुआ करना चाहिए और वही सब सच है इस प्रकार का जिसका मानस हो वह एक प्रकार का स्वच्छंदीपन है ।**

• • •

कुंभकोणम् हरिः ॐ ता. ३-९-१९५१

गुरुभक्ति कैसे प्रकट हो ?

साथ रहने से अथवा स्थूल परिचय विकसित करने से विशेष लाभ है ऐसा कुछ नहीं है । मुझे रहना रहा आश्रम में, तुम्हें रहना रहा शहर में और सप्ताह में एकाद-बार घड़ी दो घड़ी मिलें और उसमें भी आश्रम में कभी कभार मिलने के लिए दूसरे आनेवाले का भी आना जाना रहेगा । इसलिए उस

बाबत में तुम्हें संतोष होगा नहीं । प्रत्येक हकीकत में स्थूल, सूक्ष्म और कारण ऐसे तीन होते हैं । ये तीनों एकदूसरे के साथ जुड़े हुए हैं और सब बाधा व्यक्तत्व में ही हैं । चेतन ब्रह्मांडरूप से व्यक्त हुआ है । उसमें रहा हुआ चेनत की या उसके कार्यकारण की कुछ किसी को सूझबूझ नहीं होती है । कोई भी एक एक कहता है और कोई भी एक दूसरा कहता है । जब चेतन का अनुभव होता है तब कोई बाधा नहीं रहती है ।

जगतव्यवहार में भी जहाँ तक बोलें नहीं वहाँ तक बाधा नहीं आती । ऐसे बोलने से ही जो भी प्रकट होता है । इसलिए व्यक्त में जैसा है वैसे का वैसा वह अव्यक्त में भी है, पर जो अव्यक्त में है, वैसे का वैसा व्यक्त में है ऐसा नहीं होता । इससे यों स्थूल में से हम कभी चेतन के बारे में संपूर्ण सच्चा भान एकदम उपजा सकते नहीं । इस स्थूल में राग हो, किन्तु उस राग की कोटि भी अलग अलग प्रकार की होती है । राग से एक प्रकार का आकर्षण जन्म लेता है । राग के भी तीन प्रकार हैं :- कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम । मनन, चिंतन और निदिध्यासन प्रकट हो, वह तो कनिष्ठ और उत्तम दोनों प्रकार के राग से उत्पन्न होगा । इससे, कनिष्ठ को तो हमें वर्ज्य करना है । उत्तम प्रकार का जो राग है, उसका आकर्षण होते उत्तम प्रकार का मनन, चिंतन और निदिध्यासन हो सही । किसी भी संतात्मा के बारे में हमारा राग हो यानी क्या ?

संसारव्यवहार में प्रिय से प्रिय जो हो अथवा तो धनदौलत, मालमत्ता, सगेसंबंधी, कीर्तिआबरू अथवा तो वह

सब और उसके अलावा, हमारे हृदय वे सभी से हजारगुना राग यदि संतात्मा में हो तो हमारा निरन्तर भाव उसमें रहे । कनिष्ठ प्रकार के राग में नौजवान लड़के-लड़कियाँ प्रेम के मोह में घिरकर माता, पिता, सगे-संबंधी, मित्र, रिश्तेदार, आबरू, मानहानि, धनदौलत आदि सभी को ठोकर मारकर एकदूसरे में तल्लीन होने के लिए तैयार होते हैं, पर यह तो खाली शराब के नशे जैसी दशा है । वह नशा उतर जाने पर मनुष्य उलटा मूढ़ बनता है । स्थूल प्रेम के मोह में मनुष्य अपना सर्वस्व याहोम करने को तैयार होता है, परन्तु उसमें अज्ञान के विवेकहीन कर्म हैं । उसमें एक प्रकार का नशा रहता है, विवेकदशा प्रकट नहीं होती है । इससे उससे उसकी उन्नति नहीं होती है ।

उसी तरह जो राग हमें स्थूल में लगाये न रखे, परन्तु उस राग में से विवेकयुक्त समझ पैदा करके, ताटस्थ्य और समता उत्पन्न करके ऊपर लाए वह राग उत्तम है । **संतपुरुष में राग होना यानी हमारी निम्न प्रकृति के मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार का उसकी चेतना के हृदयभाव के साथे मेल मिलाना ।** वे हमारे पाँच करण और हम यदि उसके साथ ऐसा प्रेमभक्तिज्ञानयुक्त राग विकसित कर सकें तो उसमें एकताल हो सकते हैं, परन्तु वह सब पूरी समझ के साथ और जीवनविकास के हेतु के लिए होना चाहिए । सच्ची श्रद्धा एकदम प्रकट नहीं होती है । श्रद्धा भी विकसित होते होते विकसित होती है । संसारव्यवहार में जैसे किसी पर हमारा पक्का भरोसा बैठ जाने पर हम उसकी ओर से निश्चिंत रह सकते हैं, वैसे संतात्मा में वैसी हृदय की सच्ची समझ

प्रकट हो जाते जीवन में हमें कुछ मिथ्या दौड़धूप नहीं रहती या होती भी नहीं है, कोई ड़गमग नहीं रहती, उसके बारे में इधरउधर के विचार नहीं उठते और उसमें हमारा मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, और अहंकार तल्लीन एकाकार हो जाते हैं ।

ऐसी संपूर्ण एकाग्र और केन्द्रित हुई स्थिति में ही चेतनाशक्ति के आध्यात्मिक बीज का आरोपण हो सकता है । साधारणरूप से किसी भी बीज के बोआई जाने की भूमिका ऐसे आमनेसामने के दोनों तत्त्व एकसाथ में, एक समय में और उस समय दौरान बिलकुल एकाकार हो, एकदूसरे में तल्लीन-गरकाब हो गये हो और उस स्थिति में सर्जनात्मक शून्यता हो, आगेपीछे का भान भी न हो तभी उसका बीजारोपण हो सकता है । जैसे स्थूल में ऐसा है वैसा ही आध्यात्मिक बाबत में भी है । तल्लीनता प्राप्त हुए बिना जैसे वस्तु के मूल में नहीं जा सकते वैसा इसमें भी है, परन्तु उसके साथ साथ हृदय का प्राणवान विवेक प्रकट हुआ होना चाहिए, पर हमें तो भगवान पर पक्का भरोसा रखना । उसका सच्चा आधार हृदय में हृदय से रखेंगे तो ही हमारा बेड़ा पार होनेवाला है । **इस** शरीर के स्थूलपन की आशा बेकार है, क्योंकि इसमें ऊपर कहा उस अनुसार का किसी का राग होना वह दुर्लभ हकीकत है । इसलिए, जीवन के विकास के लिए भगवान का मनन, चिंतन और स्मरण किया करना । प्रभुकृपा से हम में राग हो और वह भी उपरोक्त लिखे अनुसार उस प्रकार का हो तो वैसा राग तो स्वयं में अपनेआप स्वयं को प्रकट किया करे ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ हरिः ॐ ॥

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन-वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्‌भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हों (२) तब भी भाव बढ़े...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विचार, प्राण की वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उल्टा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहीं दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव से पिघले प्रभु (२)
दिल में तुम्हारी भक्ति की (२) लहरें उछले.... ॐ शरणचरण.

– मोटा

॥ हरिः ॐ ॥

पूज्य श्रीमोटा के जीवन का परिचय

जन्म	:	ता. ४-९-१८९८ भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी, वि. सं. १९५४
स्थान	:	सावली, जिला वडोदरा (गुजरात)
नाम	:	चूनीलाल ।
माता	:	सूरजबा ।
पिता	:	आशाराम ।
जाति	:	भावसार ।
उपनाम	:	भगत ।
१९०३	:	कालोल में निवास, गरीबी का आरंभ ।
१९०६	:	मजूरी के काम ।
१९१५	:	तौला की नौकरी ।
१९१६	:	पिता की मृत्यु ।
१९०५ से १९१८	:	टुकड़ों में पढ़ाई के साथ कठिन मजदूरी ।
१९१९	:	मैट्रिक उत्तीर्ण ।
१९१९-२०	:	वडोदरा कॉलेज में ।
दि. ६-४-१९२१	:	कॉलेज का त्याग ।
१९२१	:	गुजरात विद्यापीठ में ।
१९२१	:	विद्यापीठ का त्याग । हरिजन सेवा का आरंभ ।
१९२२	:	मिरगी की बीमारी से तंग आकर गरुड़ेश्वर की चट्टान से आत्महत्या का प्रयास, दैवी रक्षा; 'हरिः ॐ' जप से रोग मिटाने का सफल प्रयोग । श्रीबालयोगीजी द्वारा दीक्षा । श्रीसद्गुरु केशवानंद धूनीवाले दादा के दर्शन के लिए सांईखेड़ा गए । रात्रि को श्मशान में साधना और दिनभर प्रभुप्रीत्यर्थ हरिजन सेवा ।

१९२३	:	'तुज चरणे' तथा 'मनने' की रचना ।
१९२४	:	डाकोर में श्रीनथ्थुराम (मगरमच्छ) से मिलन, हिमालय की प्रथम यात्रा ।
१९२६	:	विवाहहस्तमिलाप के अवसर पर समाधि का अनुभव । हरिद्वार कुंभमेले में श्रीबालयोगीजी की तलाश ।
१९२७ (मार्च)	:	हरिजन आश्रम, बोदाल में सर्पदंश -परिणाम स्वरूप 'हरिः ॐ' जप अखंड हुआ ।*
१९२८	:	'तुज चरणे' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन ।
१९२८	:	दूसरी हिमालय-यात्रा ।
१९२८	:	साकुरी के पूज्य श्रीउपासनीबाबा का नडियाद में आगमन, उनके आदेश पर साकुरी गये, वहाँ मलमूत्र के बिस्तर में भूख-तरस, सख्त पत्थर-मार सहन करते दस-ग्यारह दिन ध्यान, समाधि अवस्था में ।
१९३०	:	मन की नीरवता का साक्षात्कार ।
१९३० से ३२	:	इस दौरान साबरमती, विसापुर, नासिक और यरवडा जेल में । हेतु देशसेवा का नहीं, साधना का । कठोर परिश्रम और लाठी चार्ज के दौरान प्रभुस्मरण-मौन । विद्यार्थियों को समझाने के लिए विसापुर जेल में सरल गुजराती भाषा में श्रीमद् भगवद्गीता को लिखा—'जीवनगीता' ।
१९३३	:	तीसरी हिमालययात्रा । बर्फ में रहते महात्मा मिले ।
१९३४	:	सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार । मल-मूत्र के आधार पर पचीस दिन की साधना ।
१९३४ से १९३९	:	दौरान हिमालय में अघोरीबाबा की मुलाकात बाद

* 'जीवनआरंभ' पत्र ता. २६-३-१९५१

		में नर्मदा धुंआँधार के प्रपात के पीछे की गुफा में साधना। चैत्र मास में ६३ धूनियाँ जलाकर नर्मदा किनारे खुले में शिला पर नग्न बैठकर साधना। कराची में नर्कचतुर्दशी की रात्रि को समुद्र में शिला पर ध्यान, चालीस दिन के रोजे, 'समुद्र में चले जाने का हुक्म और ईद के दिन पूरे शहर में नग्न अवस्था में घूमकर घर जाने सांईबाबा का हुक्म। शिरडी के सांईबाबा के प्रत्यक्ष दर्शन–आदेश–साधना के अंतिम चरण का मार्गदर्शन।
१९३९	:	दि. २९-३-३९ : रामनवमी विक्रम संवत १९९५ काशी में निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार। हरिजन सेवक संघ से त्यागपत्र। 'मनने' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।
१९४०	:	दि. ९-९-४० : हवाई मार्ग से अहमदाबाद से कराची जाने का गूढ़ आदेश।
१९४२	:	माता का अवसान।
१९४२	:	हरिजन सेवक संघ से अलग होने पर भी हरिजन कन्या छात्रालय के लिए मुंबई में चन्दा इकट्ठा किया। दो बार सख्त पुलिसमार—देहातीत अवस्था के प्रमाण।
१९४३	:	२४, फरवरी गाँधीजी के पेशाब के जहरीले जन्तुओं का अपने पेशाब में दर्शन। नैमित्तिक तादात्म्य का अनुभव।
१९४५	:	हिमालय की यात्रा - अद्‌भुत घटनाएँ।
१९४६	:	हरिजन आश्रम, अहमदाबाद मीराकुटिर में मौनएकांत का आरंभ।
१९४७	:	आश्रम स्थापने का विचार।
१९५०	:	दक्षिण भारत के कुंभकोणम् (तामिलनाडु) में

		कावेरी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना । (सन १९७६ में देहत्याग के बाद आश्रम बंद कर दिया गया ।)
१९५४	:	सूरत तापी नदी के किनारे कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा के श्मशान में मौनएकांत का आरंभ ।
१९५५	:	दि. २८-५-५५ : जूना बिलोदरा, शेढी नदी के किनारे, नडियाद, गुजरात, हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।
१९५६	:	दि. २३-४-५६ सूरत (गुजरात) तापी नदी के किनारे, कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा में हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।
१९५९	:	१६-८-१९५९ हरि:ॐ आश्रम, सूरत में मौनमंदिर का उद्घाटन ।
१९६२	:	समाजोत्थान की प्रवृत्ति, उत्सव मनाने की संमति ।
१९७० से १९७५	:	शरीर में पीडाकारी वेदना के साथ सतत प्रवास, वार्तालाप और साधना का इतिहास, श्रद्धा, निमित्त, रागद्वेष, कृपा आदि भाववाही विषयों पर लेखन - प्रकाशन ।
१९७६	:	१९-७-१९७६ देहत्याग का संकल्प, हरि:ॐ आश्रम नडियाद । २२-७-१९७६ देहत्याग विधि का प्रारंभ : सायंकाल ४ बजे से फाजलपुर (जि. वडोदरा, गुजरात) मही नदी के किनारे श्री रमणभाई अमीन के फार्म-हाउस में ।
२३-७-१९७६	:	देहविसर्जन : श्री रमणभाई अमीन के फार्म-हाउस नजदिक मही नदी के किनारे फालजपुर (जि. वडोदरा, गुजरात)

● ● ●

हरि:ॐ आश्रम सूरत में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र. आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram, Surat.
January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Naamsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

॥ હરિ:ૐ ॥

हँसते हँसते सहन करो

सदा ही स्मरणभाव में मस्त रहा करना है । जगत व्यवहार में सभी के साथ ज्ञानभक्तिपूर्वक का हृदय का सुमेल वनाये रखने में जीवन की यथार्थता है, वैसा होने पर उसमें अत्यधिक घिसना पडता है और वही तपस्या है। ऐसे घिसने से यदि मन को कष्ट, वेदना या दुःख न लगे या संताप ना जागे, परन्तु उलटा उत्साह, आनंद, प्रेरणा जागा करे तो जानना, मानना और अनुभव करना कि वैसे घिसे जाने का उत्तम प्रकार का जीवनयज्ञ चल रहा है । ऐसे यज्ञ की आहुतिओं का तो पार नहीं होता है । आप अपने इस प्रकार के यज्ञ से जीवन को प्रकाशित करो ऐसी प्रार्थना है ।

- श्रीमोटा

'जीवनआरंभ',
प्रथम संस्करण, पृष्ठ २२